श्री जैन श्वेताम्वर तेरापंथी महासभा प्रकाशन

भाग-५

(आचार्य भिक्षु तथा भारीमालजी क समय का साध्वियां)
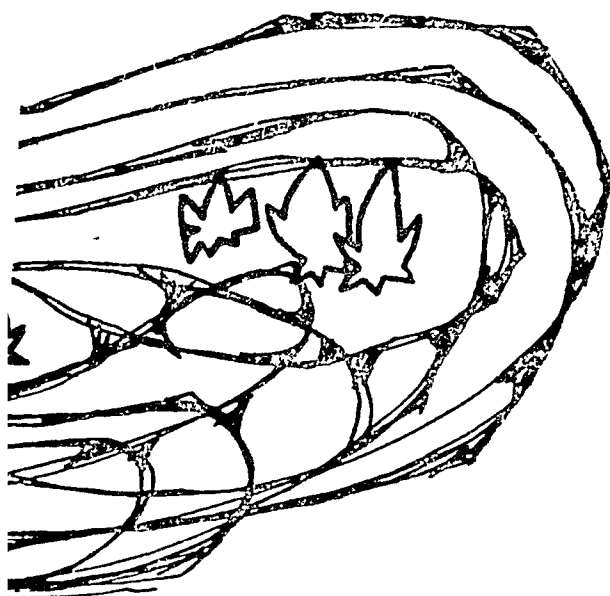
मुनि नवरत्नमल

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति मे समाज के दो प्रमुख घटक है—नर और नारी। जितना महत्त्व पुरुष जाति का है उतना ही स्त्री जाति का। जितना अधिकार और उत्तरदायित्व पुरुष वर्ग का है उतना ही स्त्री वर्ग का। यद्यपि पुरुष मे कुछ विशेष गुण और स्त्री मे अपनी विशेषताएं होती हैं, पर वह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। किंतु सामाजिक एव पारिवारिक जीवन मे वे एक दूसरे के पूरक होते हैं। दोनो के सामजस्य से सहअस्तित्व, संगठन, सुव्यवस्था आदि जीवनोपयोगी सूत्रो का आविर्भाव होता है और प्रत्येक व्यक्ति शान्तिपूर्वक अपना जीवन विता सकता है।

धार्मिक क्षेत्र मे भी नर और नारी का समानाधिकार है। ज्ञान, शिक्षा, सद्गुण आदि के विकास में किसी प्रकार की भेद-रेखा नही है। जैन तीर्थंकरो एवं अनेक महामनीषियो ने अपने असीम ज्ञान व गहन अनुभवो द्वारा यह प्रतिपादन किया है कि पुरुषो की तरह महिलाओ मे भी साधु-धर्म स्वीकार कर वीतराग भाव तथा केवल ज्ञान प्राप्त कर सिद्ध, बुद्ध बनने की क्षमता है। जैन धर्म तो इतना व्यापक है कि हर व्यक्ति, समाज, जाति, वर्ण, लिंग आदि मे भेद किये विना उसकी सत्य, शील, क्षमा आदि सत्प्रवृत्तियों को धर्म के अचल में समाहित करता हुआ उसे मोक्ष मार्ग का आराधक वतलाता है।

इस युग मे चौवीस तीर्थंकर हुए—प्रथम ऋषभ और अन्तिम महावीर। उन सभी ने धर्म सघ मे जितना स्थान साधु समुदाय को दिया उतना ही श्राविका समाज को। जैन आगमो तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों को जब हम पढते है तो हमे अवगत होता है कि प्रत्येक तीर्थंकर के युग मे साधुओ की अपेक्षा साध्वियो की और श्रावको की अपेक्षा श्राविकाओ की सख्या अधिक रही है। इससे यह सिद्ध होता है कि चैतन्य-जागरण की दिशा मे दोनो वर्ग समान रूप से अधिकारी है।

तत्पश्चात् भी उक्त परम्परा अविच्छिन्न रूप से चलती रही। परन्तु अन्तर्कालीन युग मे कुछ भेद-रेखा खिच जाने से नारी समाज का गौरव एव जीवन निर्माण का मार्ग अवरुद्ध-सा हो गया। समय ने करवट ली और वर्तमान युग ने

एक ऐसा मोड लिया कि उसने नारी जाति के पुनरुत्थान की धारा को अवाध गति से प्रवाहित होने का अवसर दिया जिससे सामाजिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक क्षेत्र मे महिला समाज जागृत हुआ और कुठा, निराशा, हीनता आदि की जर्जरित दीवारो को तोडता हुआ प्रगति पथ पर द्रुत गति से आगे वढने लगा।

तेरापथ के प्रथम-प्रणेता, सत्यान्वेषक, दूरद्रष्टा आचार्य भिक्षु ने धर्म क्रान्ति के सूत्रपात मे पुरुप एव महिला वर्ग को समान रूप से स्थान दिया। उन्होंने वि० स० १८१७ आषाढ पूर्णिमा को 'केलवा' (मेवाड) मे भाव-दीक्षा स्वीकार की। उस समय कुल १३ साधु थे। चातुर्मास के पश्चात आचार-विचार का मेल न होने के कारण ५ साधु पृथक् रहे, आठ साधु सम्मिलित रहे। तत्पश्चात् चार वर्षो तक कोई भी व्यक्ति तेरापथ धर्म-सघ मे दीक्षित नही हुआ। श्रावक, श्राविका की अभिवृद्धि हुई। इस प्रसग मे किसी भाई ने व्यग करते हुए आचार्य भिक्षु से कहा—'आपके संघ मे साधु, श्रावक और श्राविका तो है परन्तु साध्वियो के बिना आपका तीर्थ रूप मोदक खडित है।' स्वामीजी ने अपने बुद्धि कौशल से तुरत जवाव देते हुए कहा—'मोदक अधूरा भले ही हो किन्तु वह चौगुनी का है अतः स्वाद मे कोई अतर नही है।' उसके कुछ समय वाद ही तीन वहिनें दीक्षित होने के लिए आचार्य भिक्षु के सम्मुख उपस्थित हुई और अपनी भावना अभिव्यक्त की। स्वामीजी ने उन्हे स्पष्ट शब्दो मे कहा—'देखो! तुम तीनो वहिने दीक्षा लेना चाहती तो हो परन्तु तुम्हारे दीक्षित होने के वाद सघ मे अन्य साध्वियाँ हो जाए तव तो ठीक है, कदाचित् न हो और तुम तीनो मे से किसी एक का वियोग हो गया तो शेष दो को सलेखना तप कर अपना कल्याण करना होगा। इसके लिए तुम अच्छी तरह सोच लो।' तीनो वहनो ने साहसपूर्वक उक्त शर्त को मजूर किया और प्राण-प्रण से सयम-जीवन स्वीकार करने के लिए आग्रह किया। तव स्वामीजी ने स० १८२१ मे तीनो वहिनो—कुशालाजी, मटूजी, अजबूजी को जैन भागवती दीक्षा प्रदान की एव तीर्थ रूप मोदक पूरा हो गया।

इस प्रकार तेरापथ की स्थापना के पश्चात् सघ मे सर्वप्रथम साध्वियो की दीक्षा हुई। उसके वाद स० १८२२ मे मुनि सुखरामजी (क्रमांक ६) ने साधुत्व ग्रहण किया। फिर उत्तरोत्तर साधु-साध्वियो की सख्या वढ़ने लगी। स्वामीजी के शासन काल मे ४९ साधु, ५६ साध्वियों की दीक्षा हो गई। मुनि श्री खेतसीजी (२२), वैणीरामजी (२८) और हेमराजजी (३६) आदि की तरह साध्वियो की भी वड़ी प्रभावशालिनी दीक्षाए हुई। उनमे साध्वी मैणाजी, हीराजी, वरजूजी, रूपाजी, हस्तूजी, कस्तूजी, कुशालांजी, जोताजी और नोराजी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनमे सात वहिनें सुहागिन थी, पांच सुहागिन वहनो ने एक वर्ष (स० १८५७) में दीक्षा ग्रहण की। पाच वहनो ने पुत्र, पति एव लाखो की सम्पति को छोड़कर यौवन के नव वसंत मे साध्वी जीवन स्वीकार

किया। अनेक साध्वियो ने त्याग, तपोवल एवं धर्म-प्रचार आदि के द्वारा धर्म-शासन को गौरवान्वित किया।

क्रमश सघ मे साध्वी-परिवार सरिता-प्रवाह की तरह वढता गया। आचार्य भारीमालजी के समय ४४ और आचार्य रायचदजी के समय १६७ साध्वियो की दीक्षा हो गई।

साध्वी समाज की अनवरत अभिवृद्धि को देखकर चतुर्थ श्रीमज्जयाचार्य ने उनकी सुव्यवस्था और चतुर्मुखी विकास के लिए सचालिका रूप मे एक 'साध्वी प्रमुखा' की नियुक्ति का नया चिंतन किया। लवे समय के विचार-विमर्श एव विविध प्रयोगो के पश्चात् उसे व्यवस्थित रूप मे परिणत किया। सवत १९१० मे सर्वप्रथम साध्वी श्री सरदाराजी को 'साध्वी प्रमुखा' पद पर नियुक्त किया।[1] क्रमश सभी साध्विया विधिवत् उनकी निश्राय मे आ गई। साध्वी प्रमुखा आचार्य प्रवर के निर्देशानुसार उनकी देख-रेख व सार सभाल करने लगी।

यह उपक्रम व्यवस्था और विकास की दृष्टि से साध्वी समाज के लिए अत्यत लाभदायक सिद्ध हुआ और आचार्यो को भी कई प्रकार की सुविधाए रही। अव तक (स० २०३८ आषाढ़ पूर्णिमा) साधुओ की ७२९ और साध्वियो की १४८१ दीक्षाए हुई। उनमे 'साध्वी-प्रमुखा' पद को सुशोभित करने वाली आठ साध्विया हुई। उनकी सूची इस प्रकार है :—

	नाम	वर्ष	संवत्
१.	साध्वी प्रमुखाश्री सरदारांजी (फलौदी)	१७	सं० १९१०-१९२७
२.	,, गुलावांजी (वीदासर)	१५	स० १९२७-१९४२
३.	,, नवलाजी[2] (पाली)	१२	स० १९४२-१९५४
४.	,, जेठाजी (चूरू)	२७	सं० १९५४-१९८१
५.	,, कानकवरजी (श्रीडूगरगढ)	१२	स० १९८१-१९९३
६.	,, झमकूजी (चूरू)	१०	स० १९९३-२००२
७.	,, लाडांजी (लाडनू)	२४	सं० २००२-२०२६
८.	,, कनकप्रभाजी (लाडनू)		सं० २०२८[3]

---

१. इससे पूर्व आचार्य भिक्षु के समय साध्वी वरजूजी (३९), आचार्य भारीमालजी के समय साध्वी हीराजी (२८) और आचार्य रायचदजी के समय साध्वी दीपांजी (९०) मुखिया एव आचार्यो द्वारा सम्मानित थी। जयाचार्य ने 'साध्वी प्रमुखा' नियुक्ति की विधिवत् स्थापना की।

२. साध्वी प्रमुखा नवलांजी गुलावसती से दीक्षा-पर्याय मे वड़ी थी किन्तु साध्वी प्रमुखा वाद मे वनी।

३. साध्वी प्रमुखा लाडांजी का स० २०२६ चैत्र शुक्ला १३ को स्वर्गवास हुआ। उसके लगभग दो वर्ष वाद सं० २०२८ माघ कृष्णा १३ को गगाशहर मे साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी का चयन हुआ।

नवमाचार्य श्री तुलसी गणी के निर्देशानुसार मैंने समस्त साधु-साध्वियो के जीवन-वृत्तान्त लिखने का उपक्रम चालू किया। क्रमबद्ध उसे पद्य-गद्यात्मक रूप मे लिखा और उस कृति का नाम 'शासन समुद्र' रखा। नौ आचार्यों के शासन-कालीन साधु-साध्वियों के समाहित होने से वह वृहद् ग्रंथ अनेक भागो में विभक्त हो गया। उसमे साधु-साध्वियो के भाग अलग-अलग हैं।

शासन-समुद्र के दो भाग तेरापंथी महासभा द्वारा—जयाचार्य निर्वाण शताब्दी वर्ष के स्वर्णिम अवसर पर प्रकाशित हो चुके हैं। उनमें शासन-समुद्र भाग १ (क) और (ख) की दो पुस्तको मे आचार्य भिक्षु के समय में दीक्षित ४९ साधुओ की जीवनिया उल्लिखित हैं। शासन-समुद्र भाग २ (क) और (ख) की दो पुस्तको मे आचार्य श्री भारीमालजी के समय मे दीक्षित ३८ साधुओं के जीवन-वृत्त हैं।

उक्त चारो पुस्तको (Volumes) के चार भाग समझने चाहिए। जैसे :—

शासन समुद्र भाग १ (क)	प्रथम पुस्तक भाग १
शासन समुद्र भाग १ (ख)	द्वितीय पुस्तक भाग २
शासन समुद्र भाग २ (क)	तृतीय पुस्तक भाग ३
शासन समुद्र भाग २ (ख)	चतुर्थ पुस्तक भाग ४

इससे पाठको को क्रमबद्ध समझने और पढने में सुविधा रहेगी और आगे क्रमश. जितनी पुस्तके होगी उतने ही भाग हो जायेंगे।

अब इस पुस्तक मे प्रस्तुत है शासन-समुद्र भाग-५ जिसमे आचार्य भिक्षु के समय मे दीक्षित ५६ साध्वियो के तथा आचार्य भारीमालजी के समय मे दीक्षित ४४ साध्वियो के जीवन-वृत्त हैं। इस प्रकार दो आचार्यों के युग की १०० साध्वियो की जीवनिया शासन-समुद्र भाग-५ मे समाहित हैं।

जिस प्रकार बगीचे मे तरु, लता व पौधे आदि प्रफुल्लित, पुष्पित और फलित होते हैं, वह कुशल मालाकार के सत्प्रयत्न का ही सुपरिणाम है। उसी तरह मैं शासन-समुद्र ग्रथ के विशालतम कार्य क्षेत्र का अवगाहन कर सका वह महाप्रभावक आचार्य श्री तुलसी के मगल आशीर्वाद, अनुग्रह भरे निर्देशन एव प्रेरणाप्रद शक्ति का ही अचूक प्रभाव है। मैं उनके चरणारविन्दो की चचरीकता का अनुकरण कर रहा हूं। साथ-साथ उन साधु-साध्वियो एव सज्जनो को भी याद कर लेता हू जिन्होने अपनी सौहार्दपूर्ण सहानुभूति के साथ मुझे अपेक्षित योगदान दिया।

साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी के निर्देश से साध्वी सोमलताजी ने प्रूफ-संशोधन का कार्य बडी जागरूकता के साथ किया है। जैन विश्व भारती के कुल सचिव गोपीचन्दजी चोपडा, तुलसी अध्यात्म नीड्म के पद्मचन्दजी जैन (हिसार) तथा ब्राह्मी विद्यापीठ के प्राध्यापक श्री नाथूलालजी जैन 'जिज्ञासु' का शासन-समुद्र ग्रन्थ के हजारो पृष्ठो के पुनरावलोकन एवं समुचित सुझाव आदि मे अच्छा

योगदान रहा। उसके लिए मैं इन सबको साधुवाद देता हू।

जैन विश्व भारती मे कार्य विभाग की ओर से नियोजित लाडनूं वासिनी कुमारी कनक नाहटा ने शासन-समुद्र के अधिकाश पृष्ठो की अवधारणा की। इसके साथ उसकी जो सेवा-भावना और कार्य तत्परता रही उसके प्रति मैं प्रमोद भावना व्यक्त करता हुआ श्रेय मार्ग पर बढ़ने की शुभकामना करता हू।

जय जय शासन वीर का, जय जय तेरापंथ।
भिक्षु आदि तुलसीगणी, जय जय संत महंत ॥१॥

भिक्षु विहार,
जैन विश्व भारती,
लाडनू
१ दिसम्बर १९८१

—मुनि नवरत्न

प्रकाशकीय

साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। किसी भी जाति या समाज को भलीभाति जानने-समझने के लिए उसके साहित्य का अवलोकन परम अपेक्षित है। जो समाज जितना ही उन्नत होगा, उसका साहित्य भी उतना ही समृद्ध होगा। तेरापथ का सवा दो सौ वर्षों का इतिहास काल की दृष्टि से भले ही छोटा हो किन्तु कार्य की दृष्टि से वहुत महत्वपूर्ण है। इस धर्म-सघ के त्यागी, तपस्वी एव मनीषी साधु-साध्वियों ने जो कार्य किया है, वह सदैव स्वर्णाक्षरो मे अकित रहेगा। अपने धर्म-संघ के अतीत एव वर्तमान पर जब हम नजर डालते हैं तो हमे गौरव की अनुभूति होती है।

परमाराध्य आचार्यश्री तुलसी का साहित्य के प्रति विशेष लगाव है। सघीय तथा अन्य कार्यो मे अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी आपने अनेक मौलिक ग्रन्थो का सृजन किया है। तेरापंथ धर्म-सघ का इतिहास व्यवस्थित और सुसपादित होकर जनता के सामने आए, इसके लिए आपने अपने विद्वान शिष्य मुनिश्री नवरत्नमलजी को प्रेरित किया। मुनिश्री ने बड़े परिश्रम एवं विद्वता के साथ इस कार्य को पूरा किया है। 'शासन-समुद्र' के एक से लेकर चार भाग तक महासभा द्वारा प्रकाशित होकर पहले ही जनता के सामने आ चुके हैं। अव यह पांचवां भाग प्रस्तुत है।

इस अवसर पर अत्यन्त विनम्रतापूर्वक आचार्यवर के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हू, जिनकी असीम अनुकंपा से यह ग्रन्थ प्रकाशित करने का हमे अवसर मिला।

कलकत्ता
१ मई १९८३

केवलचन्द नाहटा
साहित्य-मत्री,
श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

विषयानुक्रम

क्रमांक		नाम		पृष्ठ
५९१-२-३	साध्वी श्री	हस्तूजी 'छोटा' (पीपाड)	...	१९६
६०।२-४	,,	राहीजी	...	१९८
६१।२-५	,,	कुशालाजी (जीलवाड़ा)	...	२००
६२।२-६	,,	कुन्नणांजी (केलवा)	...	२०२
६३।२-७	,,	दोलांजी (काकरोली)	...	२०५
६४।२-८	,,	चन्नणांजी (वड़ी खाटू)	...	२०८
६५।२-९	,,	चतूजी वड़ा (वाजोली)	...	२१६
६६।२-१०	,,	जसूजी (वीसलपुर)	..	२२५
६७।२-११	,,	कुशालाजी (वोरावड)	...	२२७
६८।२-१२	,,	गीगाजी (वाजोली)	...	२२९
६९।२-१३	,,	कुशालाजी (देवगढ)	...	२३१
७०।२-१४	,,	चतूजी 'छोटा' (तोसीणा)	...	२३३
७१।२-१५	,,	फत्तूजी (वोरावड)	...	२४४
७२।२-१६	,,	रंभाजी (पीसांगण)	...	२४६
७३।२-१७	,,	पन्नांजी (खोड़)	...	२५२
७४।२-१८	,,	कल्लूजी (रोयट)	...	२५४
७५।२-१९	,,	वाल्हांजी (आउवा)	...	२६५
७६।२-२०	,,	नगाजी (वोरावड)	...	२६७
७७।२-२१	,,	उमेदाजी (पाली)	...	२७३
७८।२-२२	,,	रत्नाजी (डीडवाणा)	...	२७५
७९।२-२३	,,	चन्दणाजी (माधोपुर)	...	२७६
८०।२-२४	,,	केशरजी (माधोपुर)	...	२७७
८१।२-२५	,,	गेनाजी (ज्ञानाजी) (गोपालपुरा)		२७८
८२।२-२६	,,	गगाजी	...	२८०
८३।२-२७	,,	नोजाजी	...	२८१
८४।२-२८	,,	वन्नाजी (गोपालपुरा)	...	२८२
८५।२-२९	,,	जतनांजी (वाजोली)	...	२८४
८६।२-३०	,,	मयाजी (देवगढ)	...	२८६
८७।२-३१	,,	मघूजी (सणदरी)	...	२९०
८८।२-३२	,,	वीजाजी (,,)	...	२९२
८९।२-३३	,,	अमियांजी (जसोल-वालोतरा)	...	२९६
९०।२-३४	,,	दीपाजी (जोरावर)	...	२९८
९१।२-३५	,,	पेमाजी (लावा)	...	३१७
९२।२-३६	,,	नन्दूजी (,,)	...	३१९

शासन-समुद्र

प्रथम आचार्य श्री भिक्षुगणी का शासन-काल

विक्रम सं० १८१७ से १८६०

दोहा

भिक्षु समय में साध्वियां, छप्पन हुई समस्त ।
विवरण उनका लिख रहा, लाकर भाव प्रशस्त ॥१॥

मंगल-स्तुति

लय-पल पल बीती जाए……

मगलमय मंगल-कृति में, सौलह सतियों को याद करूं २।
गुण सुमन चयन कर स्मृति में, नस-नस में रस आल्हाद भरूं २ ॥ध्रुव॥

हे ब्राह्मी और सुंदरी दोनों, कन्या अकन-कुमारी।
हे शिक्षार्थिनी वनी फिर खोली, संयम रस की क्यारी ॥मं.१॥

हे दमयंती ने विपदा-क्षण में, पति का साथ किया है।
हे धैर्य और साहस का सचमुच, परिचय बड़ा दिया है ॥२॥

हे शील-सलोनी कौशल्या की, निर्मल शील-क्रिया है।
हे पुरुषोत्तम गुण-धाम राम को, जिसने जन्म दिया है ॥३॥

हे जनक-सुता सीता का जग में, शील-प्रभाव अनूठा।
हे अग्नि हो गई शीतल पानी, सत्त्व-देवता तूठा ॥४॥

हे जननी पांच पांडवों की वह, कुती सती सयानी।
हे पावन पतिव्रता की प्रतिमा, स्मृति की वनी निशानी ॥५॥

हे द्रुपद-सुता के सत्य शील की, महिमा अति फैलाई।
हे चीर एक सौ आठ देखकर, परिषद् विस्मय पाई ॥६॥

हे राजीमती सती ने प्रियतम, पति का पथ अपनाया।
हे बोध-दान रथनेमि संत को, देकर ऊर्ध्व उठाया ॥७॥

हे सती पुष्पचूला ने सच्चा, भ्रातृ-भाव दिखलाया।
हे स्वच्छ हृदय से सवको अच्छा, मैत्रि-मंत्र सिखलाया ॥८॥

हे फला अभिग्रह महावीर का, चंदनबाला द्वारा।
हे शिष्या प्रथम बनी वह प्रभु की, चमका भाग्य सितारा॥९॥

हे प्रभावती श्री मृगावती फिर, पद्मा शिवा सुहाई।
हे 'चेटक' की चारों दुहिताएं, स्थान बड़ा ही पाई॥१०॥

हे सुलसा की दृढ़-निष्ठा से सुर, झुका परीक्षा करके।
हे वर तीर्थंकर गोत्र-उपार्जन, कर पाई धृति धर के॥११॥

हे खींचा जल चलनी से-खोले 'चंपा' के दरवाजे।
हे सती सुभद्रा के धरती पर, बजे सुयश के बाजे॥१२॥

हे शीलवती चारित्रवती सब, सतियों को कर वंदन।
हे श्रद्धानत हो प्रस्तुत करता, भावभरा अभिनंदन[1]॥१३॥

---

१. ब्राह्मी चन्दनबालिका भगवती राजीमती द्रौपदी।
कौशल्या च मृगावती च सुलसा सीता सुभद्रा शिवा।
कुन्ती शीलवती नलस्य दयिता चूला प्रभावत्यपि।
पद्मावत्यपि सुन्दरी दिनमुखे कुर्वन्तु मे मंगलम्॥

१. साध्वी श्री कुशालांजी (कुशलांजी)

(दीक्षा सं० १८२१, स्वर्ग सं० १८५४ के पश्चात् ६० के पूर्व भिक्षु युग मे)

गीतक-छन्द

भाव-दीक्षा भिक्षु ने ली पंथ प्रभु का पा लिया।
बने श्रावक-श्राविका मुनि पर न दीक्षित साध्वियां।
तीन हैं तीर्थ खण्डित-मोदकोपम आपके।
सुगुरु बोले चौगुनी का योग्य है वह स्वाद के ॥१॥

दोहा

वहनें कुछ ही समय में, हुई तीन तैयार।
फली भावना भिक्षु को, स्वप्न हुआ साकार ॥२॥

गीतक-छन्द

तीन वहनें साथ में आ भिक्षु से वोली प्रभो।
चाहती भव-सिन्धु तरना साधिका वन हम प्रभो।
कहा गुरु ने स्पष्ट उनको शर्त है इसके लिए।
ध्यान से सुनलो सभी फिर सोचलो उसके लिए ॥३॥

एक का भी तीन में से हुआ अगर वियोग है।
शेष दो के लिए तप का एक मात्र प्रयोग है।
हो गई मंजूर जव वे भावना भर वलवती।
भिक्षु गुरु ने दी उन्हें तव सही दीक्षा भगवती ॥४॥

दोहा

एक वीस को साल में, खिला संघ का रूप।
मोदक पूरा हो गया, तीर्थ चतुष्टय रूप ॥५॥

कुशलां को गुरुदेव ने, वड़ा रखा कर गौर।
खुशहाली छाई वड़ी, हुई सुनहरी भोर[1] ॥६॥

गीतक-छन्द

प्रथम मुनि 'थिरपाल' स्थिर गण नींव करने के लिए।
प्रथम 'कुशलां' सती गण में कुशल करने के लिए।
मिले है श्री भिक्षु गुरु को धर्म-ध्वज फहरा गये।
जैन शासन उदय मे शुभ सूचना ले आ गये ॥७॥

दोहा

क्रमशः होती ही गई, गण में रेलमरेल ।
गुलशन मे बढ़ती गई, जैसे नागर वेल[2] ॥८॥
कुशल-क्षेम की साधना, कुशलां ने वहुवर्ष।
अन्त समय मे तो वड़ा, दिखलाया आदर्श ॥९॥
अकस्मात् अहि ने डसा, फिर भी दृढ़ संकल्प ।
की न यंत्र-मंत्रादि की, वांछा दिल में अल्प ॥१०॥
रमती समता भाव में, चली गई सुरधाम ।
शान्ति-युक्त गुदोच में, सफल किया सब काम[3] ॥११॥

१. आचार्य श्री भिक्षु ने तेरापथ धर्म-संघ का शुभारम्भ सं. १८१६ (सावनादि क्रम से) आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा को केलवा (मेवाड) मे किया।[१] उस समय दीक्षित होने वाले १३ साधुओ मे चातुर्मास के पश्चात् ८ साधु सम्मिलित रहे। उसके बाद कई वर्षों तक सघ मे श्रावक-श्राविका तो बने किन्तु साध्वियां नही हुई। इसके लिए किसी व्यक्ति ने व्यग करते हुए कहा—'भीखणजी ! आपके सघ मे तो तीन ही तीर्थ हैं—साधु, श्रावक, श्राविका पर साध्वियां नही है अत. आपका तीर्थ रूप लड्डू खडित (अपूर्ण) है।' स्वामीजी ने अपनी औत्पात्तिकी बुद्धि से तत्काल उत्तर देते हुए कहा—'लड्डू खडित होने पर भी चौगुनी (चार गुनी चीनी मिलाने से चौगुनी का लड्डू कहलाता है) का है इसलिए स्वादिष्ट ही है।'[२]

(भिक्खु दृष्टान्त २२)

सं० १८२१ मे स्वामी भीखणजी के प्रेरणाप्रद उपदेश से तीन बहनें—कुशालाजी, मट्टूजी और अजबूजी दीक्षा लेने के लिए तैयार हुई। स्वामीजी ने उन्हे शिक्षा देते हुए कहा—'तुम तीनो साध्वियो के विद्यमान रहते हुए दूसरी साध्वियां हो जाए तब तो ठीक है परन्तु यदि न हो और तुम तीनो मे से कदाचित् एक या दो का वियोग हो जाए तो क्या करोगी ? क्योंकि अकेली तथा दो साध्वियों के विहरण करने-का विधान नही है। अत: एक या दो के दिवंगत होने पर

---

१. विक्रम संवत् चैत्र शुक्ला १ को बदलता है। जैन तथा कुछ जैनेतर परम्परा मे वह श्रावण कृष्णा १ को बदलता है। इस ग्रन्थ में प्राय: इसी सवत् का उल्लेख किया गया है, जहां विक्रम सवत् का उल्लेख है वहा स्पष्ट कर दिया गया है।

२. साधू श्रावक-श्राविका, सखर भला सुविनीत।
समणी न हुई स्वाम रै, वर्ष किता इम वीत॥
किणहिक भीक्खू नै कह्यो, तीर्थ थारै तीन।
साध श्रावक ने श्राविका, समणी नही सुचीन॥
तिण करण छै तांहरै, मोदक मोटो माण।
समणी विण खांडो सही, प्रत्यख देख पिछांण॥
भीक्खू ऋष भाखै इसो, लाडू खाडो लेख।
पण चौगुणी तणो पवर, स्वाद अनूप सपेख॥
आछी बुद्धि उत्पात सू, उत्तर दियो अनूप।

(भिक्खुजशरसायण ढा ११ दो. १ से ५)

संलेखना[1] कर, आत्म-कल्याण करने की हिम्मत हो तो दीक्षा लो।'

वे तीनों बहिनें स्वामीजी के उक्त सुझाव को हृदय से स्वीकार करती हुई वीरवृत्ति पूर्वक दीक्षा के लिए कटिबद्ध हो गईं।

इस प्रकार पक्का करार करने के पश्चात् स्वामीजी ने सं. १८२१ में तीनों बहनों को एक साथ संयम प्रदान किया।[2] उनके दीक्षित होने पर चार तीर्थ रूप मोदक पूर्ण हो गया। (ख्यात तथा भिक्खु दृष्टांत १४७)

वे तीनों बहनें किस देश, गांव और किस तिथि को दीक्षित हुईं, इसका मूलभूत ग्रंथों में उल्लेख नहीं मिलता। स्वामीजी का सं. १८२१ का चातुर्मास केलवा (मेवाड) में और सं. १८२२ का चातुर्मास सिरियारी (मारवाड़) में था। मेवाड में उस समय चातुर्मास में दीक्षा न होने की परम्परा के कारण सं १८२१ मृगसर कृष्णा १ से आषाढ पूर्णिमा के बीच तीनों बहनों की दीक्षा हुई थी ऐसा ज्ञात होता है। स्वामीजी का विहार क्षेत्र उस अवधि में मेवाड़ और मारवाड दोनों रहे हैं अतः निश्चित नहीं कहा जा सकता कि दीक्षा मेवाड़ में हुई या मारवाड में। तीनों बहनों के लिए भी यह निर्णय नहीं किया जाता कि वे मेवाड की थीं या मारवाड की।[3]

---

१. समाधि-मरण की भावना से शरीर को कृश करने के लिए की जाने वाली तपस्या विशेष को संलेखना कहा जाता है।

२. इकवीसा रै आसरै, तीन जण्यां तिहवार।
एक साथ व्रत आदर्‌या, पहिला कियो करार॥
विरह पडै जो एक नो, तो दोयां नैं देख।
रहिवू नहि करणी तदा, संलेखणा सुविसेख॥
(शासन-विलास ढा. २ दो. २, ३)

तीन बाया त्यारी हुई, संजम लेवा साथ।
भीक्खू रिप भाखैं भली, सुन्दर शीख साख्यात॥
संजम लेवो साथ त्रिण, पण तीना में पेख।
वियोग एक तणो हुवा, स्यूं करिवो सुविसेख॥
संलेखणा करणी सही, त्यां दोयां नैं ताम।
करार पको इम करी, संजम दीधो स्वाम॥
कुशलाजी मटू कही, तीजी अजबू ताय।
एक साथे अदराविया, साधपणो सुखदाय॥
(भिक्खुजशरसायण ढा. ११ दो. ६ से ९)

३. क्वचिद् उन्हें मेवाड़ प्रदेश की लिखा है पर वह प्रमाणित नहीं है।

तीनो वहनो ने सभवत: पति वियोग के पश्चात् दीक्षा ग्रहण की क्योंकि जिन साध्वियों का अविवाहित वय मे पति सहित या पति को छोड़कर दीक्षित होने का ख्यात मे उल्लेख नही मिलता उन्होने पति वियोग के वाद दीक्षा ली ऐसा प्रतीत होता है। हमने सर्वत्र यही उल्लेख किया है।

स्वामीजी ने तीनों साध्वियो मे साध्वी कुशलांजी को दीक्षा-पर्याय मे वड़ी रखा।[1]

२. साधु समाज मे सर्वप्रथम नाम मुनि श्री थिरपालजी (गण की नीव स्थिर करने के लिए) का है। साध्वी समाज मे सर्वप्रथम नाम साध्वी श्री कुशलांजी (गण मे कुशल क्षेम के लिए) का है। इसे एक स्वाभाविक शुभ संयोग ही समझना चाहिए। जयाचार्य ने भी अपने पद्यो में ऐसा अभिव्यक्त किया है—

'कुशल खेम अवतार'

(भिक्खुजशरसायण ढ़ा. ५१ दो. ५)

'कुशल खेम करतार'

(शासन-विलास ढ़ा. २ दो. ५)

साध्वी श्री कुशलांजी ऐसी मांगलिक वेला मे संघ की सदस्या वनी कि उत्तरोत्तर साध्वियों की अभिवृद्धि होती चली गई। उन्हे संलेखना करने की आवश्यकता ही नही हुई।

तेरापथ धर्म-संघ की स्थापना होने के पश्चात् दीक्षित होने का सर्वप्रथम श्रेय साध्वी समाज को है। साधुओ की दीक्षा उसके वाद सं. १८२२ से प्रारम्भ हुई।

३. साध्वी कुशलांजी विनय, आर्जव, मार्दव आदि गुणो को विकसित करती हुई अनेक वर्षो तक सकुशल सयम की आराधना मे लीन रही। आखिर 'गूदोच' मे अकस्मात् उन्हे सांप डस गया और वे व्याधि-ग्रस्त हो गई। उन्होने उस वेदना को समतापूर्वक सहन किया किन्तु किसी प्रकार के यंत्र-मत्रादिक की इच्छा नही की। कुछ ही समय पश्चात् समाधि-भाव मे रमण करती हुई दिवगत

---

१. एक साथ व्रत आदरचा, तीन जण्या तिणवार।
कुसलाजी वडी करी, कुशल खेम अवतार॥
(भक्खुजशरसायण ढा. ५१ दो. ५)
चरण ग्रह्यूं इक साथ त्रिहुं, कुशल खेम करतार।
कुसलांजी थापी वड़ी, भिक्षु बुद्धि भडार॥
(शासन-विलास ढा. २ दो. ५)

हो गई।[1]

साध्वी श्री का स्वर्गवास सवत् प्राप्त नही है, परन्तु १८३४ ज्येष्ठ शुक्ला ६ के सामूहिक लेखपत्र क्रम संख्या २ मे उनके हस्ताक्षर हैं।[2]

स. १८५२ फाल्गुन कृष्णा ८ को साध्वी चन्दूजी (१३) ने साध्वी कुशलाजी पर मिथ्या आरोप लगाये, उस समय स्वामीजी के बुलाने पर वे सिरियारी

---

१. पवर चरण शुद्ध पालताजी, कुसलाजी नै विचार।
दीर्घपृष्ठ गुंदोच मे जी, ते डसियो तिणवार॥
खिम्यावत धिन सतियां अवतार॥
जंत्र-मत्र झाड़ा भणी जी, वछ्यो नही तिणवार।
शुद्ध परिणामे महासती जी, पोहती परलोक मझार॥
(भिक्खुजशरसायण ढ़ा. ५१ गा. १, २)
दीर्घपृष्ठ डसियां कुसलांजी, काल कियो गुदोच विषै।
(शासन विलास ढ़ा. २ गा. १)
कुसालाजी मट्टूजी सुजाणाजी साची, देउजी पंडित मरणे राची।
ए च्यारुं आरज्या हुई चतुर मती, समरो मन हरपे मोटी सती॥
(संतगुणमाला-पडित मरण ढ़ा. २ गा. १)

ख्यात मे साध्वीश्री के लिए लिखा है—'कुसलांजी प्रकृत रा बोहत सुध, वनीत ठेठ तांई कुशल खेम थका, पार उतरया, गांम गुंदोच मे सर्प डसियो ते जोग सूं काल कर गया, तिके धन शासन मे पडित मरण पावै। परिणाम तीखा रया।'

२. लेखपत्र, मे कुल १३ साध्वियो के हस्ताक्षर हैं—

१. सुजाणांजी	(४)	८. फत्तूजी	(१०)
२. मटूजी	(२)	९. अखूजी	(११)
३. कुशलांजी	(१)	१०. अजबूजी	(१२)
४. कसुंबाजी	(८)	११. चंदूजी	(१३)
५. जीऊजी	(६)	१२. धन्नूजी	(१६)
६. नंदूजी	(१९)	१३. मैणाजी	(१५)
७. गुमानांजी	(७)		

पहुची और उन्होने शपथ-पूर्वक कहा कि वे सारे दोषारोपण मिथ्या है। स्वामी जी ने अच्छी तरह जाच की तो वे वेवुनियाद ही निकले।

(व्यक्तिगत लेखपत्र स. १८५२ सं. २४)

सं. १८५४ मे गण से पृथक् होने के पश्चात् भी चंदूजी ने कुशलांजी के अवर्णवाद वोले।

(व्यक्तिगत लेखपत्र स. १८५४ स. २५)

इन सदर्भो से जाना जाता है कि साध्वी कुशलांजी स. १८५४ तक विद्यमान थी और स. १८६० मे स्वामीजी के स्वर्ग-प्रस्थान के समय विद्यमान नही थी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उनका स्वर्गवास स. १८५४ और १८६० के वीच आचार्य-भिक्षु के समय मे हुआ।

साध्वी कुशलांजी का स्वर्गवास जव स. १८५४ और ६० के वीच हुआ तो प्रश्न होता है कि स. १८५२ फाल्गुन शुक्ला ६ के सामूहिक लेखपत्र[1] स. ७ मे उनके हस्ताक्षर क्यो नही? इसका समाधान यही है कि उस समय वे उपस्थित नही थी। उपर्युक्त उल्लेख से भी (स्वामीजी के बुलाने पर वे सिरियारी पहुची) यह प्रमाणित होता है।

---

१. लेखपत्र मे हस्ताक्षर करने वाली १४ साध्विया है—

१. मैणांजी	(१५)	८. वनाजी	(४१)
२. सरुपांजी	(३८)	९. अजवूजी	(३०)
३. वरजूजी	(३९)	१०. गुमानाजी	(३३)
४. वीजाजी	(४०)	११. लालाजी	(३२)
५. वन्नाजी	(२६)	१२. चंदूजी	(१३)
६. धन्नूजी	(१६)	१३. वीरांजी	(४२)
७ सदांजी	(२१)	१४. रत्तूजी	(१८)

शासन-प्रभाकर भिक्षु सती वर्णन ढ़ा. ३ गा. ८५, ८६ मे लिखा है कि उन्होंने अंत मे अनशन किया।[1] लेकिन वह अन्य किन्ही ग्रन्थों से सम्मत नही है।

---

१. वहा अनशन करने वाली ११ साध्वियो के नाम है —

१. कुशलाजी	(१)	७. जीऊजी	(९)
२ मटूजी	(२)	८. मैणाजी	(१५)
३. सुजाणाजी	(४)	९. सदांजी	(२१)
४. देऊजी	(५)	१०. फूलाजी	(२२)
५. गुमानाजी	(७)	११. रूपाजी	(३७)
६. कसुम्बांजी	(८)		

इनमे ७ साध्वियो के अनशन अन्य ग्रन्थो से प्रमाणित है और चार साध्वियों के नही—(१) कुशलाजी, (२) मटूजी, (३) सुजाणांजी, (४) देऊजी।

शासनप्रभाकर मे एक भूल और रही है। वहा स्वामीजी के समय दिवगत होने वाली ११ साध्वियो का ही उल्लेख किया है जबकि १२ साध्वियां दिवगत हुई ऐसा प्रमाणित होता है। साध्वी रगूजी का स्वर्गवास शासन-प्रभाकर मे भारीमालजी स्वामी के समय मे हुआ लिखा है परन्तु वे भिक्षु समय मे ही संथारा करके दिवंगत हो गई थी (देखें समीक्षा साध्वी रगूजी के प्रकरण मे)

२. साध्वी श्री मट्टूजी

(दीक्षा सं० १८२१, स्वर्ग सं० १८३४-१८५२ के वीच) या १८६० के पूर्व स्वामीजी के समय)

दोहा

धन्य धन्य मट्टू सती, चरण रत्न ले इष्ट[१]।
आराधक पद पा गई, धर गुरु आज्ञा शिष्ट[२] ॥१॥

१. साध्वी श्री मट्टूजी पति वियोग के बाद धर्म-संघ की दूसरी साध्वी हुई। उनकी दीक्षा प्रथम साध्वी श्री कुशालांजी (१) तथा तृतीय अजबूजी (३) के साथ स्वामीजी के हाथ से सं १८२१ मे हुई। पूरा विवरण साध्वी कुशालांजी के प्रकरण मे दे दिया गया है।

(ख्यात)

२. साध्वीश्री ने बहुत वर्षो तक संयम का पालन कर अपनी आत्मा को उज्ज्वल बनाया एवं 'पंडित मरण'[1] प्राप्त किया[2]।

उनका स्वर्गवास संवत् नही मिलता, किन्तु १८३४ के लेखपत्र (क्रम संख्या-२) मे उनके हस्ताक्षर है और सं० १८५२ फाल्गुन शुक्ला ८ के लेखपत्र (क्रम संख्या ७) मे नही, इससे ज्ञात होता है कि उक्त वर्षों की मध्यावधि में वे दिवंगत हुई।

शासनप्रभाकर-भिक्षु सती वर्णन ढा. ३ गा. ८५, ८६ में लिखा है कि उन्होने अंत मे अनशन किया पर वह अन्य किन्ही ग्रंथों से सम्मत नही है।

---

१. संयमी जीवन को संपन्न कर साधु साध्वी प्रसन्नता पूर्वक मरण प्राप्त करते हैं उसे पंडित मरण (समाधि-मरण) कहा जाता है।

२. मटूजी मोटी सती, स्वाम आंण सिर धार।
पद आराधक पामियो जी, ओ भीक्खू नो उपगार॥

(भिक्खुजशरसायण ढा.५१ गा.३)

पंडित मरण मटुजी पाया, धिन जे चारित्र रत्न रखै।

(शासन-विलास ढा. २ गा.१)

'कुसालांजी मटूजी सुजाणाजी साची।'

(सतगुणमाला-पंडित मरण ढा.२ गा.१)

३. श्री अजबूजी

(दीक्षा सं० १८२१, १८३४ जेठ सुदि ९ के बाद १८३७ माघ वदि ९ के पूर्व गणबाहर)

रामायण-छन्द

कर शर्तें मंजूर सभी ही 'अजबू' गण-वन में आई[1] ।
लेकिन विषम प्रकृति के कारण संयम नही निभा पाई ।
कितने वर्षों बाद संघ को छोड़ दिया है विना विवेक ।
तब तक हो पाई थी दीक्षित गण मे सतियां और अनेक[2] ।।१।।

१. साध्वी अजबूजी ने पति वियोग के बाद साध्वी कुशालांजी (१) और मट्टूजी (२) के साथ स्वामीजी के हाथ से स. १८२१ मे दीक्षा ग्रहण की। पूरा विवरण साध्वी कुशलांजी के प्रकरण मे दे दिया गया है।

(ख्यात)

२. उनकी प्रकृति अच्छी नही थी, जिससे कुछ वर्षो के बाद वे गण से अलग हो गई। उस समय तक भैक्षव शासन मे अनेक साध्वियों की दीक्षा हो चुकी थी[1]।

(ख्यात)

उनके गण से पृथक् होने का संवत् प्राप्त नही है। लेकिन १८३४ ज्येष्ठ शुक्ला ६ के लेखपत्र (सामूहिक क्रम संख्या २) मे उनके हस्ताक्षर है और सं. १८३७ माघ कृष्णा ६ के लेखपत्र (व्यक्तिगत क्रम स. १३) में हस्ताक्षर नही हैं इससे ज्ञात होता है कि उक्त अवधि के बीच वे गण से पृथक् हुई[2]। सं. १८३७ तक भैक्षव शासन मे कुल १६ साध्वियो की दीक्षा हो चुकी थी।

---

१. काल केतलै ताम रे, अज्जा अपर थयां पछै।
अजबू छूटी आम रे, प्रकृति अजोग प्रताप थी ॥

(शासन-विलास ढ़ा.२ सो.२)

अजबू प्रकृति अजोग रे, कर्म जोग सू नीकली।
प्रकृति कठण प्रयोग रे, चारित्र खोवै छिनक मे ॥

(भिक्खुजशरसायण ढ़ा. ५१ सो. १)

२. मुनि नथमलजी (३६४) बागोर के पास एक पत्र मे लिखा है कि वे सं. १८३७ मे गणबाहर हुई।

४. साध्वी श्री सुजानांजी

(दीक्षा सं० १८२१ और १८३३ के बीच, स्वर्ग सं० १८३७ और १८५२ के बीच)

दोहा

संयम का उत्साह से, बड़ा उठाया भार[1]।
सती सुजानां ने उसे, पहुंचाया है पार[2] ॥१॥

१. साध्वी श्री सुजानांजी पति वियोग के वाद तेरापंथ धर्म-संघ मे दीक्षित हुई।

(ख्यात)

उनका दीक्षा-वर्ष नही मिलता परन्तु उनसे पहले कुशालांजी (१) आदि की दीक्षा स. १८२१ मे और वाद की साध्वी फत्तूजी (१०) आदि की स. १८३३ में हुई, इससे ज्ञात होता है कि स. १८२१ और १८३३ के बीच उनकी दीक्षा हुई।

२. साध्वीश्री वड़ी चतुर थी, उन्होने सयम की आराधना कर अपने जीवन को सार्थक कर लिया[1]।

(ख्यात)

उनका स्वर्गवास सवत् नही मिलता। स. १८३४ ज्येष्ठ शुक्ला ९ के लेख-पत्र (सामूहिक क्रम सख्या २) तथा १८३७ माघ वदि ९ के लेखपत्र (व्यक्तिगत क्रम सख्या. १३) में उनके हस्ताक्षर हैं[2] लेकिन स. १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लेखपत्र (सामूहिक क्रम स. ७)मे हस्ताक्षर नही है इससे लगता है कि उनका स्वर्गवास स. १८३७ और १८५२ के बीच हुआ।

भिक्षुयशरसायण ढा ५१ गा. ४ तथा सत गुणमाला-पडित-मरण ढा. २ मे भी उनके पडित-मरण प्राप्त करने का उल्लेख है।

शासन प्रभाकर-भिक्षु सती वर्णन ढा. ३ गा. ८५,८६ मे लिखा है कि उन्होने अत मे अनशन किया पर वह अन्य किन्ही ग्रथो से सम्मत नही है।

---

१. सतिय सयाणी सखरी वाणी, नाम सुजाणां सोभती।
भिक्षु गण मे परभव पहुंती, फुन देऊजी दीपती॥

(शासन-विलास ढा.२ गा.३)

२ यह लेखपत्र मुख्यतया तिलोकचन्दजी, चन्द्रभाणजी से संवंधित है। अंत मे ५ साधु और ८ साध्वियो के हस्ताक्षर है :—

१. हरनाथजी (६), २. भारमलजी (७),३. सुखरामजी (९), ४. अखैरामजी (१०) ५. नगजी (२०)।

१. सुजाणांजी (४), २. जीऊजी (९), ३. केलीजी (१७), ४. नदूजी (१९), ५. फत्तूजी (१०), ६. चदूजी (१३), ७. धन्नूजी (१६), ८. मैणांजी (१५)।

५. साध्वी श्री देऊजी

(दीक्षा सं० १८२१ और १८३३ के बीच, स्वर्ग सं० १८३४ के पूर्व या बाद में स्वामीजी के समय)

दोहा

'देवू' ने शुभभाव से, ग्रहण किया चारित्र[1]।
तन्मयता से पाल के, पाया लक्ष्य पवित्र[2] ॥१॥

१. साध्वी देऊजी ने पति वियोग के बाद भिक्षु शासन में दीक्षा स्वीकार की ।

(ख्यात)

उनका दीक्षा संवत् नहीं मिलता किन्तु उनसे पहले कुशालांजी (१) आदि की दीक्षा सं. १८२१ में और बाद की साध्वी फत्तूजी (१०) आदि की सं. १८३३ में हुई, इससे ज्ञात होता है कि सं. १८२१ और १८३३ के बीच उनकी दीक्षा हुई ।

२. साध्वीश्री ने सम्यक् प्रकार से साधुत्व का पालन कर अपने लक्ष्य को प्राप्त किया ।

(ख्यात)

उनका स्वर्गवास संवत् नहीं मिलता । सं. १८३४ ज्येष्ठ शुक्ला ६ के लेख-पत्र (सामूहिक क्रम स. २) में उनके हस्ताक्षर नहीं हैं । उनके बाद की साध्वियों के हस्ताक्षर हैं । इससे यह अनुमान किया जाता है कि वे उससे पूर्व दिवंगत हो गई । उस समय उपस्थित न होने से अथवा हस्ताक्षर करना न जानने से यदि हस्ताक्षर न हुए हों तो उनका स्वर्गवास बाद में स्वामीजी के समय में ही हुआ क्योंकि स्वामीजी के स्वर्गवास के समय विद्यमान २७ साध्वियों में उनका नाम नहीं है[1] ।

भिक्षु-यश-रसायण ढ़ा. ५१ गा. ४, शासन-विलास ढ़ा.२ गा.३ तथा संत गुणमाला—पंडित मरण ढ़ा.२ गा.१ में भी उनके पंडित-मरण प्राप्त करने का उल्लेख है ।

शासन प्रभाकर भिक्षु-सती-वर्णन ढ़ा. ३ गा. ८५,८६ में लिखा है कि उन्होंने अंत में अनशन किया पर वह अन्य किन्हीं ग्रंथों से सम्मत नहीं है ।

---

१. देखें शासन-समुद्र भाग १ (क) पृ. २९९ में ।

६. श्री नेतूजी

(दीक्षा सं० १८२१-३३ के बीच, १८३४ के पूर्व या स्वामीजी के समय गणवाहर)

सोरठा

ली 'नेतू' ने राह, संयम की उत्साह से[१]।
हुई न पूरी चाह, कठिन प्रकृति के योग से[२] ॥१॥

१. नेतूजी पति वियोग के बाद साध्वी बनी।

(ख्यात)

उनका दीक्षा संवत् नही मिलता किन्तु साध्वी सुजाणांजी (४) और देऊजी (५) की तरह सं· १८२१ और १८३३ के बीच दीक्षा ली, ऐसा प्रतीत होता है।

२. वे प्रकृति की उग्रता और स्वच्छन्द वृत्ति के कारण गण से पृथक् हो गई[1]।

(ख्यात)

उनके गण से अलग होने का सवत् नही मिलता। स १८३४ ज्येष्ठ शुक्ला ९ के लेखपत्र (सामूहिक क्रम सख्या २) मे उनके हस्ताक्षर नही है बाद की साध्वियो के है इससे यह अनुमान किया जाता है कि वे उक्त तिथि के पूर्व गण से पृथक् हुई। उस समय उपस्थित न होने से अथवा हस्ताक्षर करना न जानने से यदि हस्ताक्षर न हुए हों तो बाद मे स्वामीजी के समय मे ही गण से बाहर हुई क्योकि स्वामीजी के स्वर्ग गमन के पश्चात् विद्यमान २७ साध्वियो में उनका नाम नही है।

---

१. प्रकृति अजोग प्रताप रे, नेतू गण थी नीकली।
प्रबल उदय तसुं पाप रे, ते आराधक किम हुवै॥

(शासन-विलास ढ़ा.२ सो.४)

भिक्षुजशरसायण ढा. ५१ सो. २ तथा शासनप्रभाकर ढ़ा. ३ सो. ८ में भी ऐसा ही उल्लेख है।

७. साध्वी श्री गुमानांजी ८. साध्वी श्री कसुम्बांजी

(दीक्षा सं० १८२१ और १८३३ के बीच, स्वर्ग सं० १८३४ और १८५२ के बीच)

रामायण-छन्द

सती गुमाना और कसुम्वा श्रमणी बन करके फूली।
भैक्षव-गण-वनिका में आई सुखमय झूले में झूली[1]।
गुरु-शिक्षा को कर हृदयंगम सही साधना कर पाई।
अनशन कर निर्मल भावों से साध्य शिखर पर पहुंचाई[2] ॥१॥

१. साध्वीश्री गुमानांजी और कसुम्बांजी ने पति वियोग के बाद वैराग्य भावना से सयम स्वीकार किया।

(ख्यात)

उनका दीक्षा वर्ष उपलब्ध नही है लेकिन सुजाणांजी आदि (क्रम सं. ४ से ७) साध्वियो की तरह सं. १८२१ और १८३३ के बीच वे दीक्षित हुई ऐसा ज्ञात होता है।

२. दोनों साध्वियो ने सानद संयम की आराधना की और शेष में उच्चतम भावों से अनशन कर आत्म-कल्याण किया[1]।

(ख्यात)

दोनों साध्वियो के दिवंगत होने का सवत् नही मिलता। सं. १८३४ ज्येष्ठ शुक्ला ६ के लेखपत्र (सामूहिक क्रम स. २) मे उन दोनों के हस्ताक्षर हैं और स. १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लेखपत्र (सामूहिक क्रम सं. ७) में नहीं है अतः दोनो का स्वर्गवास स. १८३४ और १८५२ के बीच का ठहरता है।

---

१. सतिय गुमानांजी सुखदाई, वली कसुंवा गुणवती।
सथारो करि ए विहु सतियां, परभव पहुती पुन्यवंती॥
(शासन विलास ढा.२ गा. ५)

सती गुमाना सोभती जी, संजम वर सथार।
इमज कसूवाजी अखी जी, अणसण अधिक उदार॥
(भिक्खुजशरसायण ढ़ा. ५१ गा. ५)

गुमानाजी, कसुवाजी, जीऊजी जाणो।
तीनूं सथारो करी छोड्या प्राणो,आं पाम्यां हुसी सुख अमरपती॥
(संत गुणमाला-पंडित मरण ढ़ा. २ गा. २)

९. साध्वी श्री जीऊजी (रीयां)

(दीक्षा सं० १८२१ और १८३३ के बीच, स्वर्ग सं० १८३७ और १८५२ के बीच)

गीतक-छन्द

सती जीऊ मरुधरा की ग्राम 'रीयां' वासिनी ।
पुत्र पौत्रादिक स्वजन तज बनी आत्म-विकासिनी ।
प्रौढ़वय में चरण ले पुरुपार्थ का परिचय दिया[1] ।
चख लिया रस साधना का अंत में अनशन किया[2] ॥१॥

१. साध्वी श्री जीऊजी मारवाड़ मे 'रीया' (पादू के पास) की वासिनी थी। उन्होने पति वियोग के पश्चात् पुत्र, पुत्र-वधू तथा पौत्रादिक परिवार को छोड़कर दीक्षा स्वीकार की[1]।

(ख्यात)

उनका दीक्षा सवत् प्राप्त नही है पर सुजाणाजी आदि (क्रम सं. ४ से ८) साध्वियो की तरह सं. १८२१ और १८३३ के बीच दीक्षित हुई ऐसा मालूम देता है।

२. साध्वी श्री ने कई वर्षो तक चारित्र का पालन कर पीपाड़ मे अनशन पूर्वक समाधि मरण प्राप्त किया।

(ख्यात)

श्रावको ने ४१ खडी मडी (वैकूटी) बनाकर उनकी शोभायात्रा निकाली और दाह सस्कार किया[2]।

उनके स्वर्ग गमन का वर्ष नहीं मिलता। सं.१८३४ ज्येष्ठ शुक्ला ६ के लेखपत्र (सामूहिक क्र. २) मे तथा स. १८३७ माघ वदि ६ के लेखपत्र (व्यक्तिगत क्रम. स. १३) मे उनके हस्ताक्षर है और १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लेखपत्र (सामूहिक क्र. स. ७) मे नही है अत अनुमान किया जाता है कि उनका स्वर्गवास स. १८३७ माघ वदी ६ के बाद और १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के पूर्व हुआ।

---

१. जीऊजी वले जाणियै, स्वाम तणै गण सार।
पोतो वहू सुत परहरी, वासी रीया रा विचार॥

(भिक्खुजशरसायण ढा. ५१ गा. ६)

वहु सुत पोतो तज सजम भज, जीऊ रीयां तणी न्हाली।

(शासन विलास ढ़ा. २ गा. ६)

२. काल कितेक पछै कियो जी, शहर पीपाड़ संथार।
इगताली खंडी ओपती जी, मांढ़ी करी तिवार॥

(भिक्खुजशरसायण ढा. ५१ गा. ७)

परभव सैहर पीपाड़ सथारो, तसु मांढी खड इकताली।

(शासन विलास ढा. २ गा. ६)

गुमानांजी कसुंबांजी, जीऊजी जाणो।
तीनूं सथारो करी छोड्या प्राणो, आं पाम्यां हुसी सुख अमरपती॥

(सत गुणमाला-पडित मरण ढ़ा. २ गा. २)

१०. श्री फत्तूजी ११. अखूजी १२. अजबूजी १३. चन्दूजी

(दीक्षा सं० १८३३, १८३७ में गणबाहर। चन्दूजी १८५४ में तीसरी बार गणबाहर)

रामायण-छन्द

स्थानकवासी सम्प्रदाय को तजकर आई भिक्षु समीप।
लिखित उन्हें मंजूर कराकर दिया सुगुरु ने सयम-दीप[1]।
थी स्वछन्दचारिणी जिससे मुश्किल चलना शासन में।
नही नम्रता प्रकृति-सरलता और न निर्मलता मन में ॥१॥
एक वार पुर चंडावल में कहा भिक्षु ने बुला उन्हें।
ले लो कपड़ा कल्प मुताबिक जितनी भी हो चाह जिन्हें।
मांगा उतना तंतु दे दिया स्वामीजी ने कर से माप।
पूछा-अधिक न मर्यादा से ? तब इन्कार हुई वे साफ ॥२॥
आशंका होने से वापस सारा कपड़ा मंगवाया।
अधिक मापने से निकला तब चिन्तन गुरु मन मे आया।
अधिक रखा है वस्त्र उन्होने फिर बोली वे बिल्कुल झूठ।
नही नीति है शुद्ध, कपट कर देती है संयम को पूठ ॥३॥
अप्रतीति होने से उनका सब संबंध दिया है तोड़।
'चैनां' और पांचवी उनमे दी है पांचों को ही छोड।
नही उस समय भिक्षु संघ मे बीस साध्वियों से ज्यादा।
फिर भी की परवाह न गुरु ने, सह्य न खण्डित मर्यादा[2] ॥४॥

दोहा

चदू फिर साध्वी बनी, कर भूले मजूर।
पृथक् हुई फिर आ गई, फिर की गण से दूर[3] ॥५॥

१. साध्वी फत्तूजी, अखूजी, अजवूजी और चन्दूजी पहले स्थानकवासी (आचार्य रुघनाथजी के) सम्प्रदाय में दीक्षित हुई थी। फिर स. १८३३ के पाली चातुर्मास मे वे स्वामीजी के पास आई और दीक्षित करने के लिए कहने लगी। स्वामीजी ने उन्हें आचार-विचार की विधि एव संघीय मर्यादा वतलाई तथा एक लेखपत्र लिखकर उसकी सारी शर्तें मजूर करवाई। फिर स. १८३३ मृगसर वदि २ बुद्धवार को पाली मे चारों को दीक्षा दी। लेखपत्र मे लिखा है—'लिखत वचाय अगीकार करायो ने सामायिक चारित्र अंगीकार करायो छै।'

(स. १८३३ का व्यक्तिगत लेखपत्र क्रम स. ६)

उक्त चारो मे साध्वी चन्दूजी पीपाड़ निवासी विजयचदजी लूणावत की पुत्री थी। (भिक्खु दृष्टान्त २७०)

२. फत्तूजी आदि चारों साध्विया तेरापथ मे दीक्षित तो हुई परन्तु पहले स्वच्छन्द रहने के कारण गुरु के अनुशासन मे चलना कठिन हो गया। प्रकृति मे नम्रता, सरलता और सयम मे दृढ़ आस्था भी नही थी जिससे धीरे-धीरे शिथिलता वढती गई। समय-समय पर स्वामीजी ने उन्हे सावधान भी किया फिर भी अपनी दुर्वलताओ को नही मिटा सकी।

एक वार की घटना है कि स्वामीजी चंडावल मे विराज रहे थे। एक दिन उन्होने फत्तूजी आदि चारों तथा पाचवी चैनाजी (१०)—जो उनके साथ थी—को वुलाकर कहा—'तुम्हारे कल्प (मर्यादा) मे कपडा कम हो तो ले लो, कल्प के अनुसार पूरा हो तो मत लो।' वे वोली—'कल्प से अधिक नही, कम है।' तव स्वामीजी ने जितना कपडा मांगा उतना उन्हें दे दिया। वे उसे लेकर अपने स्थान पर चली गई।

पीछे से स्वामीजी के मन मे कुछ सदेह हुआ तो उन्होने तत्काल मुनि अखैरामजी (१०) को साध्वियो के स्थान पर भेजकर समग्र कपड़ा मगवाया। उसे स्वय अपने हाथ से मापा तो वह कल्प से अधिक निकला। स्वामीजी ने इस पर चिन्तन किया—'पहले तो उन्होने मर्यादा से अधिक कपड़ा रखा और फिर झूठ वोली, इससे लगता है कि उनकी भावना दूषित है और संयम पालन करने की नीति शुद्ध नही है अतः भविष्य के लिए भी उनका विश्वास कैसे किया जा सकता है।' (भिक्खु दृष्टान्त १५४)

इस प्रकार अप्रतीति होने से स्वामीजी ने सं. १८३७ फाल्गुन वदि २ को चडावल मे एक साथ पाचों साध्वियो का सघ से सम्वन्ध विच्छेद कर दिया।[1]

(स. १८३७ व्यक्तिगत लेखपत्र स. ११)

---

१. ख्यात, शासन-विलास ढा० २ सो० ८ से ११, भिखुजशरसायण ढा०५१ सो० ५ से ११ तथा शासन प्रभाकर-भिक्षु सती वर्णन ढ़ा० ३ गा० १२ से १५ मे

च्यारुं ते पहिछान रे, चैनां भेली पंचमी ।
झट पांचूं ने जान रे, छोड़ी चंडावल मझे ।।

(भिक्खुजशरसायण ढ़ा. ५१ सो. ११)

इन पांचों साध्वियों को गण से पृथक् करने का कारण कल्प से अधिक कपड़ा रखना तो था ही किन्तु इसके अतिरिक्त कुछ और भी कारण थे :—

१. मर्यादाओ का भंग करना ।

२. नियमो का भग करना ।

३. अनेक दोषो का सेवन कर उनका प्रायश्चित्त न लेना ।

४. साधुत्व पालन के योग्य न होना । इत्यादि ·····।

इन सबके दूषित आचरणों की घटना का वर्णन सं. १८३७ के व्यक्तिगत लेखपत्र स. १० तथा ईडवा, बाजोली के व्यक्तिगत लेखपत्र स. १६,१७ मे विशेष रूप से उल्लिखित है। वे ४ वर्ष ३ महीने और १ दिन सघ मे रही ।

स्वामीजी ने जिस समय उन्हे गण से पृथक् किया उस समय गण में २० से अधिक साध्वियां नही थी। फिर भी किंचिद् मात्र परवाह न करते हुए संघ की सुरक्षा के लिए एक साथ पांच साध्वियो को छोड़ दिया ।

३. उक्त पाचो मे एक चंदूजी (१३) कई वर्षों के वाद स्वामीजी के पास आकर पुन. गण मे आने की प्रार्थना करने लगी। तव स्वामीजी ने एक नया लेखपत्र वनाया और उसमे जो करार किये वे सव चंदूजी को स्वीकृत करवाये[1] । तत्पश्चात् स. १८५२ मे उन्हे नई दीक्षा देकर सघ मे सम्मिलित किया ।

भी उक्त विवरण है। वहा साध्वियों के स्थान पर मुनि अखैरामजी द्वारा कपड़ा मापने का उल्लेख है पर उपर्युक्त भिक्षु दृष्टात १५४ का उल्लेख अधिक सगत लगता है ।

१. (१) जिण आर्या साथे मेल्या तिण रा विना माहे चालणो म्हा ताइ ओलंलो आवै तिम लिगार मातर करणो नही ।

(२) थानै दोया नै जुदी जुदी मेलसा भेली राखण री वाट जोयजो मती पछै कहोला म्हानै भेली राखो जकी वात छै कोइ नही ।

(३) कपडो जिसो दे तिसो उरो लेणो ना कहिणो नही ।

(४) आर्या सूं सभाव प्रकत न मिलै तो सलेखणा सथारो करने मरणो, पिण टोला वारे नीकलणो नही, थारो म्हारो थांरा न्यातीला रो आछो दीसै ज्यू करणो छै ।

(५) आगलो पानो पिण वचाय दीधो ते सूंस भांग्या ते पाछा आरे कराया छै ।

स्वामीजी ने चदूजी के साथ वीराजी (४२) को भी दीक्षित किया, ऐसा उपर्युक्त लेखपत्र (सं. १८५२) के करार संख्या २ से जाना जाता है। स. १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के सामूहिक लेखपत्र स. ७ मे चन्दूजी और वीरांजी के हस्ताक्षर है इससे प्रमाणित होता है कि उक्त तिथि के पूर्व दोनों की दीक्षा हुई। साध्वी वरजूजी (३६) वीजाजी (४०) और वनांजी (४१) की दीक्षा भी उसी वर्ष उक्त तिथि के पूर्व हुई थी। इससे चदूजी और वीराजी की दीक्षा उक्त तीनो साध्वियो के वाद उक्त लेखपत्र की तिथि के पूर्व हुई, ऐसा ज्ञात होता है।

चदूजी के दूसरी वार और वीरांजी के प्रथम वार दीक्षित होने से ऐसा भी प्रतीत होता है कि चन्दूजी १८३७ मे गण से वाहर होकर वापस स्थानकवासी सम्प्रदाय मे चली गई थी और वीराजी स्थानकवासी सम्प्रदाय मे दीक्षित थी।[1] फिर दोनो ने स्वामीजी के पास दीक्षा ली।

स्वामीजी ने वीराजी को पहले साध्वी सदाजी (२१) के साथ रखा। जब तक वे उनके साथ रही तब तक तो ठीक रही। वाद मे वीराजी को चदूजी के साथ दिया तब वे दोनो परस्पर मिलकर संघ की अन्य साध्वियो के अवगुण वोलने लगी, कई साध्वियो को फटाने की चेष्टा करने लगी तब स्वामीजी ने उन दोनों को स. १८५२ वैसाख वदि १ के दिन गण से अलग कर दिया।

(स. १८५२ व्यक्तिगत लेखपत्र सं. २१)

कुछ समय पश्चात् वहुत नम्रता करने पर स्वामी ने चंदूजी और वीरांजी

---

(६) फतूजी आदि सगली जणीया असाधवीयां कहिवाड़ी छै। वले चदूजी कह्यो-म्हे तो मोह रे वस जमारो गमायो।

(७) वले चदूजी कह्यो-उभी सुकावै तो उभी सुकूं पिण आगना लोपू नहीं इत्यादिक घणा कह्या छै।

(८) चेली करण रा जावजीव लग त्याग छै।

(स० १८५२ का व्यक्तिगत लेखपत्र सं० २०)

१. लेखपत्रो के निम्नोक्त उल्लेख से ही इसकी पुष्टि होती है —

वीराजी कहै चन्दूजी म्हारी गुरणी छै, चन्दूजी कहै वीरांजी म्हांरी चेली छै।
तूं उठी सू तोर न आघती हुई तिण सू या में आई ए चन्दू नो वचन।

(स० १८५२ व्यक्तिगत लेखपत्र स० २२।५,१६)

उवा तो कहै नू मोनै ल्याई उवा कहै तू मोनै ल्याई चन्दू ने वीरा।

(स० १८५२ व्यक्तिगत लेखपत्र स० २४।५)

को प्रायश्चित्त देकर पुनः सघ मे सम्मिलित कर लिया[1]। लेकिन उनकी अनुचित वृत्तियो को देखकर स. १८५४ सावन शुक्ला ७ के पूर्व खेरवा मे चदूजी को तीसरी वार (स. १८३७, १८५२, १८५४ मे) और वीरांजी को दूसरी वार (स. १८५२, १८५४ मे) सघ से पृथक् कर दिया।[2]

स्वामीजी ने स. १८५४ सावन शुक्ला ७ रविवार को खेरवा मे चदूजी, वीराजी के सवध मे एक ढ़ाल वनाई थी जो जयाचार्य कृत 'गण विशुद्धि करण-हाजरी' सं. २६ मे उल्लिखित है।

चंदूजी ने पृथक् होने के पश्चात् स्वामीजी तथा साधु-साध्वियो के अवर्ण-वाद वोले। उनका कुछ अश निम्न प्रकार है.—

१. आर्या ढीली हालै तिण सू म्हानै टोला माहे किण विध राखै।

२. भीखनजी रे कूड घणो, कपट दगो घणो, माहे काला वारे काला।

३. पाच-पांच रोट्या हीराजी खाअै, पाव पाव घी खाअै, सिरियारी मे चोखो चोखो आहार मिलै, लोलपणा री घाली खेतर छोडे नही।

४. रुपांजी रै खेतसीजी भाई, नगाजी रे वेणोजी भाई, हीरांजी मानीती लाडकी, तिण सूं यारो आव आदर घणो। वीजां री गिणत कांइ नही। वीजी वापरीयां रोवती रहै छै, म्हांरी किसी गिणत।

१५ म्हारी मांदीरी कोइ वियावच किणी कीधी नही।

१६. नगांजी री वियावच कीधी उण रे भाई वेणोजी माहे छै तिण सू।

१७. रूपांजी रे भाई खेतसी छै तिणसू उण रा जत्न करै छै।

---

१. दूसरी वार उन्हें संघ मे सम्मिलित करने का यद्यपि स्पष्ट उल्लेख नही मिलता पर सं० १८५४ में पुन· उन्हे गण से अलग करने से वह प्रमाणित हो जाता है।

२. वीरांजी पहले चंदूजी से संतुष्ट नही थी, फिर एक हो गई। वीरांजी चंदूजी को गुरुणी और चन्दूजी वीरांजी को शिष्या कहने लगी। दोनो के साठ-गाठ हो गई जिससे वे अन्य साध्वियो की आज्ञा नही मानती।

चन्दूजी तथा वीरांजी ने साध्वी कुशलाजी (१) गुमानाजी(३३) और हीराजी (२८) आदि पर अनेक मिथ्या आरोप लगाये परन्तु स्वामीजी के जाच करने पर वे सब मिथ्या निकले। इत्यादिक दूपित वृत्तियो को देखकर स्वामीजी ने उन दोनो को छोड दिया। सं० १८५२ और १८५४ के व्यक्तिगत लेखपत्र २२ से २५ मे विस्तृत वर्णन है।

सं० १८५४ रे वर्ष चदू वीरा ने टोला वारै काढ़ी।

(भिक्खु दृष्टान्त २७०)

१८. लालाजी री वीयावच करैं छै उण रा वेटा वैहरावै घणो छै तिण सू करैं छै।

२८. पाली माहे तो सो उपगार म्हां सूं हूओ छो। भीखनजी नैं कुण ओलखता था।

२६. पीपार माहे तो उपगार म्हा सू हुओ छो भीखनजी नै कुण ओलखै।

३३. पांच वासतीयां सामाजी कनैं ने म्हे मागी ते मनैं न दीवी पांच पांच हाथ रा दोय वटका दीधा।

३६. थारैं चेलीया नैं आछी आछी पिछोवरी दे, मोनैं टोला री आई जाण नैं दे नही।

(स. १८५४ का व्यक्तिगत लेखपत्र सं. २५)

स. १८५४ में चदूजी तथा वीरांजी को संघ से बहिष्कृत करने के पश्चात् स्वामीजी पीपाड पधारे। वहा जिस दूकान मे मुनि श्री हेमराजजी बैठे थे, उनके सम्मुख आकर चदूजी लोगो को सुनाते हुए गण के साधु-साध्वियों के अवर्णवाद बोलने लगी। लोग उनकी बातो को सच मानने लगे। उस समय स्वामीजी एक दूसरी दूकान मे विराजे थे। उन्होंने लोगों को व्यर्थ ऊहापोह करते हुए देखा तो तुरत वहा से उठकर आये और यथार्थता को प्रकट किया। स्वामीजी के समुचित समाधान को सुनकर चंदूजी तथा लोग इधर-उधर बिखर गये। चदूजी के पिता विजयचदजी लूनावत आदि उनके परिवार वालों ने भी चन्दूजी को अयोग्य समझ लिया।

(भिक्खु दृष्टान्त २७०)

१४. श्री चनांजी

(दीक्षा सं० १८३३, १८३७ में गणबाहर)

दोहा

चैना साध्वी तो बनी[१], लेकिन किया कसूर।
जिससे फत्तू आदि सह, की है गण से दूर[२] ॥१॥

१. चैनांजी ने पति वियोग के वाद सं. १८३३ मृगसर वदि २ के वाद (फत्तूजी आदि की दीक्षा के वाद) और स० १८३४ जेठ सुदि ६ के पूर्व दीक्षा ग्रहण की। यद्यपि सं० १८३४ जेठ सुदि ६ के लेखपत्र (सामूहिक सं०२) पर उनके हस्ताक्षर नही है परन्तु उनसे छोटी साध्वियों—मैणांजी (१५) धन्नूजी (१६) के होने से लगता है कि वे उस समय उपस्थित नही थी, अतः फत्तूजी (१०) आदि के पश्चात् और मैणाजी (१५) आदि के पूर्व उनकी दीक्षा हुई ऐसा प्रतीत होता है।

२. स्वामीजी ने फत्तूजी आदि ४ साध्वियों के साथ चैनाजी को भी अयोग्य और आचार मे शिथिल समझकर सं० १८३७ फाल्गुन वदि २ को चडावल मे गण से पृथक् कर दिया।

(स० १८३७ का व्यक्तिगत लेखपत्र ११)

शासन विलास ढा० २ सो० ११, भिक्षुयशरसायण ढा० ५१ गो० ११, भिक्षु दृष्टात १५४ तथा शासनप्रभाकर—भिक्षु सती वर्णन ढा० ३ गो० १५ मे भी उनके सघ से अलग होने का उल्लेख है।

१५. साध्वी श्री मैणांजी (पुर)

(दीक्षा सं० १८३३-३४, स्वर्ग सं० १८६० भिक्षु समय में)

छप्पय

सतियों में मुखिया सती 'मैणा' तत्कालीन ।
कहलाती उस समय में भोजन ज्यो नमकीन ।
भोजन ज्यों नमकीन वासिनी 'पुर' की गाई ।
दीक्षा पति को छोड़ सुहागिन वय में पाई ।
चमकी गण में भिक्षु की वन शिष्या शालीन[1] ।
सतियों में मुखिया सती मैणां तत्कालीन ॥१॥

संयम में रम के किया अच्छा आगम-ज्ञान ।
कला सरस व्याख्यान की सीखी देकर ध्यान ।
सीखी देकर ध्यान बड़ी विदुषी कहलाई ।
अच्छा साहस धैर्य तपस्या वहु कर पाई ।
किया सिघाड़ा भिक्षु ने देख योग्यता पीन[2] ।
सतियो में मुखिया सती मैणां तत्कालीन ॥२॥

गुरु की सेवा भक्ति कर रही वढ़ाती हाथ ।
रंगू दीक्षा समय में थी गुरुवर के साथ[3] ।
थी गुरुवर के साथ विविध शिक्षाएं लेती ।
धर गुरु आज्ञा शीश ज्ञान सतियों को देती[4] ।
जमकर शासन सदन में हो पाई आसीन ।
सतियों में मुखिया सती मैणां तत्कालीन ॥३॥

अनहोनी-सी हो गई घटनाएं कुछ एक ।
रख संतुलन उस समय खोया नहीं विवेक ।
खोया नहीं विवेक शान्ति से सभी सहा है ।
जिससे उनका स्थान संघ में बड़ा रहा है ।
ठोकर खाकर सभलते जो नररत्न कुलीन[५] ।
सतियो में मुखिया सती मैणां तत्कालीन ॥४॥

दोहा

ग्राम खेरवा में किया, अनशन-व्रत स्वीकार ।
सुयश साठ की साल में, पाई कर उद्धार[६] ॥५॥

१. साध्वी श्री मैणाजी पुर (मेवाड) की निवासिनी थी। उन्होने पति को छोडकर स्वामीजी के पास दीक्षा स्वीकार की :—

मैणाजी मोटी सतीजी, वासी पुर ना विचार।
स्वाम कनै संजम लियो जी, छांडी निज भरतार॥

(भिक्खुजशरसायण ढा० ५१ गा० ८)

ख्यात, शासन-विलास ढा० २ गा० १२ तथा शासनप्रभाकर—भिक्षु सती वर्णन ढा० ३ गा० १६ मे भी उनकी दीक्षा का उल्लेख है।

उनके दीक्षा वर्ष का उल्लेख नही मिलता किन्तु उनके पहले की फत्तूजी (१०) आदि की दीक्षा स० १८३३ मृगसर वदि २ को हुई, स० १८३४ जेठ सुदि ९ के सामूहिक लेखपत्र सं० २ मे उनके हस्ताक्षर है इससे जाना जाता है कि उनकी दीक्षा उक्त अवधि के बीच मे हुई।

तेरापथ मे सुहागिन वय मे दीक्षित होने वाली वे प्रथम साध्वी थी।

२. साध्वी श्री वड़ी साहसवती थी। सयम की साधना के साथ ज्ञान की आराधना मे लगी। उन्होने आगमों की अच्छी धारणा की। व्याख्यान कला मे कुशल वनी और तपस्या भी वहुत की।

(ख्यात)

पढ़ी-भणी पंडित थई जी, वहु सूत्रां नी रे जाण।

(भिक्खु ज० र० ढा०५१ गा० ९)

स्वामीजी ने योग्यता देखकर शीघ्र ही उनका सिंघाड़ा वना दिया।

३. स० १८३८ चैत्र शुक्ला १५ को नाथद्वारा मे स्वामीजी ने साध्वी रगूजी (२०) और मुनि खेतसीजी (२२) को दीक्षा प्रदान की। उस समय साध्वी मैणांजी स्वामीजी के साथ थी और अग्रगण्या भी थी :—

मैणांजी आदि दे महासती, समणी गण सिणगार हो।
सेव करै स्वामी तणी, आण अखंडत धार हो॥

(सतयुगी चरित्र ढा० २ गा० ९)

उन्होने स्वामीजी की सेवा-भक्ति कर[1] एव उनके निर्देशन मे चलकर अपनी क्षमता को वढाया और सघ मे अच्छा स्थान प्राप्त किया जिससे उनके सम्बन्ध

---

(१) स० १८३४ (सामूहिक लेखपत्र २) स० १८३७ (व्यक्तिगत लेखपत्र १३) और स० १८५२ के सामूहिक लेखपत्र मे उनके हस्ताक्षर है इससे लगता है कि साध्वी मैणाजी को स्वामीजी की सेवा का अनेक वार अवसर मिलता रहा।

मे एक कहावत चल पडी— 'सतां मे वैणाजी (वैणीरामजी) और सतियां में मैणाजी।'
(श्रुतिगत)

४. स्वामीजी ने सं० १८५२ मे साध्वी वरजूजी(३९), वीजांजी (४०) और चन्नाजी (४१) को दीक्षित कर उन्हे शिक्षा के लिए साध्वी मैणाजी को सौपा। मैणांजी ने तीनों साध्वियों को ज्ञानार्जन करवाया :—

मैणांजी भणाया ज्ञान भल पाया।

हेममुनि रचित-वीजा सती गु०व०ढा० १ गा० ३)

५. भावी विचित्र होती है। उसके कारण कभी-कभी जीवन मे अप्रत्याशित घटना भी घटित हो जाती है। साध्वी मैणाजी की भी कुछ गलतियो तथा गलत-फहमियो के कारण ऐसी स्थिति वनी कि जिसके कारण स्वामीजी को उनके लिए कडा कदम उठाना पडा।

(१) स० १८३७ के व्यक्तिगत लेखपत्र १३ के उल्लेखानुसार चन्द्रभाणजी (१५) ने साध्वी मैणाजी को फटा लिया था। स्वामीजी द्वारा पूछताछ करने से मैणाजी ने सही-सही वात कह कर अपना आत्मालोचन कर लिया था।

(२) स० १८५४ चैत्र वदि ६ के व्यक्तिगत लेखपत्र क्रमाक २६ मे लिखा है —

'मैणाजी रा परिणाम अजोग (अयोग्य) घणा देख्या, घणी-घणी अजोग वोली आर्यां आगे, तिण री वोली पर साध ने आर्यां ने सका परी-आ तो टोला सू न्यारी परती दीसॅ छै, सरुपा नै फारी (फटाई) दीसै छै।'

स्वामीजी ने उक्त सवध मे साध्वी सरुपांजी (३८) से पूछताछ की तो उन्होंने शपथ पूर्वक कहा कि मेरा मैणांजी के साथ किसी प्रकार का गठवधन नही है।

मैणाजी को पूछे जाने पर उन्होने स्वामीजी के सम्मुख स्पष्टीकरण किया और आवेश वश की गई गलती का प्रायश्चित्त ग्रहण कर आत्मशुद्धि की।

(३) जयाचार्य ने गणविशुद्धिकरण हाजरी १४ मे लिखा है :

'मैणाजी रे आख रो कारण, ते गोगुदे हुता। त्यां ऊपर भीखणजी स्वामी कागद लिख्यो, शिथिलपणो जाण्यो ते मिटावा अर्थे।'

सं० १८५५ जेठ वदि ६ (व्यक्तिगत लेखपत्र २७) को स्वामीजी ने मैणाजी आदि के लिए पत्र लिखा, उसका भावार्थ इस प्रकार है :—

गोगुंदा मे उस समय चार साध्वियां थी—मैणांजी, (१५) धन्नांजी (१६), फूलांजी (२२) गुमानाजी (७)।

स्वामीजी ने उन चारो के लिए लिखा—वे वैशाख शुक्ला १५ के पश्चात् गोगुदा मे रहे तो गोचरी मे चुपड़ी रोटी तथा मिठाई वहर कर न लाए। फूलांजी और गुमानाजी के लिए घृत की छूट है पर चुपड़ी रोटी न लाए।

गोचरी की व्यवस्था ठीक रखें। मैणांजी और वनाजी फूलाजी तथा गुमानांजी के कथनानुसार गोचरी करें। चारो साध्वियां गोगुदा से विहार कर साधुओं के पास आये तो श्रद्धा के क्षेत्रो—नाथद्वारा, राजनगर, कांकरोली, लावा और आमेट—को छोडकर अन्य रास्ते से आये। कदाचित् मैणाजी गोगुदा मे रहे तो दूसरे गावो से कपड़ा न मगवाए। गोगुदा मे जैसा मिले वैसा ही ले। मैणाजी, धन्नांजी का परस्पर मे कलह अधिक वढ़ता देखे तो फूलाजी, गुमानाजी उनके साथ आहार न करे। दोनो वहा से विहार कर यहा आ जाए अन्यथा उन्हे भी प्रायश्चित्त आयेगा।

मैणांजी, धन्नांजी किसी प्रकार के दोप का सेवन करे तो फूलाजी, गुमानाजी तुरन्त श्रावको मे प्रकट कर दे।

मैणाजी के गोगुदा रहने से गोगुंदा तथा आसपास के क्षेत्रो मे अधिक वदनामी होने की सभावना है। अत किसी प्रकार की अनुचित वात हो तो प्रकट कर दे जिससे भाई-वहनों को भी यथार्थ-अयथार्थ की जानकारी होती रहे।

फूलांजी तथा गुमानाजी को विशेष सावधान रहना है। यदि वे गफलत रखेगी तो उनकी अधिक अवहेलना होगी।

फूलांजी अक्षम और अवस्था से वृद्ध है अत: वे अपनी शक्ति के अनुसार काम करेगी, उन पर दवाव न डाला जाए।

मैणाजी (आखो से अक्षम) का प्रतिलेखन आदि सभी कार्य धन्नाजी और गुमानाजी वारी-वारी से करे।

धन्नाजी और गुमानांजी को फूलांजी और मैणाजी के प्रति 'म्है थानै वैठी नै खवारा छा' इस प्रकार के व्यगात्मक शब्द नही कहना है। अगर कह दे तो एकवार का एक तेला प्रायश्चित्त आयेगा।

ज्येष्ठ शुक्ला १५ के पश्चात् फूलाजी और गुमानांजी को मिठाई खाने की छूट है परन्तु मैणाजी और धन्नाजी जव तक साधुओ के पास न आयें तव तक उन्हे मिठाई नहीं खाना है।'

उक्त पत्र से प्रकट होता है कि स्वामीजी ने मैणाजी पर कितने कडे प्रतिवंध लगाये और साथ की साध्वियो को आदेश दिया कि वे उनके साथ कैसा व्यवहार करे, पर इसमे स्वामी जी का एकमात्र दृष्टिकोण मैणाजी की शिथिलता को मिटाना था।

साध्वी मैणाजी के पास साध्वियो द्वारा जव वह पत्र पहुंचा तो उन्होने वड़ी शालीनता का परिचय दिया। किसी प्रकार की उच्चावच-भावना न लाकर अपना आत्म-निरीक्षण किया। स्वामीजी द्वारा लगाये गये प्रतिवन्धो का हृदय से पालन किया और सभी कठिनाइयो को वड़े धैर्य से सहा। यथासमय स्वामीजी

के दर्शन किये और अपनी स्खलनाओं का प्रायश्चित लेकर आत्म-विशुद्धि की। विविध प्रकार का विनय कर स्वामीजी के दिल में पूर्ण विश्वास पैदा किया।

ऐसा करने से सघ मे उनकी प्रतिष्ठा बढी और उनका सम्माननीय स्थान रहा।

जयाचार्य ने उनकी उक्त विशेषताओ का उल्लेख करते हुए 'गणविशुद्धि-करण-हाजरी' स० १४ मे लिखा है—मैणाजी साधपणो पालवा री दिष्ट तीखी राखी पिण मर्यादा लोपी नही।'

भूल करना बडी बात नही क्योकि छद्मस्थ अवस्था मे वह कदाचित् हो जाती है परन्तु भूल को भूल समझकर उसका सुधार करने वाला व्यक्ति महान् होता है। इसके लिए साध्वी मैणाजी का उक्त उदाहरण बड़ा प्रेरणादायी है।

६. साध्वी मैणांजी ने स० १८६० की साल खैरवा में अनशन कर आराधक पद प्राप्त किया। (ख्यात)

पुर ना वासी छांडी प्रीतम, चरण लियो वर चित्त शांति।
सखर पढ़ी साठे संथारो, वाह मैणां लजवन्ती॥
(शासन-विलास ढ़ा० २ गा० १२)

मैणांजी संथारो खेरवे कीधो, साठा रा वर्ष सुजश लीधो।
भिक्षु गुरु पाया मतिवंती समरो मन हरखे मोटी सती॥
(सतगुणमाला...पडित मरण ढा० २ गा० ३)

भिक्षु य०र० ढा० ५१ गा० ६ तथा शासन प्रभाकर भिक्षु सती व० ढा० ३ गा० १६ मे भी उपर्युक्त उल्लेख है।

उपर्युक्त सभी स्थानो मे उनका स्वर्गवास सं० १८६० लिखा है पर तिथि नही है। लेकिन स्वामीजी के स्वर्गवास के समय विद्यमान २६ साध्वियों मे उनका नाम नही है अत: वे सं० १८६० भाद्रव शुक्ला १३ के पूर्व स्वामीजी के समय मे दिवगत हुई।

खेरवा मे दिवगत होने से लगता है कि उस वर्ष उनका चातुर्मास खेरवा था और साथ मे साध्वी वगतूजी (२७) झूमाजी (४४) और डाहीजी (५५) थी जो स्वामीजी के अनशन पर सिरियारी पहुची थी।[1] भिक्षुजशरसायण ढा. ६१ गा० ६ मे ऐसा उल्लेख है।

---

(१) पाली के श्रावको की अनुश्रुति के अनुसार कहा जाता है कि स०१८६० मे साध्वी वगतूजी का चातुर्मास खेरवा था। उपर्युक्त उल्लेख ऐसा सभव भी है क्योकि साध्वी मैणाजी के चातुर्मास के प्रारम्भ मे दिवगत होने से सिंघाडा वगतूजी के नाम से रहा हो।

१६. श्री धन्नूजी १७. केलीजी १८. रत्तूजी, १९. नंदूजी

(दीक्षा सं० १८३३-३४ के बीच, १८५८ या ५९ में गणबाहर)

रामायण-छन्द

धन्नू केली रत्तू नन्दू आई भैक्षव-शासन में[1] ।
पर स्वच्छन्द-वृत्ति सुख-लिप्सा, ध्यान न आज्ञा पालन में ।
जिससे एक साथ चारों को छोड़ी गुरु ने सोच विचार ।
संख्या गण में चाहे कम हो किन्तु न हो दूषित आचार[2] ॥१॥

१. धन्नूजी, केलीजी, रत्तूजी और नन्दूजी ने पति वियोग के वाद भिक्षु शासन मे दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

उनका दीक्षा वर्ष उल्लिखित नही है पर स० १८३३ मृगसर वदि २ के (फत्तूजी आदि साध्विया क्रम स० १० से १५) वाद और स० १८३४ जेठ सुदि ९ के पूर्व उनकी दीक्षा हुई। १८३४ जेठ सुदि ९ के लेखपत्र (सामूहिक क्रम० २) में नदूजी के हस्ताक्षर हैं[1]।

स० १८३७ माघ वदि ९ के लेखपत्र (व्यक्तिगत क्रम० १३) मे नन्दूजी, धन्नूजी और केलीजी के हस्ताक्षर हैं[2]।

सं० १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लेखपत्र (सामूहिक सं०७) मे धन्नूजी और रत्तूजी के हस्ताक्षर हैं[3]।

२ दीक्षित होने के पश्चात् वे चारो साध्विया कई वर्षो तक सघ मे रही, लेकिन स्वच्छन्द एव सुखाभिकाङ्क्षी होने से आज्ञा, मर्यादा का ध्यान नही रखती। स्वामीजी ने उन्हे कई वार समझाया और पिछली भूलों का प्रायश्चित देकर भविष्य मे सावधान रहने के लिए कहा फिर भी वे अपनी प्रकृति का परिवर्तन नही कर पाई।

स० १८५५ जेठ वदि ६ को स्वामीजी ने गोगुदा में स्थित साध्वी धन्नाजी (१६) फूलांजी (२२) और गुमानांजी (३३) के नाम से अन्य साध्वियो के साथ एक पत्र दिया था। वह मुख्यतया मैणाजी के साथ धन्नांजी की शिकायतो का प्रतिकार करने के लिए था। उनमे स्वामीजी ने मैणांजी के साथ धन्नांजी पर भी कठोर प्रतिवध लगाये थे।

स० १८५८ जेठ वदि १२ को स्वामीजी ने नन्दूजी (उक्त) वन्नांजी (२६) और रत्तूजी (उक्त) के नाम से पत्र दिया। उसमे लिखा था—'मैंने तुम्हारी

---

१. केलीजी और रत्तूजी के सभवत उस समय उपस्थित न होने से हस्ताक्षर नही है।

२. उस समय गण मे और भी साध्वियां थी किन्तु इस लेखपत्र मे ८ साध्वियों के ही हस्ताक्षर हैं :—सुजाणांजी (४) जीऊजी (९) केलीजी (१७) नदूजी (१९) फत्तूजी (१०) चन्दूजी (१३) धन्नूजी (१६) मैणांजी (१५) उक्त रत्तूजी (२४) के हस्ताक्षर न होने का कारण उनकी अनुपस्थिति ही लगता है।

३. नदूजी और केलीजी के हस्ताक्षर न होने का कारण उनकी अनुपस्थिति ही लगता है।

अनेक गलतियां सुनी है। भाई-वहनों ने तुम्हे वन्दना करना छोड दिया है। तुम (नदूंजी) और वन्नांजी आपस में एक हो गई हो, रत्तूजी को अलग-सी रखती हो और वहुत तकलीफ देती हो। परस्पर आहार-पानी आदि के लिए कलह अधिक करती हो। फिर तुमने आचार मम्वन्धी अनेक स्खलनाए की है, अनेक दोपों का सेवन किया है, मेरी आज्ञा के विना श्रद्धा के क्षेत्रों मे रही और 'खेरवा' चातुर्मास किया है। इस प्रकार तुम्हे आज्ञा-मर्यादा का उल्लघन नही करना चाहिए था।

अव तुम्हारे पास में साध्वी धन्नांजी (१६) को भेजा है। आचार का सम्यग् पालन करने से ही लाभ होगा। स्वच्छन्द-वृत्ति से नुकसान उठाना पडेगा। पहले जिन दोपो का सेवन किया है उनका प्रायश्चित्त देना है। अव चारो को मिलजुल कर चलना है। श्रद्धा के क्षेत्रो में नही रहना है। मेरा भी उधर शीघ्र आने का विचार है। तुम्हारा (नन्दूजी) और रत्तूजी का निष्कर्ष निकालना है। तुमने रत्तूजी को वहुत वदनाम किया है। यहा मेवाड के लोगो मे तुम्हारी वहुत वदनामी हो रही है। वे साधुओं को यहां तक कहते है कि उन्हे टोला (सघ) मे क्यो रखते है ?

खेरवा मे तुम्हारे द्वारा किये गये अनुचित व्यवहारो की शिकायत मेरे पास पहुची। तुम्हारे कारण सघ की वहुत अवहेलना हुई।

खैर ! अव भी तुम चिन्ता मत करना। पिछली भूलो का प्रायश्चित्त कर शुद्ध सयम का पालन करना।

धन्नाजी तुम्हारे पास आ रही है, तुम उन्हे रखने के लिए इन्कार करोगी तो समझा जायेगा कि तुम्हारी भावना साधुत्व पालन की नही है। वन्नांजी को फटाकर अपनी पक्ष मे कर लिया है इससे धन्नांजी को साथ मे रखने के लिए इन्कार मत होना। श्रद्धा के क्षेत्रो मे चातुर्मास मत करना क्योकि तुमने वहा सघ की वहुत अवहेलना कराई है, इसलिए श्रद्धा के क्षेत्रो का निपेध किया है। अव तुम चारो ही साध्विया परस्पर मेल-मिलाप से रहना। गोचरी मे चुपड़ी रोटी मत वहरना।'

स्वामीजी ने धन्नाजी को यह निर्देश दिया था कि अगर नन्दूजी उनको साथ मे न रखे तो वे अकेली ही आहार-पानी लाकर खा सकती है। उन्हे वहीं रहकर वहा की वास्तविक स्थिति की जाच करना है।

नंदूजी विहार न कर सके तो सं० १८५६ का चातुर्मास उन्हे माडा करना है। अन्य क्षेत्रो मे चातुर्मास करे तो रास्ते मे श्रद्धा के क्षेत्रो को छोड़कर विहार करना। मेरे से जव तक मिलना न हो तव तक चारो साध्वियो को छहो विगय

(दूध, दही, घृत, तेल, मिष्टान-मिठाई) नही खाना है[1]।

इस प्रकार स्वामीजी द्वारा सावधान करने पर भी वे आत्म-नियत्रण नही कर सकी। वाद मे स्वामीजी मारवाड़ पधारे तव मांढा मे चारो साध्वियां मिलीं। स्वामीजी ने उनकी अच्छी तरह जांच-पड़ताल की तो उन्हे लगा कि ये आचार मे शिथिल, स्वच्छन्दचारिणी, सुख-सुविधा की आकांक्षा रखने वाली है एव आज्ञा, मर्यादा के पालन मे जागरूक नही है, तव सं० १८५८ के शेपकाल (स० १८५९ के चातुर्मास के पूर्व) मे उन चारो का सघ से सवध विच्छेद कर दिया।

(ख्यात)

धन्नू केली धार रे, रत्तू नंदू चिहुं भणी।
मांढ़ा गांव मझार रे, छांडी अजोग्य जाण नें॥

(शा० वि० ढा०२ सो० १३)

भिक्षुजशरसायण ढ़ा०५१ सो० १२ तथा शासन प्रभाकर ढा० ३ सो० १७ मे भी यही उल्लेख है।

भिक्षु दृष्टान्त १७७ मे लिखा है कि धन्नांजी की प्रकृति कठोर जानकर स्वामीजी ने सोचा—'ये सामने वोलने वाली है अत. भारीमालजी को इनका निर्वाह करने मे कठिनाई होगी अतः उन्हे गण से अलग कर दिया।'

---

१. स्वामीजी ने उक्त पत्र लिखा तव वे मेवाड़ मे थे और उक्त साध्वियां मारवाड़ मे थी। ऐसा लेखपत्र से ज्ञात होता है।

२०. साध्वी श्री रंगूजी (नाथद्वारा)

(दीक्षा सं० १८३८, स्वर्ग सं० १८६० के पूर्व स्वामीजी के युग मे)

रामायण-छन्द

'रंगू' की श्रीजीद्वारा के पोरवाल कुल में ससुराल।
दीक्षोत्सव 'सतयुगी' संत सह हो पाया उनका सुविशाल।
मिला भाग्य से योग भिक्षु का खिला शहर में नूतन रंग।
मैणांजी आदिक सतियां भी आई, मिला चतुर्विध संघ ॥१॥

आई है अड़तीस साल की चैत्र पूर्णिमा परम पवित्र।
स्वामीजी ने अपने मुख से ग्रहण कराया है चारित्र[1]।
विनयवती धीमती सतीवर संयम में रम फूलाई।
कर ज्ञानार्जन भर सद्गुरु-निधि गण में अति शोभा पाई[2] ॥२॥

किया सिंघाड़ा भिक्षुगणी ने सौपी सतियां तीन विशेष।
प्रथम केश-लुचन 'रूपां' का किया सुगुरु का पा निर्देश[3]।
कर अनशन आखिर में उत्तम आराधक पद प्राप्त किया।
सिरियारी में क्षेम कुशल से स्वर्गलोक का पंथ लिया[4] ॥३॥

१. साध्वी श्री रगूजी की ससुराल नाथद्वारा के पोरवाल परिवार मे थी। साधु-साध्वियो के उपदेश से उनके दिल मे वैराग्य-भावना प्रवाहित हुई। आचार्य भिक्षु ग्रामानुग्राम विहार करते हुए श्रमण-श्रमणी (मैणाजी आदि) परिवार से नाथद्वारा पधारे। रगूजी तथा उनके अभिभावको द्वारा निवेदन करने पर स्वामीजी ने दीक्षा की घोषणा कर दी। उनके साथ मुनि खेतसीजी (२२) भी दीक्षा के लिए तैयार हुए। दोनो का दीक्षा-महोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया।

(सतयुगी-चरित्र ढा० २ गा०१ से १२ के आधार से)

स्वामीजी ने स० १८३८ चैत्र शुक्ला १५ को रगूजी (पति के वियोग के बाद) को मुनि खेतसीजी के साथ दीक्षा प्रदान की[1]।

२. साध्वी रगूजी बड़ी विनयवती और बुद्धिमती हुई। उन्होने साधुचर्या एवं विनयभाव मे रमण कर अच्छा ज्ञानार्जन किया और गण मे अच्छी शोभा प्राप्त की। (ख्यात)

३. स्वामीजी ने स० १८४४ मे साध्वी बगतूजी (२७) हीरांजी (२८) और नगाजी (२९) को दीक्षित कर साध्वी रगूजी को सौंपा था। इससे लगता है कि स्वामीजी ने उसका उस समय या उससे पहले सिंघाडा कर दिया था।

शासन-प्रभाकर—भिक्षु सती वर्णन ढा० ३ गा० ६८, ६९ मे लिखा है कि स्वामीजी ने सं० १८५९ मे साध्वी कुशालाजी (५०) नाथांजी (५१) और वीजाजी (५२) को दीक्षित कर साध्वी रगूजी को सौंपा, लेकिन वह गलत है क्योंकि भिक्षुयशरसायण ढा० ५२ गा० २२ तथा शासन विलास ढा० २ गा०४४ मे साध्वी वरजूजी (३९) को सौंपने का उल्लेख है।

साध्वी रूपाजी (३७) को स्वामीजी ने स० १८४८ मे दीक्षा दी और साध्वी रगूजी ने उनका केश-लुंचन किया, ऐसा निम्नोक्त पद्य से आभासित होता है:—

रंगूजी नी नान्ही रूड़ी, सती रूपांजी गुण पूरी।

(रूपा सती गु० व० ढा० १ गा० ८)

४ साध्वी श्री ने अनेक वर्षो तक सयम-पर्याय का पालन किया। आखिर स०

---

१. रगूजी रलियामणी जी, श्री जी दुवारा ना सार।
पोरवाल प्रगटपणै जी, सजम लियो सुखकार।
अड़तीसे व्रत आदरचा जी, स्वाम खेतसी रै साथ।
(भिक्खु ज० र० ढा० ५१ गा० १०, ११)

ख्यात, शासन-विलास ढा०२ गा०१४ तथा शासन प्रभाकर—भिक्षु सती व० ढा० ३ गा० १८ मे ऐसा ही उल्लेख है।

१८६० के पूर्व स्वामीजी के समय अनशन करके सिरियारी मे पडित मरण प्राप्त किया ।

ख्यात, भिक्षुयशरसायण ढ़ा० ५१ गा० ११, शासन विलास ढ़ा०२ गा०१४ तथा शासन प्रभाकर —भिक्षु सती वर्णन ढ़ा०३ गा० १६ मे उनका सिरियारी मे स्वर्गवास होने का उल्लेख है। पर वहां स्वर्गवास सवत् नही है। स्वामीजी के स्वर्गवास के पश्चात् गण मे २७ साध्वियां विद्यमान रही, ऐसा हेम मुनि रचित-भिक्षु चरित्र ढ़ा० १३ गा० १५, लघु भिक्षु रसायण ढ़ा०१ गा० २७ तथा आर्या दर्शन ढा० १ दो० ४ मे स्पष्ट उल्लेख है। उन २७ साध्वियो मे रगूजी का नाम नही है अतः वे स० १८६० के पूर्व स्वामीजी के समय मे ही दिवगत हो गई ऐसा प्रतीत होता है। उन २७ साध्वियो मे १७ साध्विया आचार्य भारीमालजी के समय और १० साध्विया आचार्य रायचदजी के युग मे दिवगत हुई।

स० १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के सामूहिक लेखपत्र स० ७ मे उनके हस्ताक्षर नही हैं, इससे प्रश्न होता है कि उनका स्वर्गवास उक्त अवधि के पहले तो नही हो गया था ? हां ऐसा हो भी सकता है।

शासन-प्रभाकर ढा० ३ गा० ८७ मे लिखा है कि स्वामीजी के स्वर्गवास के बाद २८ साध्विया विद्यमान थी, उनमे एक उक्त रगूजी का नाम और है। उनका स्वर्ग-गमन भारीमालजी के समय मे हुआ है लेकिन वह उपर्युक्त तीनो प्रमाणो से सम्मत नही है अतः उपर्युक्त उल्लेख मे कोई आपत्ति नही लगती।

ख्यात आदि में उनके सथारे का उल्लेख नही है परन्तु शासन प्रभाकर—भिक्षु सती गुण वर्णन ढा० ३ गा० १६ मे सथारे मे दिवगत होने का उल्लेख है जो निम्नोक्त प्रमाण से ठीक है :—

रंगूजी संजम रंग राच रही, सदांजी अमरांजी फ़ूलांजी कही।
संथारो कर पूरी मन खंती, समरो मन हरखे मोटी सती ॥

(संत गुणमाला-पडित मरण ढा०२ गा०४)

२१. साध्वी श्री सदांजी (नाथद्वारा)

(दीक्षा सं० १८३८ और ४४ के बीच, स्वर्ग सं० १८६० के पूर्व स्वामीजी के युग मे)

दोहा

'सदां' सती के स्वजन का, नाथद्वारा ग्राम।
गाया गोत्र तलेसरा, धार्मिक कुल अभिराम ॥१॥
आई शासन में 'सदां', पाई सुख अविराम[1]।
सरल प्रकृति सद्भाव से, वांछित फला तमाम[2] ॥२॥

'वीरां' को सौंपा उन्हें, जिसका यह अनुमान।
अग्रगामिनी वे बनी, श्रमणी निष्ठावान[3] ॥३॥

अनशन करके अंत में, पहुंची है सुरधाम।
भिक्षु समय में पा गई, पंडित मरण प्रकाम[4] ॥४॥

१. साध्वी श्री सदाजी का निवास-स्थान 'नाथद्वारा' (मेवाड़) और गोत्र तलेसरा (ओसवाल) था। उन्होने पति वियोग के बाद दीक्षा स्वीकार की[1]।

(ख्यात)

उनका दीक्षा वर्ष नही मिलता। उनके पूर्व की साध्वी रगूजी (२०) की दीक्षा स० १८३८ चैत्र पूर्णिमा को हुई, और उनके बाद की साध्वी वगतूजी (२७) की दीक्षा स० १८४४ मे हुई, इससे उनकी तथा फूलांजी (२२) अमराजी (२३) रत्तूजी (२४) तेजूजी (२५) और वन्नाजी (२६) की दीक्षा स० १८३८ चैत्र पूर्णिमा के बाद और स० १८४४ के पूर्व हुई, ऐसा निष्कर्ष निकलता है।

२. साध्वी श्री प्रकृति से सरल थीं और निर्मल भावो से चारित्र का पालन करती।

(ख्यात)

३. स० १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के सामूहिक लेखपत्र स० ७ मे साध्वी सदांजी के हस्ताक्षर है। स० १८५२ मे उक्त तिथि के पूर्व स्वामीजी ने वीराजी (४२) को दीक्षित कर उन्हे सौपा था। वीराजी जब तक उनके साथ रही तब तक ठीक रही, ऐसा उल्लेख स० १८५२ व्यक्तिगत लेखपत्र सं० २२ मे है।

उपर्युक्त उल्लेख से ऐसा ज्ञात होता है कि साध्वी सदाजी अग्रगामिनी बनी।

४. साध्वीश्री ने अन्त मे अनशन पूर्वक परम-समाधि से पंडित-मरण प्राप्त किया[2]।

(ख्यात)

उनका स्वर्गवास-सवत् प्राप्त नहीं है परन्तु स्वामीजी के स्वर्गवास के पश्चात् विद्यमान् २७ साध्वियो मे उनका नाम नही है अतः वे स० १८६० के पूर्व स्वामी जी के समय मे ही दिवगत हुई।

---

१. तलेसरा श्रीजीद्वारा ना, सती सदाजी सुखकारं।

(शासन-विलास ढा० १ गा० १५)

२. सदांजी मोटी सती जी, तलेसरा तंत सार।
श्रीजीदुवारा ना सही जी, सखर कियो सथार॥

(भि० ज०२ ढ़ा०५१ गा० १२)

शासन विलास ढा०२ गा०१५, संत गुणमाला-पंडित मरण ढा ०२ गा०४ तथा शासन प्रभाकर ढा०३ गा०२०में भी उक्त उल्लेख है।

२२. साध्वी श्री फूलांजी (कंटालिया)

(सं० १८३८ और ४४ के बीच, १८५५-१८६० के बीच स्वामीजी के युग मे)

दोहा

'फूला' का कटालिया, कहलाया ससुराल।
सुत वहु संपद् छोड़ के, चरण लिया खुशहाल[1] ॥१॥

कलश चढाया अंत में, कर अनशन स्वीकार।
चढते-चढ़ते हर्ष से, भार उतारा पार[2] ॥२॥

१. साध्वी श्री फूलांजी कंटालिया (मारवाड़) की वासिनी थी। उन्होने पति वियोग के वाद पुत्रादिक परिवार एव विपुल संपत्ति को छोड़कर स० १८३८ चैत्र शुक्ला १५ और स० १८४४ के वीच दीक्षा ग्रहण की :

सुत वहु तज संजम लियो जी, कंटालिया ना कहिवाय।

(भिक्षु ज० र० ढ़ा० ५१ गा० १३)

सुत वहु तज व्रत धारचा फूलां।

(शासन-विलास ढा० २ गा० १३)

यहा 'सुत वहु तज सजम लियो' का अर्थ है कि उन्होने वहुत पुत्रो (अथवा पुत्र, पुत्रवधू) को छोडकर दीक्षा ली। ख्यात मे सुत वहु तज के स्थान पर 'सुत वहु ऋद्ध छोड़' लिखा है जिसका अर्थ होता है कि पुत्र और वहुत सपत्ति छोड़कर दीक्षा ली थी। तात्पर्य यही लगता है कि वहुत पुत्र (अथवा पुत्र-पुत्रवधू) और वहुत सपत्ति छोडकर दीक्षा ली।

२. साध्वी श्री ने अनशन कर लोटोती ग्राम मे स्वर्ग प्रस्थान किया[1]।

(ख्यात)

उनका स्वर्गवास सवत् नही मिलता। सं० १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लेखपत्र (व्यक्तिगत स० ७) मे उनके हस्ताक्षर नही है। इसका कारण उनकी अनुपस्थिति या हस्ताक्षर करना न जानना ही है। सं १८५५ जेठ वदि ६ के पत्र (व्यक्तिगत लेखपत्र स.७) मे स्वामीजी ने मैणाजी (१५) धन्नांजी (१६) और गुमानाजी के साथ साध्वी फूलाजी का भी उल्लेख किया है। उसमे स्वामीजी ने मैणाजी और धन्नांजी पर गोचर आदि के लिए कई प्रतिवध लगाये थे, फूलाजी और गुमानांजी को कुछ छूट दी थी। फूलांजी को अशक्त और अवस्था प्राप्त होने से उन्हे अपनी शक्ति-अनुसार काम करने का आदेश दिया था। इससे फलित होता है कि वे स०१८५५ जेठ वदि ६ के वाद दिवगत हुई। स्वामीजी के स्वर्गवास के पश्चात् विद्यमान २७ साध्वियो मे फूलांजी का नाम नही है अतः उनका स्वर्गवास सं० १८५५ जेठ वदि ६ के पश्चात् और स० १८६० भाद्रव शुक्ला १३ के पूर्व स्वामीजी के समय मे ठहरता है।

---

१. अणसण लोटोती मझै जी, फूलाजी सुखदाय।

(भि० ज० र० ढा० ५१ गा०१३)

सत गुणमाला पडित मरण ढा० २ गा०४ मे सथारा का और शासन विलास ढ़ा०२ गा ०१५, शासन प्रभाकर ढ़ा०३ गा०२१ मे लोटोती मे संथारा करने का उल्लेख है।

२३. साध्वी श्री अमरांजी

(दीक्षा सं० १८३८ और १८४४ के बीच स्वर्गवास १८६० और १८६८ के बीच भारीमाल युग में)

दोहा

'अमरां' ने उत्तम किया, संयम लेकर काम।
भैक्षव-गण की ख्यात में, अमर हो गया नाम[1] ॥१॥

बहुत वर्ष की साधना, होकर एकाकार।
अनशन करके अंत में, जीवन लिया सुधार[2] ॥२॥

१. साध्वी श्री अमरांजी ने पति वियोग के बाद सं० १८३८ चैत्र शुक्ला १५ और सं० १८४४ के बीच दीक्षा स्वीकार की।

(ख्यात)

साध्वी श्री ने अनेक वर्षो तक सयम का पालन किया और अन्त मे अनशन कर अपने जीवन-मंदिर पर कलश चढ़ाया।[1]

उनका स्वर्गवास संवत् उपलब्ध नही है। स० १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लेखपत्र (सामूहिक क्र. ७) मे उनके हस्ताक्षर नही है इसका कारण उनकी अनुपस्थिति या हस्ताक्षर करना न जानना ही हो सकता है क्योकि स्वामीजी के स्वर्गवास के पश्चात् विद्यमान २७ साध्वियों मे उनका नाम है।

मुनि श्री डूगरसीजी (४३) तक यानी स० १८६८ जेठ सुदि ७ तक होने वाले १८ सथारों मे साध्वी अमरांजी का नाम समीक्षा से जाना जाता है। इससे उनका स्वर्ग स० १८६० भादव सुदि १३ अर्थात् स्वामीजी के स्वर्ग-प्रयाण के वाद और स० १८६८ जेठ सुदि ७ के पूर्व भारीमालजी स्वामी के युग मे ठहरता है।

साध्वी कुशालांजी (५०) के प्रकरण में इसका समीक्षा द्वारा स्पष्टीकरण कर दिया गया है।

---

१. उत्तम अमरा आर्यां जी, स्वाम् तणै उपगार।
जीतव जन्म सुधारियो जी, सखरो कर संथार॥

(भि० ज० र० ढ़ा० ५१ गा० १४)

शासन विलास ढ़ा० २ गा० १५, सतगुणमाल पंडित मरण ढ़ा० २ गा० ४ तथा शासन प्रभाकर ढ़ा० ३ गा० २२ में ऐसा ही उल्लेख है।

२४. श्री रत्तूजी

(दीक्षा सं० १८३८ और १८४४ के बीच, १८५२ के पूर्व अथवा १८५२ और १८६० के बीच-स्वामीजी के समय गणवाहर)

रामायण-छन्द

'रत्तू' ने चारित्र लिया' पर किया न आजीवन निर्वाह।
गणवाहर हो अनशन कर पाली में ली परभव की राह।
अन्य साधुओं ने निज मत में लेने के बहु किये उपाय।
लेकिन उनमे नहीं मिली वे नियम निभाया यह निरपाय' ॥१॥

१. रत्तूजी ने पति वियोग के बाद सं० १८३८ चैत्र शुक्ला १५ और सं० १८४४ के बीच दीक्षा ली।

(ख्यात)

२. वे कई वर्षो तक तो गण मे रही, फिर प्रकृति-सुधार न करने के कारण गण से अलग हो गई। अन्य सम्प्रदाय के साधु-साध्वियो ने उन्हे अपने समुदाय में सम्मिलित करने के लिए अनेक प्रयत्न किये, परन्तु वे उनमे नही गई और दृढ़ रही। फिर पाली में अनशन कर मरण प्राप्त किया।[1]

(ख्यात)

स० १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लेखपत्र (सामूहिक स० ७) मे उनके हस्ताक्षर नही है इससे लगता है कि वे इसके पूर्व गण बाहर हो गई थी। यदि उस समय उपस्थित न होने से या हस्ताक्षर करना न जानने से वे हस्ताक्षर नही कर पाई है तो सं० १८६० भादवा सुदि १३ स्वामीजी के स्वर्गवास के पूर्व गण से पृथक हो गई क्योकि उस समय विद्यमान साध्वियो मे उनका नाम नही है।

---

१. रत्तू ले चारित्र रे, छूटी प्रकृति अजोग थी।
पाली माहि पवित्र रे, पछै सथारो पचखियो॥
उपाय किया अनेक रे, भेषधारया लेवा भणी।
तो पिण राखी टेक रे, त्या माहे तो ना गई॥

(शासन विलास ढ़ा० २ सो० १६, १७)

भिक्षुजशरसायण ढा० ५२ सो० १, २ तथा शासन प्रभाकर ढ़ा० ३ सो० २३, २४ मे भी उक्त वर्णन है।

२५. साध्वी श्री तेजूजी (ढोलकम्बोल)

(दीक्षा सं० १८३८ और १८४४ के बीच, स्वर्ग सं० १८६० और १८६८ के बीच भारीमाल युग में)

रामायण-छन्द

वास ढोलकम्बोल ग्राम में पोरवाल 'तेजू' का कुल ।
तीव्र भाव से संयम लेकर पाया भैक्षव गण-गोकुल[1] ।
भद्र प्रकृति गुणवती सती थी तप में आगे बढ़ पाई ।
शहर केलवा में कर अनशन ऊर्ध्व शिखर पर चढ़ पाई[2] ।।१।।

दोहा

बयालीस दिन से फला, जला मांगलिक दीप ।
गण की बढ़ी प्रभावना, करते सब तारीफ[3] ।।२।।

१. साध्वी श्री तेजूजी ढोलकम्वोल (मेवाड) की वासिनी थी। उनकी जाति पोरवाल थी। उन्होने पति वियोग के वाद स० १८३८ चैत्र शुक्ला १५ और १८४४ के वीच मे संयम स्वीकार किया।[1]

(ख्यात)

२. साध्वी श्री प्रकृति से वहुत सरल और गुणवती थी। उन्होने तपस्या भी काफी की।

(ख्यात)

३. साध्वी श्री ने कितने वर्षो के वाद ऊर्ध्व भावो से अनशन किया। ४२ दिन की दीर्घ अवधि के पश्चात् केलवा मे सानंद समाधि मरण प्राप्त कर भैक्षव-शासन की प्रभावना को वढ़ाया :—

काल कितैक पछै कियो, सथारो सुविहांण।
दिवस वयांली दीपता, कीधो जन्म किल्यांण॥

(भि०ज०र० ढा० ५२ दो० ४)

ढोलकम्बोल तणा ए वासी, तत वयांली दिवस तणो।
सैहर केलवै वर संथारो, समणी तेजू सुजश घणो।

(शासन-विलास ढा० २ गा० १८)

तेजूजी तपसण, वयांलीस दिन संथारो।

(मु० जीवोजी (८६) रचित तपस्वी साधु-साध्वी वर्णन ढ़ा० १ गा० १६)

उक्त स्थानो मे उनके ४२ दिन के अनशन का उल्लेख है पर ख्यात तथा शासन-प्रभाकर ढ़ा० ३ गा० २५ मे ४६ दिन लिखे हैं (छियाल दिन सथारो, शहर केलवे कराण)। लेकिन वहां 'व' के स्थान पर राजस्थानी भाषा (छ) का लिपि भेद हुआ मालूम देता है। अधिकांश सदृशता के कारण पढ़ने की भूल भी हो सकती है अतः उपर्युक्त ४२ दिन का उल्लेख अधिक सगत लगता है।

संत गुणमाला—पं० मरण ढा० २ गा० ६ मे ४१ दिन के अनशन का उल्लेख है :—

'इगतालीस दिन रो सथारो, तेजूजी नैं आयो।'

---

१. सुध चित सू तेजू सती, पोरवाल पहिछांन।
वासी 'ढोलकम्बोल' रा, सजम लियो सुजांन॥

(भि० ज० र० ढा० ५२ दो० ३)

शासन विलास ढ़ा० २ गा० १८ तथा शासन प्रभाकर-भिक्षु सती वर्णन गा० २५ मे भी उक्त उल्लेख है।

इससे प्रश्न होता है कि ४१ दिन का अनशन मानना चाहिए या ४२ दिन का ?

उपर्युक्त तीन प्रमाणो के आधार से हमने ४२ दिन का अनशन मान्य किया है।

पडित मरण ढाल में तेजूजी का नाम हीरांजी (२८) और नगांजी (२६) के बीच मे दिया गया है, इसके लिए सदेह की अपेक्षा नही है, क्योकि ढाल मे सभी नाम दीक्षा क्रम तथा दिवगत क्रम के अनुसार नही दिये गये है। वे गाथाएं इस प्रकार हैं —

हीरांजी संथारो चेलावास कीधो, भारीमाल पेलां कारज सीधो।
सतरै दिन आगूंच पौंहती, समरो मन हरखे मोटी सती॥

इकतालीस दिन रो संथारो तेजूजी नै आयो,
नगांजी संथारो देवगढ़ ठायो।
वंधव साज दीयो कीधी भगती,
समरो मन हरखे मोटी सती॥

(सत गुणमाला—पंडित मरण ढा० २ गा०५, ६)

२८. साध्वी श्री हीरांजी (पचपदरा)

(दीक्षा सं. १८४४, स्वर्ग सं. १८७८—भारीमाल युग में)

छप्पय

वढा भिक्षु के समय में हीरां का सन्मान।
युग में भारीमाल के पाया स्थान प्रधान।
पाया स्थान प्रधान ध्यान से वर्णन सुनलो।
रख गुण-ग्राहक दृष्टि सती के सद्गुण चुनलो।
पचपदरा ससुराल का कहा निवास-स्थान।
वढ़ा भिक्षु के समय में हीरां का सम्मान ॥१॥

स्वामीजी के हाथ से पाई सयम-ऋद्धि।
की रंगू के पास में विशद ज्ञान की वृद्धि[१]।
विशद ज्ञान की वृद्धि विनय से विद्या फलती।
ऋजु स्वभाव से दिव्य ज्योति जीवन में जलती।
साधु-क्रिया में सजगता रखती देकर ध्यान[२]।
वढ़ा भिक्षु के समय में हीरां का सन्मान ॥२॥

निष्ठा शासन में वड़ी थी हार्दिक अनुरक्ति।
तन मन से गुरुदेव की करती सेवा भक्ति।
करती सेवा भक्ति अग्रगण्या बन पाई।
कर अच्छा उपकार धर्म की बिगुल वजाई।
हस्तू कस्तू को दिया स्थायी चरण-निधान[३]।
वढ़ा भिक्षु के समय में हीरां का सन्मान ॥३॥

सोरठा

चंदू ने आरोप, विविध लगाये व्यर्थ ही।
फिर भी किया न कोप, आंच न आती सांच को[४]।
रही फूल ज्यों फूल, शासन-वनिका में सती।
योग दान अनुकूल, देती संघ विकास हित ॥५॥

छप्पय

करवाने हित हेम को प्रतिक्रमण कठस्थ।
भेजा गुरुवर ने उन्हें देकर आज्ञा स्वस्थ।
देकर आज्ञा स्वस्थ किया पालन हो तत्पर।
रूपां को सान्निध्य मिला श्रमणी का सुंदर।
साध्वी चतरू को दिया हृदय खोलकर ज्ञान।
वढ़ा भिक्षु के समय में हीरां का सन्मान ॥६॥

सती नगां ने जिस समय अनशन किया निरोग।
दिया उन्हें उपयोग से हीरां ने सहयोग।
हीरां ने सहयोग अधिकतर लाभ लिया है।
जयपुर में कर दर्श हर्ष का स्पर्श किया है[५]।
गुरु की करुणा-दृष्टि से चढ़ी ऊर्ध्व सोपान[६]।
वढ़ा भिक्षु के समय में हीरां का सन्मान ॥७॥

अनशन करके अंत में पद आराधक खास।
पाया 'चेलावास' में हीरां ने सोल्लास।
हीरां ने सोल्लास पूज्य 'भारी' से कुछ दिन।
पहले पहुंची स्वर्ग-लोक में वह ,वड़-भागिन।
संघ चतुष्टय गा रहा उनका गौरव गान[७]।
वढ़ा भिक्षु के समय में हीरां का सन्मान ॥८॥

सोरठा

गुरु-भक्ता गुणखान, हीरांजी मोटी सती।
हीरकणी उपमान, जय ने कृतियों में कहा[८] ॥९॥

१. साध्वी श्री हीराजी पचपदरा (मारवाड) की निवासिनी थी, ऐसा पचपदरा की दीक्षा-सूची मे लिखा है।

उन्होंने पति वियोग के बाद साध्वी श्री वगतूजी (२७) और नगाजी (२६) के साथ स० १८४४ मे आचार्य भिक्षु द्वारा सयम ग्रहण किया। स्वामीजी ने तीनो साध्वियो को दीक्षित कर साध्वी रगूजी (२०) को सौप दिया'।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढा० ३ गा०२७ से २६)

२. साध्वी हीराजी ने साध्वी रगूजी के सान्निध्य में रहकर ज्ञानार्जन किया और पढ-लिख कर तैयार हुई। वे स्वभाव से भद्र और साधुत्व पालन में वडी जागरूक थी।

(ख्यात)

३. साध्वीश्री की गण एव गणी के प्रति हार्दिक अनुरक्ति थी। उन्होंने आचार्य भिक्षु और भारीमालजी की वडी तन्मयता से सेवा-भक्ति की। स्वामीजी ने सभी तरह से योग्य समझ कर उनका सिघाडा वनाया और अच्छा स्थान दिया। उन्होने अनेक क्षेत्रो मे विचर कर वहुत अच्छा उपकार किया और जैन धर्म को चमकाया।

साध्वी हस्तूजी (४५) और कस्तूजी(४७) दोनो वहनो को पीपाड में भागवती दीक्षा दी²।

४. गण में रहते हुए तथा गण से वहिर्भूत होने के पश्चात्-चदूजी ने साध्वी हीराजी पर अनेक दोपारोपण किये। साध्वी श्री ने वड़ी धैर्यता एव समता भाव से सहन किया। स्वामीजी ने उनकी जाच की तो वे सारे वेवुनियाद ही निकले।

(स० १८५२-५४ व्यक्तिगत लेखपत्र स० २२से २५)

---

१. शासन विलास ढा० २ गा० २०, २१ तथा भिक्षुजशरसायण ढा० ५२ दो०६ से ८ मे भी उपर्युक्त वर्णन है। पद्य साध्वी वगतूजी के प्रकरण मे दे दिये गये है।

२. शिपणी भीक्खू स्वाम री, हीरांजी हद वेप।
धर्म दिपायो जिन तणो, फिरती देश विदेश।
गुरु-भक्ता होई घणी, तिण वोत कियो उपकार।
हस्तूजी कस्तुरांजी दो वैनडी, लीधो सजम भार।
(हेम मुनि कृत-चन्दना(६४) सती गु० व० ढा० १ दो० ३,४)
हस्तू कस्तू भगनी भणी रे हीराजी दियो सजम भार।
लौकीक माहे लखी (लक्षाधिप) रे लाल, छोड़यो पुत्र पिउ धन सार रे॥
(दीपां (९०) सती गु० व० ढा०१ गा० २)

५. साध्वी श्री ने स्वामीजी के आदेशानुसार अनेक कार्य कर संघ विकास में अच्छा योगदान दिया। पढ़िये कुछ अश :—

सं० १८५३ में स्वामीजी ने जब मुनि हेमराजजी (३६) को दीक्षा के लिए तैयार किया तब प्रतिक्रमण सिखलाने के लिए साध्वी श्री को सिरियारी भेजा[1]।

साध्वी रूपांजी (३७) दीक्षित होने के पश्चात् साध्वी श्री के सान्निध्य मे रही[2]।

सं० १८६० मे साध्वी आशूजी (५७) ने गुरु-आज्ञा से साध्वी चतरुजी (६५) 'बड़ा' को दीक्षित कर साध्वी हीराजी को सौंपा। उसके साथ रहकर साध्वी चत्रूजी ने व्याख्यान कला तथा शास्त्रो का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। ऐसा उल्लेख शासन विलास ढा० ४ गा० ८ की वार्त्तिका मे है।

साध्वी नगाजी (२९) ने जब स० १८६६ कार्त्तिक शुक्ला १४ को देवगढ में सलेखना तथा सथारा किया तब वे साध्वी हीरांजी के सिंघाडे मे थी। साध्वी हीरांजी ने उन्हे उस समय बहुत सहयोग दिया। हीराजी के साथ की साध्वियां कुशालाजी (५०) (स्वामीजी के समय की) कुशालाजी (६१) जीलवाडा कुन्नणांजी (६२) 'केलवा' और दोलाजी (६३) 'काकडोली' ने भी नगाजी की अच्छी सेवा की[3]।

उक्त वर्णन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि साध्वी हीराजी का स० १८६६ का चातुर्मास देवगढ मे था।

स० १८६९ मे आचार्य श्री भारीमालजी अस्वस्थता के कारण चातुर्मास के पश्चात् भी जयपुर मे विराजे। वहा साध्वी हीराजी, अजबूजी (३०) तथा हस्तूजी (४५), कस्तूजी (४७) आदि ने गुरुदेव के दर्शन किये और कुछ दिनो तक

---

१. जब भीक्खू बोल्या, मुख वाणी वारु रे।
हीराजी भणी, म्हेला छां अवारू रे।
साधू नें पड़िकमणो, सीखे चित्त ल्यायो रे।
इम कही आविया, नीवली मांह्यो रे।।
(हेम नवरसा ढा० २ गा० ३९, ४०)

२. हीराजी समणी हीरकणी, भल कीरत भारीमाल भणी।
सुखे रहै तस पास रूपा समणी।।
(रूपा सती गुण वर्णन ढा० १ गा० ६)

३. सवत् अठारै हो छासटे समै, वडा हीराजी हाजर विचार।
कुसालांजी दोनू कुनणा दोलाजी, सतिया सेवा कीधी श्रीकार।
(नगा सती गुण वर्णन ढा० १ गा ३२)

सेवा का लाभ लिया। उस समय साध्वी अजबूजी — जो स्वरूप, भीम और जयाचार्य की बुआ थी—ने स्वरूपचन्दजी को उपदेश देकर दीक्षा के लिए तैयार किया था।

(जय सुयश ढ़ा० १ दो० १ से ३ गा० १ से ५)

६. आचार्य भिक्षु से लेकर आचार्य रायचंदजी तक 'साध्वी प्रमुखा' नियुक्ति की प्रणाली नही थी। आचार्यों द्वारा विशेष सम्मानित साध्वी संघ मे प्रमुख रूप में मानी जाती थी। स्वामीजी के समय साध्वी श्री वरजूजी (३९), भारीमालजी स्वामी के समय साध्वी श्री हीराजी और रायचदजी स्वामी के समक्ष साध्वी श्री दीपांजी (९०) मुखिया कहलाती थी।

'नौ पाटों का लेखा' मे उक्त तीनों साध्वियों का नाम मुखिया के रूप मे लिखा हुआ है।

साध्वी वरजूजी और दीपाजी का वर्णन उनके प्रकरण मे दे दिया गया है।

साध्वी हीरांजी की विशेषताओं के सम्बन्ध मे निम्नोक्त पद्यों में उल्लेख मिलते है :—

'हद हीरांजी की हीरकणी ।
भारीमाल नी मुरजी अति ही।'

(शासन-विलास ढ़ा०२ गा० २०)

हीरां हीरकणी जिसी, भारीमाल ना नेत।

(भि० ज० र० ढ़ा० ५२ दो० ६)

'भारीमालजी स्वामी री मुरजी घणी आराधी।'

(ख्यात)

साध्वी समाज की उत्तरोत्तर वृद्धि को देखकर जयाचार्य ने गहराई से चिंतन किया और आवश्यक समझ कर किसी साध्वी को साध्वी-समूह मे सर्वोपरि मनोनीत करने का निर्णय लिया। पदासीन होने के दो वर्ष पश्चात् सं० १९१० में उन्होंने साध्वी श्री सरदारांजी (१७१) को 'साध्वी प्रमुखा' पद पर व्यवस्थित रूप से नियुक्त किया। वे तेरापंथ मे सर्वप्रथम साध्वी प्रमुखा बनी ऐसा सरदार सुजश ढ़ा० ११ गा० १२ से १४ मे उल्लेख है।

७. साध्वी श्री हीराजी ने लगभग ३४ साल संयम की आराधना की। अंत में उच्चभावो से अनशन स्वीकार कर चेलावास मे आराधक पद प्राप्त किया। उनका स्वर्गवास सं० १८७८ में भारीमालजी स्वामी के स्वर्ग-प्रस्थान के २१ दिन पहले हुआ।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढा० ३ गा० ३०)

चेलावास हीरांजी अणसण, वर्ष अठंतरे पुन्यवंती।
दिन इकवीस आसरै परभव, भारीमाल पहिलां पहुंती ।।

(शासन-विलास ढा० २ गा०२२)

उक्त स्थलो मे उनका स्वर्ग-गमन भारीमालजी स्वामी के २१ दिन पहले माना है और पडित-मरण ढ़ाल मे १७ दिन पहले का उल्लेख है :—

हीरांजी संथारा चेलावास कीधो, भारीमाल पेलां कारज सीधो।
सतरै दिन आगुंच पोहंती, समरो मन हरषे मोटी सती ।।

(सत गुणमाला-पडित मरण ढा० २ गा० ५)

पचपदरा के श्रावक किसनोजी तातेड़ द्वारा सकलित पचपदरा के दिवगत साधु-साध्वियों की तालिका मे उनका स्वर्ग-गमन स० १८७८ पोष शुक्ला २ को लिखा है जो कि अधिक संगत लगता है। पडित मरण ढ़ाल के अतिरिक्त सभी प्रमाण आचार्य श्री भारीमालजी के २१ दिन पूर्व उनके स्वर्ग-गमन की पुष्टि करते है अत: यही मान्य किया है।

८. जयाचार्य ने साध्वी श्री को निम्नोक्त विशेषण से विभूषित कर उनकी गुण गरिमा को अभिव्यक्त किया :—

'हीरां हीर कणी जिसी' भारीमाल ना नेत ।

(भि० ज० र० ढ़ा० ५२ दो० ६)

"गुरु भक्ता होई घणी"......

(चन्दना सती गु० व० ढ़ा० १ दो० ४)

२६. साध्वी श्री नगांजी (बगड़ी)

(संयम पर्याय सं. १८४४-१८६६)

छप्पय

भगिनी वैणीराम की 'नगा' नाम से ख्यात।
दीक्षित होकर संघ में लाई नया प्रभात।
लाई नया प्रभात दिशा में लाली छाई।
गई बढ़ाती तेज त्याग-तप शिखा चढ़ाई।
भरी वीर-रस से बड़ी सुन लो उनकी बात।
भगिनी वैणीराम की नगां नाम से ख्यात ॥१॥

पुर बगड़ी की वासिनी 'कांठा' मरुधर देश।
संवत् चौवालीस का लाया शुभ संदेश।
लाया शुभ संदेश विरति तरुवर लहराया।
स्वामीजी के पास खास संयम-फल पाया।
उसी वर्ष में संयमी बन पाये हैं भ्रात।[1]
भगिनी वैणीराम की नगां नाम से ख्यात ॥२॥

कोमल सरल स्वभाव से निर्मल उच्च विचार।
सतियों को सुखकारिणी मधुर सरस व्यवहार।
मधुर सरस व्यवहार खींचता दिल जन-जन का।
दिया 'सतयुगी' नाम गुणों से गुरु ने उनका।
सावधान हो साधना करती थी अवदात[2]।
भगिनी वैणीराम की नगां नाम से ख्यात ॥३॥

गीतक-छन्द

साथ में हीरां सती के बहुत वर्षों तक रही।
चढ़ कसौटी पर तपोमय चमक लाई है सही।

अन्त में वैराग्य-रस की वही है स्रोतस्विनी।
सबलतम संलेखना कर हो गई वर्चस्विनी ॥४॥

मास छह तक चला है क्रम भाव बढते ही गये।
पास में वहु माल है फिर भाव चढ़ते ही गये।
भाग्य से गुरुदेव भारी वन्धु मुनि श्री आ गये।
योग मणिकांचन मिला सौहार्द रस वरसा गये ॥५॥

देख आग्रह अधिक अनशन अंत में करवा दिया।
जिनागम-व्याख्यान-श्रुति का लाभ श्रमणी ने लिया।
दर्शनों के लिए जनता उमड़ करके आ रही।
दे 'नगां' उपदेश उनको नियम वहु करवा रही ॥६॥

छप्पय

वर्धमान श्रेणी रही भावों की सगीन।
सुरगढ़ से सुरपुर गई हो समाधि में लीन।
हो समाधि में लीन साल छासठ का आया।
सित तेरस वैशाख परम चरमोत्सव छाया।
शासन की शोभा वढ़ी हुई सती प्रख्यात[३]।
भगिनी वैणीराम की नगां नाम से ख्यात ॥७॥

हुआ उपद्रव फौज का पुर-जन पाये त्रास।
तपस्विनी के तेज से आ न सके वे पास।
आ न सके वे पास सती के सव गुण गाते।
चमत्कार साकार देख कर शिर डोलाते[४]।
सतियों ने सहयोगिनी की सेवा दिन रात[५]।
भगिनो वैणीराम की नगा नाम से ख्यात ॥८॥

दोहा

गाई गीति प्रशस्ति में, भर कर भाव सतोल।
जड़े नगीने स्वर्ण में, देखो दृग् पट खोल[६] ॥९॥

१. साध्वी श्री नगाजी वगड़ी (मारवाड़) की वासिनी एवं मुनि श्री वैणीरामजी (२८) की सगी वहन थी। उन्होंने पति वियोग के पश्चात् साध्वी श्री वगतूजी (२७) और हीरांजी(२८) के साथ स० १८४४ मे स्वामीजी के हाथ से दीक्षा ग्रहण की। स्वामीजी ने उन तीनो साध्वियो को दीक्षित कर साध्वी श्री रंगूजी (२०) को सौप दिया।[1]

(ख्यात, शासनप्रभाकर ढ़ा० ३ गा० २७ से २६)

२. साध्वी श्री साधु-क्रिया मे कुशल, स्वभाव से सरल, हृदय से कोमल और विचारो से वडी निर्मल थी। सभी साध्वियो को सुख-समाधि पहुचाने वाली थी। अपने मधुर व्यवहार से उन्होने सभी के दिल मे अच्छा स्थान प्राप्त कर लिया। उनकी विविध विशेपताओ से प्रभावित होकर आचार्य श्री भारीमालजी ने उन्हे 'सतजुगी' नाम से सवोधित किया।[2]

३. साध्वी श्री नगाजी स० १८६६ के देवगढ चातुर्मास में साध्वी श्री हीराजी के साथ थी। कार्त्तिक महीने के शुक्ल पक्ष मे उन्होने साध्वी श्री हीराजी आदि से कहा —'अव मै सलेखना करना चाहती हूं अत: आपकी उसके लिए अनुमति दे।' तव सभी साध्वियो ने उन्हे कहा—'अभी आप मुझे शारीरिक शक्ति अच्छी है इसलिए आप ग्रामानुग्राम विहार करें, अभी संलेखना का समय नही है।' उनके ससार पक्षीय भाई मुनि वैणीरामजी ने भी उन्हे धैर्य रखने का अनुरोध किया[3] और कहा—'भारीमालजी स्वामी यहा पधारे तव तक ठहरो।' लेकिन साध्वी श्री अपने विचारों पर अडिग रही और उन्होने कार्त्तिक

---

१. शासन विलास ढा० २ गा० २०, २१ तथा भिक्षुजशरसायण ढा० ५२ दो० ६ से ८ मे भी उपर्युक्त वर्णन है। पद्य साध्वी वगतूजी के प्रकरण मे दे दिये गये है।

२. सतजुगी सुहामणो, निरमल एहवो नाम।
पूज दीयो परगटपणै, जिसा हिज रहया परिणाम।
कोमल सरल स्वभाव सू, गमती घणी गण मांय।
साताकारी सतिया भणी, साधा नै घणी सुखदाय॥

(नगां सती गु० व० ढ़ा० १ दो० २, ३)

३. इस उल्लेख से एक सभावना तो यह की जाती है कि उस वर्ष मुनि वैणीरामजी का चातुर्मास देवगढ़ मे था। दूसरी संभावना यह है कि उनका चातुर्मास किसी निकटवर्ती गाव मे था और वे साध्वी नगांजी को दर्शन देने के लिए आये और वापस उसी दिन चले गये।

शुक्ला चतुर्दशी को संलेखना चालू कर दी।

कुछ दिनो बाद आचार्य श्री भारीमालजी (जिनका सं० १८६६ का चातुर्मास आमेट था) साध्वी श्री को दर्शन देने के लिए देवगढ़ पधारे। उनके साथ मुनि वैणीरामजी भी आये। सभी ने साध्वी नगांजी से कहा—'अभी आप अच्छी तरह विहार कर सकती हो अतः सकुशल संयम की साधना करती हुई विहरण करो। संलेखना के लिए शीघ्रता मत करो।'[1]

साध्वी श्री अपने कृत सकल्प मे सुदृढ थीं। उन्होंने उन सबकी बात को बहुमान देने के लिए लगातार दो दिन भोजन किया पर सलेखना करना नही छोड़ा।

उन्होने उस समय जो तप किया उसकी कुल सूची इस प्रकार है[2] :—

उपवास	२	३	४	६	८
३	९	१९	८	१	१

इस प्रकार तप करने के पश्चात् स० १८६६ वैशाख शुक्ला ४ के दिन साध्वी श्री ने तेला (तीन दिन का तप) चालू किया। तेले के दूसरे दिन भावना इतनी प्रवल हुई कि उन्होंने अपने आप अरिहंत देव की साक्षी से अनशन कर लिया और फिर साध्वियो को कह दिया। साध्वियो ने कहा—'हम सबने तथा मुनि वैणीरामजी आदि आप को मनाह किया था फिर इतनी उतावल क्यो की ?"

---

१. हिवे भाई पिण आया हो भली परैं, पूज पधारया धर पेम।
दरसण देवा हो आया उतावला, सगला वरजै छै एम॥
सकत छती छै हो विहार करण तणी, सुखे पालो संजम भार।
उतावल अवारू करो किण कारणे, पिण सतिय न मानै लिगार॥
(नगा सती गु० व० ढा० १ गा० ९, १०)

२. तीन उपवास वेला हो नव नीका किया,
अठम भगत किया उगणीस॥
आठ चोला अठाई हो वले छव किया,
आ सरव सलेखणा विसवावीस॥
(नगां सती गु० व० ढा० गा० १६)

सलेखना मे तप का क्रम इस प्रकार रहा—

उपवास ३, ९ वेले, १६ तेले, ७ चोले, अठाई १, छह १, चार १, तेले ३। पारणे मे भी वे अल्प आहार करती और विशेप ऊनोदरी रखती।
(नगां सती गु० व० ढा० १ गा० ७ से १५)

साध्वी श्री ने उत्तर दिया—'यदि दो मास का अनशन आ जाए तो भी कोई चिन्ता की वात नही है। आप मुझे आज्ञा प्रदान करे जिससे मेरे मन में अधिक प्रसन्नता हो जाए। आप किसी प्रकार का सदेह न करें।'

क्रमश: वैशाख शुक्ला दशमी सोमवार का दिन आ गया। साध्वी श्री के उस दिन तपस्या का सातवां दिन था। उनका दृढ निश्चय देखकर उसी दिन पहले दुघडिये मे साध्वी श्री हीराजी ने साधुओ (संभवत. वैणीरामजी आदि साधु वहां थे) की साक्षी से उन्हें आजीवन अनशन करवा दिया। अनशन के समय साध्वी श्री के भावों की श्रेणी उत्तरोत्तर वढती रही। वे प्रतिदिन साधुओ का व्याख्यान सुनती। दर्शनार्थ आने वाले लोगो को धर्मोपदेश देती। इस प्रकार परम-समाधि युक्त वैशाख शुक्ला १३ वृहस्पतिवार के दिन जव प्राय: एक प्रहर दिन अवशेप रहा तब सानद संथारा सपन्न हो गया। साध्वी श्री प्रारम्भ से अन्त तक उत्तराध्ययन सूत्र का श्रवण करती रही, ज्योंही वह सम्पूर्ण हुआ त्योंही उन्होने स्वर्ग प्रस्थान कर दिया।

साध्वी श्री को कुल दस दिन का सथारा आया जिसमें स्वय का किया हुआ ६ दिन और साधुओं की साक्षी से साध्वी श्री हीराजी द्वारा कराया गया ४ दिन रहा। उन्होने स० १८६६ कार्त्तिक शुक्ला १४ से सलेखना तप प्रारंभ किया और वैशाख शुक्ला १३ को अनशन सपन्न हुआ। सारा समय छह महीनो मे एक दिन कम अर्थात् १७६ दिन का रहा। उसमे २ दिन (तिथि घटने से) वाद देने से १७७ दिन रहे। उस अवधि मे उन्होने ४३ आहार किया और १२४ दिन सलेखना तप के तथा १० दिन के संथारे के (कुल १३४ दिन) हुए[1]।

(नगां सती गु० व० ढा० १ गा० १ से २६)

साध्वी श्री ने साधिक २२ वर्ष साधु-पर्याय का पालन किया[2] और

---

१. असगण रहयो छै हो दस दिन दीपतो, पोता रो पचख्यो छव दिन संथार।
च्यार दिन चावो साधा री साख सूं, इण विधि कीधो आतम नो उद्धार॥
हिवे पख तो आयो छै हो सुकल शोभतो, मास वैशाख विचार।
पोहर दिन मठेरो रहयो पाछलो, तीखी तिथ तेरस विसपतवार॥
उत्तराधेन सुण्यो हो आछी तरै, छेहला दिन लग जाण।
पूरो हूवो छै हो प्रगटपणे, पछै चट दे छोडया प्राण॥
अन्न तो लीधो छै हो तंयालीस दिन मझै, एक सो चोतीस आया उपवास।
एक सौ सितंतर दिन संथारो सलेखणा, रहयो दिन दिन इधक हुलास॥
(नगां सती गु० व० ढ़ा० १ गा० २३ से २६)

२. संजम पाल्यो छै हो सूधी रीत सूं, जुगत सू जाझो वरस वावीस॥
(नगा सती गु० व० ढा० १ गा० ३०)

अन्त मे सलेखना एवं १० दिन का अनशन कर सं० १८६६ वैशाख शुक्ला १३ गुरुवार को देवगढ में पडित मरण प्राप्त किया।

साध्वी श्री के अनशन आदि का अन्य स्थानो मे भी उल्लेख मिलता है :—

सती नगी सुरगढ़ संथारो, ए वणैरामजी री भगनी।
भिक्षु पछै ए त्रिहुं अज्जा, परभव पहुंनी शुभलगनी।।

(शासन विलास ढा० २ गा० २३)

.... नगांजी सथारो देवगढ़ ठायो।
बंधव साज दियो कीधी भगती, समरो हरखै मन मोटी सती।।

(सतगुणमाला—पडित मरण ढा० ३ गा० ६)

ए तीनूं[1] भीक्खू पछै, सथारा कर सार।
महियल मोटी महासती, पांमी भव नो पार।।

(भिक्षुजशरसायण ढा० ५२ दो० ६)

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० ३ गा० ३१ मे भी ऐसा ही उल्लेख है।

४. साध्वी श्री के अनशन के समय फौजो के अनेक उपद्रव खड़े हुए, जिससे गांव के लोगों मे भारी चिन्ता छा गई। लेकिन तपस्विनी के तप. प्रभाव से वे जल बुद्बुद् की तरह स्वय विलीन हो गये और वडा शान्त वातावरण रहा।[2]

५. संलेखना और सथारे के समय तपस्विनी साध्वी को सहयोग देने वाली पांच साध्विया थी—१. अग्रगामिनी साध्वी हीरांजी (२८), २. कुशालांजी (५०) 'पाली, ३. कुशालांजी (६१) 'जीलवाडा', ४. कुन्नणांजी (६२) 'केलवा', दोलांजी (६३) 'काकरोली'। सभी ने वडी तन्मयता से सेवा की।[3] अन्तिम वर्ष साध्वी नगाजी साध्वी हीराजी के सिंघाड़े मे होने से लगता है कि हीरांजी का सिंघाडा होने के वाद वे उनके भी साथ रही।

६. साध्वी श्री के गुण वर्णन की तत्कालीन रची हुई एक ढ़ाल मिलती है उसके पांच दोहे और गाथाए हैं। रचनाकाल स० १८६६ है। रचयिता के

---

१. साध्वी श्री वगतूजी (२७), हीरांजी (२८), नगांजी (२६)।

२. विचे फद उठाया हो फोजां रा घणां, आरत करै नर नार।
पिण तपसण पुन हो तीखां घणा, ते पिण साता हुई श्रीकार।।
(नगां सती गु० व० ढ़ा० १ गा० २६)

३. संवत् अठारै छासटे समै वड़ा हीराजी हाजर विचार।
कुशलाजी दोनूं कुनणा दोलांजी, सतियां सेवा कीधी श्रीकार।।
(नगां सती गु० व० ढा० १ गा० ३२)

नाम का उल्लेख नहीं है परन्तु रचनाकार ने साध्वी श्री की पुण्य स्तुति में उनकी वीर रस भरी महत्ता को वड़े मार्मिक शब्दो मे अभिव्यक्त किया है। पढ़िये निम्नोक्त पद्य:—

नगांजी निरमल करी, करणी इधक करूर।
सांभलताई सुख लहै, जे हुवै वैरागी सूर॥

वीर थकां हो मुनिवर वड़ वड़ा हुवा, सूरा सुभट अणगार।
त्यांने नैणा न निरख्या हो सत सती तणो, देख्यो प्रत्यक्ष पांचमें आर॥

जो चोथो आरो हुवै चतुर नरां, अल्प कर्म हुवै एहवा जीव।
जो केवल पांमै ने सिद्ध हुवै सासता, यां दीधी मुगत री नींव॥

(नगां सती गु० व० ढा० १ दो० १ गा० २७, २८)

३०. साध्वी श्री अजबूजी (रोयट)

(संयम-पर्याय सं० १८४४-१८८८)

छप्पय

'अजबू' गण-उद्यान की लता बनी फलवान।
खुशबू फैलाती गई गाती मंगल गान।
गाती मंगल गान बुआ 'जय' की कहलाई।
शिष्या बन सुविनीत भिक्षु की शिक्षा पाई।
धर्म वृद्धि परिवार में तव से हुई महान्[1]।
अजबू गण-उद्यान की लता वनी फलवान ॥१॥

पापभीरुता नम्रता विनय भक्ति सुविशेष।
बढ़ी ज्ञान के क्षेत्र में कर-कर यत्न हमेश।
कर-कर यत्न हमेश भरा साहस नस-नस मे।
तप में भी गतिशील हुई रम समता-रस में।
शोभा फैली सघ में मिला अग्रणी स्थान[2]।
अजबू गण-उद्यान की लता बनी फलवान ॥२॥

विचरी सरिता की तरह करती पर उपकार।
हित वर्धक उपदेश दे भरती सत् संस्कार।
भरती सत् संस्कार ग्राम रोयट पहुंचाई।
कल्लू को दे वोध त्याग की दवा वताई।
स्वस्थ हुआ सुत शीघ्रतर रहा न आर्त्तध्यान[3]।
अजबू गण-उद्यान की लता वनी फलवान ॥३॥

प्रेरित किया स्वरूप को दे उपदेश उदार।
चंद क्षणों में कर दिया दीक्षा हित तैयार।

दीक्षा हित तैयार दलाली लाभ लिया है[४]।
कल्लू को सहयोग शेष में बड़ा दिया है[५]।
दो बहनों को दे दिया दीक्षा का वरदान[६]।
अजबू गण-उद्यान की लता बनी फलवान ॥४॥

दोहा

नगरी मालव प्रान्त में, उज्जयिनी विख्यात।
क्षेत्र निकाला है नया, कर प्रयास दिन रात ॥५॥

साल अठतर में वहां, करके वर्षाकाल।
भेंट सहित नृप-नगर में, भेंटे भारीमाल[७] ॥६॥

अनशन करके अंत में, खींच लिया सब सार।
आराधक पद पा गई, उतर गई भव पार[८] ॥७॥

१. साध्वी अजबूजी रोयट (मारवाड़) के आईदानजी गोलेछा की बहन एवं मुनि स्वरूपचंदजी (६२), भीमजी (६३) और जयाचार्य की बुआ थी। उनकी ससुराल भी संभवतः रोयट मे ही थी।

एक बार स्वामी भीखणजी रोयट पधारे तब वहां गोलेछा तथा अन्य परिवार के लोग स्वामीजी के उपदेश से समझे। अजबूजी भी अत्यंत प्रभावित हुई। तत्पश्चात् उत्कृष्ट वैराग्य भावना उत्पन्न होने से उन्होने पति वियोग के पश्चात् सं० १८४४ रोयट मे ही स्वामीजी के हाथ से संयम ग्रहण किया।

साध्वी अजबूजी के प्रसंग से गोलेछा परिवार मे धार्मिक-जागृति अधिकतर हुई[1]।

२. साध्वी श्री साधु-क्रिया मे जागरूक बनी। पाप का भय बहुत रखती। यथासाध्य तप करती एवं अच्छी बड़ी साहसी थी। विनय भक्ति द्वारा उन्होने संघ मे अच्छी शोभा प्राप्त की। ज्ञानाभ्यास कर वे पढ़ी-लिखी साध्वियो की श्रेणी मे आई। सभी तरह से योग्य समझ कर स्वामीजी ने उन्हें अग्रगामिनी बना दिया[2]। (ख्यात)

३. साध्वी श्री एक बार सं० १८६२, ६३ के लगभग रोयट पधारी। वहां अनेक भाई-बहन उनके व्याख्यान मे आते और बडे प्रभावित होते। उनकी भोजाई (आईदानजी की पत्नी) कल्लूजी व्याख्यान मे कम आती थी। साध्वी श्री ने उन्हे

---

१. भीक्खू स्वाम पधारिया, दीधो वर उपदेश।
जीव घणा समझाविया, गोलेचादि विशेष॥
भूआ त्रिण बंधव तणी, अजबू समत अठार।
चमालीसे संजम लियो, आणी हरष अपार॥
तास प्रसंगे धर्म रुचि, गोलेचां रे जाण।
अधिक-अधिक ही आसता, पूरण प्रीत-पिछाण॥

(स्वरूप नवरसो ढ़ा० १ दो० ७ से ९)

ख्यात, शासन-विलास ढा० २ गा० २४ भिक्षुजशरसायण ढा० ५२ दो० १० तथा शासन-प्रभाकर ढ़ा० ३ गा० ३२, ३३ मे भी उनकी दीक्षा आदि का वर्णन है।

२. तब उपदेश दीयै अज्जा रे, जो कारण मिट जाय रे।
जीवतो रहै दिख्या ग्रहै रे, तो मत दीज्यो अंतराय रे॥
त्याग करो बरजण तणा रे, ताम किया प्रच्चखांण रे।
कारण मिट्यो तुरत ही रे, खावण लागो धान रे॥

(स्वरूप नवरसो ढा० १ गा० ६,७)

कम आने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा—'मेरा छोटा पुत्र जीतमल बहुत अस्वस्थ हो गया है जिससे धान भी उसके गले नही उतरता एवं जीवित रहने की आशा भी कम है, इसलिए मन मे बहुत चिंता रहती है और मैं आपकी सेवा का लाभ नही ले सकती।' तब सती अजबूजी ने कहा—'जीतमल ठीक हो जाए और उसका दीक्षा लेने का विचार हो तो तुम मनाह करने का नियम ले लो।' कल्लूजी ने तत्काल त्याग कर दिया। उसके बाद शीघ्र ही जीतमल की बीमारी मिट गई और वह धान खाने लगा। लोग कहने लगे 'यह तो सतों के भाग्य से ही जिन्दा रह पाया है।'

४. सं० १८६२ मे शाह आईदानजी की मृत्यु के पश्चात् कल्लूजी अपने तीनों पुत्रों को लेकर रोयट से किसनगढ़ में आकर रहने लगी। वहां मुनि श्री हेमराजजी के सम्पर्क से धार्मिक भावना उत्तरोत्तर विकसित होती गई। सं० १८६६ के जयपुर चातुर्मास में कल्लूजी अपने पुत्रों के साथ भारीमालजी स्वामी की सेवा में पहुंची। चातुर्मास के बाद आचार्य भारीमालजी का अस्वस्थता के कारण फाल्गुन महीने तक वहां विराजना हुआ। उस समय साध्वी श्री हीरांजी (२८), अजबूजी (३२), हस्तूजी (४५), कस्तूजी (४७) आदि साध्वियां आचार्य श्री की सेवा मे पहुंची। जीतमलजी के दीक्षा लेने के भाव तो पहले हो गये थे। साध्वी श्री अजबूजी ने अपने बड़े भतीजे स्वरूपचन्दजी को संयम लेने के लिए उपदेश दिया। उस समय साध्वी श्री हस्तूजी ने स्वरूपचन्दजी से कहा—'तुम घर में रहने का त्याग कर अपनी बुआ को सुयश दिलाओ।' स्वरूपचन्दजी ने एक महीने के बाद घर में रहने का त्याग किया'।

५. साध्वी श्री अजबूजी के सहयोग से तीनों भाइयों तथा उनकी माता

---

१. सरूपचंद नैं चरण रो रे, दै अजबू उपदेश।
विविध प्रकार करी तदा रे, वारु रीत विशेष॥
इतरे हस्तु महासती रे, वचन वदै सुविचार।
दै जश तू भूआ भणी रे, कर बंधो इह वार॥
वचन सुणी सतियां तणा रे, चढिया अति परिणाम।
ततक्षण त्याग किया तदा रे, मास आसरै आम॥

(स्वरूप नवरसो ढ़ा० ३ गा० १३ से १५)

स्वरूप नवरसा ढ़ा० ३ गा० ८ से १५, जय सुयश ढ़ा० ४ गा० ३ से ५ तथा ऋपिराय सुजश ढ़ा० ६ गा० १ से ६ मे उक्त वर्णन विस्तार पूर्वक है। ऋपिराय सुजश में लिखा है कि स्वरूपचंदजी ने डेढ महीने बाद घर में रहने का त्याग किया।

कल्लूजी (७४) ने सं० १८६९ पौष सुदि ९ से फाल्गुन वदि ११ तक डेढ़ महीने की अवधि मे दीक्षा ले ली। कल्लूजी को दीक्षित कर आचार्य श्री भारीमालजी ने साध्वी श्री अजवूजी को सौप दिया[1]।

साध्वी श्री कल्लूजी साध्वी अजवूजी के साथ अन्त तक यानी सं० १८८७ तक रही। शेष मे साध्वी कल्लूजी ने घोर सलेखना तप किया तव साध्वी अजवूजी ने उन्हे वड़ा सहयोग दिया। साध्वी कल्लूजी सं० १८८७ सावन सुदि १३ को खेरवा मे एक प्रहर के सागारी अनशन से उनके सान्निध्य मे दिवगत हो गई। साध्वी ककूजी (११३) उस समय साध्वी अजवूजी के साथ थी। उन्होने भी साध्वी कल्लूजी की अच्छी सेवा शुश्रूषा की[2]।

६. साध्वी श्री ने सं० १८७२ मे पश्चिम थली (जसोल वालोतरा के तरफ) की अमियाजी (८९) और सं० १८८३ चैत्र शुक्ला १० को साध्वी श्री ककूजी (११३) 'आहेड़' को उदयपुर मे दीक्षा दी, ऐसा उनकी ख्यात मे लिखा है।

७. साध्वी श्री की ख्यात मे लिखा है कि वे सिंघाडवंध होकर वहुत देशो में विचरी। मालव प्रान्त मे उज्जैन क्षेत्र निकाला तथा और भी वहुत उपकार किया।

प्रश्नोत्तर सवन्धी एक पत्र (छोगजी, चतुर्भुजजी के प्रश्नो के उत्तर का जो 'ख्यात' की पुस्तक मे है) मे लिखा है कि साध्वी अजवूजी ने सं० १८७८ का चातुर्मास उज्जैन मे किया। वहा से मृगसर वदि १ को विहार कर माघ वदि ८ के दिन राजनगर में आचार्य श्री भारीमालजी स्वामी के दर्शन किये एव उज्जैन से लाया हुआ कपडा और कागजों का वंडल (फिरगी पाठा) भेट किया।

भारीमाल चरित्र ढ़ा० ९ गा० ५, ६ मे भी इसका वर्णन है.—

मालव देस थी आई आरजियां, कपड़ों पूज नै आंण देखायो।
उपगार धर्म री वातां करै छै, दर्शन करै पूज रा चित लायो॥

---

१. समणी अजवूजी नै सूंपियां, सती कलूजी अति सुखकार।
(जय सुजश ढ़ा० ४ गा० १९)

२. सती कलूजी करी सलेखना, अजवूजी पै आछी जी।
तन मन सेती सेव करी अति, सती कंकूजी साचीजी॥
(कंकूजी सती गुण वर्णन ढ़ा० १ गा० ५)

आयु अचिन्त्यो आवियो, सागारी संथार।
अजवूजी उचरावियो, आसरै पोहर उदार॥
(स्वरूप विलास ढा० ४ दो० १०)

साध्वी कल्लूजी की सलेखना के कारण साध्वी का अजवूजी का सं० १८८६ का भी चातुर्मास अनुमानतः खेरवा में था।

पाठा फिरंगी रा चोखा घणा छै, ते श्रावकां कनें जांच नै लाया ।
पाठा खोल चोड़ा कर त्यांनै, ते पिण पूज नें आण देखाया ॥

सं० १८७८ मे मुनि गुलावजी (५३) का ७ साधुओं से उज्जैन के उपनगर नयापुरा मे चातुर्मास हुआ था। (देखें वर्णन गुलावजी का) साध्वी श्री का चातुर्मास सभवत· उज्जैन शहर मे हुआ, ऐसा प्रतीत होता है ।

मुनि श्री वैणीरामजी (२८) ने जव स० १८७० सर्वप्रथम मालव प्रान्त निकाला अर्थात् तेरापथ की श्रद्धा का बीजारोपण किया और उज्जैन में चातुर्मास किया था। तव प्रश्न होता है कि अजबूजी की ख्यात मे ऐसा क्यो लिखा गया कि उन्होने उज्जैन क्षेत्र को निकाला । इसका तात्पर्य यही लगता है कि आठ वर्ष की दीर्घ अवधि मे धर्म-प्रेरणा के अभाव मे वहां के लोग शिथिल हो गये होगे और उन्हे साध्वी अजबूजी ने सुदृढ़ वनाया होगा ।

८. साध्वी श्री ने स० १८८८ मे अनशन पूर्वक समाधि मरण प्राप्त किया.—

सरूप भीम वर जय गणपति नी, भूआ भद्र नाम अजवू ।
चरण चोमाले वर्ष अठयास्ये, अणसण तास ज्ञान गजवू ॥

(शासन-विलास ढ़ा० २ गा० २४)

शासन प्रभाकर—भिक्षु सती वर्णन ढा० ३ गा० ३४ मे उक्त उल्लेख है ।

ख्यात तथा भिक्षुजशरसायण ढ़ा० ५२ दो० १० में अनशन का उल्लेख नही है ।

३१. साध्वी श्री पन्नांजी (सिरियारी)

(दीक्षा सं० १८४४ और १८४८ के बीच, स्वर्ग सं० १८६० और १८६८ के बीच—भारीमाल युग में)

गीतक-छन्द

शहर सिरियारी प्रमुख की वासिनी 'पन्नां' सती।
भिक्षु गण में हुई दीक्षित भावना भर बलवती[1]।
अटल होकर आत्मबल से साधना की है सबल।
अन्त में कर ग्रहण अनशन कर लिया जीवन सफल[2] ॥१॥

१. साध्वी श्री पन्नांजी सिरियारी (मारवाड़) की वासिनी थी। उन्होंने पति वियोग के पश्चात् दीक्षा स्वीकार की। (ख्यात)

उनका दीक्षा वर्ष ख्यात आदि मे नही है। उनके पूर्व की साध्वी श्री अजवूजी (३०) का दीक्षा संवत् १८४४ और वाद की साध्वी रूपांजी (३७) की दीक्षा स० १८४८ की है अतः पन्नांजी, लालाजी (३२), गुमानांजी (३३), खेमांजी (३४), जसूजी (३५), और चोखांजी (३६) का दीक्षा वर्ष सं० १८४४ और १८४८ के बीच ठहरता है।

२. साध्वी श्री ने वहुत वर्ष साधुत्व का पालन किया। अन्त मे अनशन कर अपना कार्य सिद्ध किया[1]। (ख्यात)

उनका स्वर्गवास संवत् ख्यात आदि में नही मिलता पर निम्नोक्त उल्लेखो से जो निष्कर्ष निकलता है वह इस प्रकार है :—

(१) स० १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लेखपत्र (सामूहिक सं० ७) मे उनके हस्ताक्षर नही है। संभवत. वे उस समय उपस्थित नही थी।

(२) स० १८६० भाद्रव शुक्ला १३ को स्वामीजी के स्वर्गवास के पश्चात् विद्यमान २७ साध्वियो मे उनका नाम है।

(३) स० १८७९ भाद्रव शुक्ला ७ के दिन जयाचार्य द्वारा रचित—संतगुण-माला—पंडित मरण ढा० २ गा० ७ मे स्वामीजी और भारीमालजी के समय तक दिवगत साध्वियो मे उनका नाम है।

'पनांजी सथारो······।'

(४) स्वामीजी के स्वर्ग प्रस्थान के वाद मुनि डूगरसीजी (४३) के संथारे [स० १८६८ जेठ सुदि ७] तक १८ सथारे हुए। उनमे समीक्षानुसार इनके नाम की गणना की गई है (समीक्षा देखे साध्वी कुशालांजी (५०) के प्रकरण मे।)

इन सब उल्लेखो से उनका स्वर्ग समय स० १८६० भाद्रव शुक्ला १३ के पश्चात् और स० १८६८ जेठ सुदि ७ के पूर्व ठहरता है।

---

१. सिरियारी ना महासती, पनांजी पहिछाण।
संजम पाल्यो स्वाम गण, संथारो सुविहांण॥
(भि० ज० र० ढ़ा० ५२ दो० ११)

सैहर सिरियारी ना वासी, वर सतिय पन्नांजी सुखकारी।
सथारो कर कार्य सारचा, हद भिक्षु गण हितकारी॥
(शासन विलास ढ़ा० २ गा० २५)

शासनप्रभाकर ढ़ा० ३, गा० ३५ में भी उक्त उल्लेख है।

३२. श्री लालांजी (कांकडोली)

(दीक्षा सं० १८४४ और १८४८ के बीच, १८५२ के बाद
भिक्षु समय में गणबाहर)

रामायण-छन्द

ग्राम काँकरोली की 'लालां' हो पाई गण में दीक्षित[1]।
समयान्तर से चली गई घर शीत रोग से हो पीड़ित।
रही श्राविका वह वर्षों तक करती तप जप आदि उदार।
नहीं लिया है चरण दुबारा सुन्दर दिल के रहे विचार[2] ॥१॥

१. लालाजी कांकडोली (मेवाड़) की थी। वे पति वियोग के वाद सं० १८४४ और १८४८ के वीच दीक्षित हुई।

(ख्यात)

२. वे कुछ वर्षों वाद शीतांग[1] के कारण वापस घर चली गई। घर जाने के वाद उन्होंने श्रावक व्रत का पालन कर अपना जीवन जप तपमय विताया। फिर दूसरी वार चारित्र नही ले सकी।[2]

उनके गणवाहर होने का सवत् नही मिलता पर स. १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लेखपत्र (सामूहिक सं० ७) मे उनके हस्ताक्षर हैं और स्वामीजी के स्वर्ग-वास के समय विद्यमान २७ साध्वियो में उनका नाम नही है अतः सं० १८५२ के वाद स्वामीजी के समय मे वे गणवाहर हुई।

---

१. सन्निपात—चित्त विभ्रमता होने से पागल की तरह सुधवुध रहित होना।

२. कांकरोली री कहाय रे, लालांजी संजम लियो।
परवस सीत सुपाय रे, इण कारण गृह आविया।।
वहु वरसां सुविचार रे, श्रावक धर्मज साधियो।
तप जप कियो उदार रे, फिर चारित्र नही पचखियो।।

(भि० ज० र० ढ़ा० ५२ सो० १२, १३)

कांकरोली रा ताय रे, लाला चारित्र आदरी।
शीत वसे गृह आय रे, वर्ष वहु श्रावक पणुं।।

(शासन विलास ढ़ा० २ सो० २६)

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढ़ा० ३ सो० ३६ में ऐसा ही उल्लेख है।

३३. साध्वी श्री गुमानांजी (तासोल)

(दीक्षा सं० १८४४ और १८४८ के बीच, स्वर्ग सं० १८६० और १८४८ के बीच—भारीमाल युग में)

छप्पय

थी 'तासोल' निवासिनी सती 'गुमांना' नाम।
'जीव' व्रती की मां वड़ी वड़ा कर गई काम।
वड़ा कर गई काम धाम में आ संयम के।
पाई सुख हरयाम भिक्षु-शासन में रम के[१]।
प्रकृति भद्रता आदि से पाई सुयश ललाम।
थी तासोल निवासिनी सती गुमांना नाम ॥१॥

उपवासादिक से चली चढ़ी मास तक एक[२]।
अनशन कर दो मास का वड़े लिख गई लेख।
वड़े लिख गई लेख 'भिक्षु-वोधिस्थल' नामी।
वना लिया प्रोग्राम वहां से सब आगामी।
समाधिस्थ हो भाव से चली गई सुरधाम[३]।
थी तासोल निवासिनी सती गुमांना नाम ॥२॥

१. साध्वी श्री गुमानाजी तासोल (मेवाड़) की वासिनी और मुनि जीवोजी[1] (४६) की वड़ी मां (वडिया, ताई) थी। उनकी जाति ओसवाल और गोत्र वरड़या (वरडिया) वोहरा था। उन्होंने पति वियोग के वाद सं० १८४४-४८ के वीच संयम ग्रहण किया।[2]

(ख्यात)

२. साध्वी श्री ने प्रकृति-सरलता, लज्जाशीलता आदि गुणों से संघ में अच्छी शोभा प्राप्त की। उपवास, वेला आदि से मासखमण तक का तप किया।

(ख्यात, शासनप्रभाकर ढ़ा० ३ गा० ३८)

३. साध्वी श्री ने अन्त मे वड़े आग्रह से दो महीनों का अनशन कर राजनगर मे समाधि पूर्वक पडित मरण प्राप्त किया।

ग्राम तसोल तणी ग्रही चारित्र, राजनगर में जशवंती।
छेहडै दोय मास करि अणसण, भद्र गुमानां गुणवंती॥

(शासन-विलास ढा० २ गा० २७)

एक मास कियो अति भारी, दोय मास छेहडै दिलधारी।
सुध राजनगर संथारो, सती सरल भद्र सुखकारो॥

(भि० ज० र० ढ़ा० ५२ गा० २)

ख्यात तथा शासनप्रभाकर ढ़ा० ३ गा० ३८ मे भी ऐसा ही उल्लेख है किन्तु सतगुणमाला-पडित मरण ढ़ा० २ गा० ७ से ऐसी झलक निकलती है कि उन्होंने राजनगर मे पानी के आगार से दो महीनो की तपस्या करके सथारा किया—

'पनांजी संथारो, गुमानांजी भारी, दोय मास किया पाणी आगारी।
राजनगर संथारो कियो गुणवंती, समरो मन हरखे मोटी सती॥'

लेकिन उक्त पडित-मरण ढाल के अतिरिक्त सभी कृतियो मे दो महीनों के संथारे का स्पष्ट उल्लेख है अत: उसे मान्य किया गया है।

---

१. मुनि जीवोजी की दीक्षा उनके वाद सं० १८५७ में हुई।

(जीवोजी की ख्यात)

२. गुमानां महा गुणवती, तासोल तणी चित सती।
जीवा मुनि री वड़ी मां जांणी, सती सजम लियो सुखदांणी॥

(भि० ज० र० ढ़ा० ५२ गा० १)

शासन विलास ढ़ा० २ गा० २७ तथा शासनप्रभाकर ढ़ा० ३ गा० ३७ मे भी उक्त वर्णन है।

सं० १८६० भाद्रव शुक्ला १३ को स्वामीजी के स्वर्ग-प्रयाण के बाद विद्यमान २७ साध्वियों में उनका नाम है तथा स्वामीजी के स्वर्गवास के पश्चात् मुनि श्री डूंगरसीजी (४३) के सथारे (सं० १८६८ जेठ सुदि ७) तक १८ संथारे हुए। उनमें समीक्षानुसार उनके नाम की गणना की गई है। (देखें समीक्षा साध्वी कुशालांजी (५०) के प्रकरण मे) अतः वे स. १८६० भादवा सुदि १३ के पश्चात् और १८६८ जेठ सुदि ७ के पूर्व दिवंगत हुई, ऐसा प्रतीत होता है।

लेखपत्रों मे उनसे सबंधित कुछ उल्लेख मिलते है।

स. १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लेखपत्र (सामूहिक सं० ७) मे उनके हस्ताक्षर हैं।

स. १८५२ के व्यक्तिगत लेखपत्र सं० २४ मे लिखा है कि चन्दूजी (१३) और धन्नांजी (१६) के बहकावे मे आकर वीरांजी (४२) ने गुमानांजी को बहुत बुरे शब्द कहे तथा उनके अवगुणवाद भी बोले पर गुमानांजी ने समभावों से सब सहन किया और अपनी निर्दोषता प्रमाणित की।

सं. १८५५ जेठ वदि ६ को स्वामीजी ने साध्वी मैणांजी (१५) और धन्नांजी (१६) को एक पत्र (लेखपत्र व्यक्तिगत सं० २७) दिया। उसमें उन्होंने साध्वी गुमानांजी और फूलाजी (२२) का भी उल्लेख किया है। उस पत्र मे साध्वी मैणांजी और धन्नांजी को गुमानांजी और फूलांजी के कथनानुसार गोचरी करने का निर्देश था तथा और भी कई आदेश थे।

३४. साध्वी श्री खेमांजी (बूंदी)

(दीक्षा सं० १८४४ और १८४८ के बीच, स्वर्ग सं० १८६०
और १८६८ के बीच—भारीमाल युग में)

दोहा

खेमां बूंदी वासिनी, कुल सरावगी ज्ञेय।
संयम लेकर के सती, बन पाई श्रद्धेय[1] ॥१॥

शहर खेरवा में किया, संथारा स्वीकार।
क्षेम कुशल से पा लिया, भव सागर का पार[2] ॥२॥

१. साध्वी श्री खेमांजी बूदी (हाडोती) की वासिनी और जाति से सरावगी थी। उन्होने पति वियोग के बाद स० १८४४ और १८४८ के बीच चारित्र ग्रहण किया।[1]

(ख्यात)

भिक्षुयशरसायण ढ़ा० ५२ गा० ३ तथा शासन प्रभाकर ढा० ३ गा० ४० में भी उक्त उल्लेख है।

२. साध्वी श्री यथानाम तथागुण की उक्ति को चरितार्थ करने वाली अर्थात् क्षेम-कुशल करने वाली थी। उन्होने अनेक वर्ष साधु-पर्याय का पालन किया और खेरवा मे अनशन कर आराधक पद प्राप्त किया।[2]

(ख्यात)

उनका स्वर्गवास-संवत् नही मिलता पर स्वामीजी के स्वर्गवास के समय विद्यमान २७ साध्वियों मे उनका नाम है तथा स्वामीजी के स्वर्गवास के बाद मुनि डूगरसीजी (४३) के संथारे (स० १८६८ जेठ सुदि ७) तक १८ संथारे हुए। उनमें समीक्षानुसार उनके नाम की गणना की गई है। (देखे समीक्षा साध्वी कुशलांजी (५०) के प्रकरण मे) अतः उनका स्वर्गवास स० १८६० भादवा सुदि १३ के पश्चात् और सं० १८६८ जेठ सुदि ७ के पूर्व हुआ, ऐसा प्रतीत होता है।

सं० १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लेखपत्र (सामूहिक सं० ७) में उनके हस्ताक्षर न होने का कारण उनकी अनुपस्थिति ही मालूम देता है।

---

१. जाति श्रावगी सैहर बूदी ना, संजम धारयो सत्यवती।

(शासन विलास ढ़ा० २ गा० २८)

२. सैहर खैरवा मे संथारो, खेमकरण खेमाज हुंती।

(शासन विलास ढ़ा० २ गा० २८)

खेमांजी संथारो कियो खत करी।

(संत गुणमाला-पंडित मरण ढा० २ गा० ८)

भिक्षुयशरसायण ढा० ५२ गा० ३ तथा शासनप्रभाकर ढ़ा० ३ गा० ४० मे भी उक्त उल्लेख है।

३५. श्री जसूजी (कांकड़ोली)

(दीक्षा सं० १८४४ और १८४८ के बीच, १८५२ के पूर्व गणबाहर)

दोहा

'जसू' चरण लेकर बनी, जूं परिषह से ग्लान।
गण से बाहर हो गई, छोड़ा संयम-स्थान[१] ॥१॥

१. जसूजी कांकड़ोली (मेवाड़) की वासिनी थी। वे पति वियोग के बाद सं. १८४४ और १८४८ के बीच दीक्षित हुई। लेकिन जूं के परिषह से घबरा कर संघ से पृथक् हो गई।[1]

(ख्यात)

ख्यात आदि मे उनके गण से अलग होने का संवत् नही है पर १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लेखपत्र (सामूहिक सं० ७) मे उनके हस्ताक्षर नही हैं इससे अनुमान किया जाता है कि वे उससे पहले ही गण से बाहर हो गई।

---

१. जूं परिषह थी जाण रे, छूटी जसू छिनक में।

(भि० ज० र० ढ़ा० ५२ अंतर्गत सो० १)

जसू चरण ग्रही सार रे, छूटी जूं परिषह थकी।

(शासन विलास ढ़ा० २ सो० २९)

३६. श्री चोखांजी (कांकड़ोली)

(दीक्षा सं० १८४४ और १८४८ के बीच, १८५२ के पूर्व गणबाहर)

सोरठा

'चोखां' ने चारित्र, पाया शुभ संयोग से।
लेकिन धुंधला चित्र, कर्म योग से हो गया ॥१॥

कठिन प्रकृति कमजोर, पालन में आचार के।
जिससे रास्ता और, लिया सघ को छोड़ के' ॥२॥

१. चोखांजी कांकड़ोली (मेवाड़) की वासिनी थी। वे पति वियोग के बाद सं० १८४४ और १८४८ बीच दीक्षित हुई। लेकिन प्रकृति कठोरता एवं आचार शिथिलता के कारण गण से पृथक् हुई[1]।

(ख्यात)

ख्यात आदि मे उनके गण से अलग होने का संवत् नही मिलता लेकिन सं० १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लेखपत्र (सामूहिक सं० ७) मे उनके हस्ताक्षर नही हैं इससे लगता है कि वे उससे पहले ही संघ से पृथक् हो गई।

---

१. चोखी टली पिछाण रे, कांकड़ोली री विहुं कही।

(भि० ज० र० ढा० ५२ अन्तर्गत सो० १)

चोखा निकली वार रे, ए विहुं काकडोली तणी।

(शासन-विलास ढ़ा० २ सो० २६)

शासनप्रभाकर भिक्षु सतीवर्णन ढ़ा० ३ सो० ४१ में ऐसा ही उल्लेख है।

३७. साध्वी श्री रूपांजी (रावलियां)

(संयम पर्याय सं० १८४८-१८५७)

दोहा

श्रीजीद्वारा जन्म-भू, रावलियां ससुराल।
संत सतयुगी योग से, 'रूपां' हुई निहाल ॥१॥

बढ़ी भावना धर्म की, जाग उठा वैराग्य।
घर वाले प्रतिकूल पर, बना सहायक भाग्य ॥२॥

छप्पय

चमत्कार को कर रहा नमस्कार संसार।
'रूपां' दीक्षा-समय में सूक्ति हुई साकार।
सूक्ति हुई साकार स्वजन सब हुआ अपूठा।
दी बंधन में डाल पुण्य से खोड़ा टूटा।
भीड़ 'रावला' में लगी मुख-मुख जय-जयकार।
चमत्कार को कर रहा नमस्कार संसार ॥३॥

सहयोगी राणा बने सहयोगी सरकार।
सहयोगी पुर-जन बने सहयोगी परिवार।
सहयोगी परिवार मिली है सबको शिक्षा।
रूपां को तत्काल भिक्षु ने दी है दीक्षा।
घर-घर मंगल छा रहा आया ज्यों त्यौहार।
चमत्कार को कर रहा नमस्कार संसार ॥४॥

वय से पन्द्रह वर्ष की पति सुत आदिक छोड़।
खिलते यौवन में लिए तार विरति से जोड़।

तार विरति से जोड़ पूर्व दीक्षित गुरु भ्राता।
रायचंद भानेज कुशालां उनकी माता।
मिले एक परिवार के गण में मंगल चार।
चमत्कार को कर रहा नमस्कार संसार ॥५॥

दोहा

प्रथम केशलुंचन किया, रंगू ने तत्काल।
हीरां के सान्निध्य में, रह पाई खुशहाल[1] ॥६॥

छप्पय

करके तप जप साधना भरके भाव अनूप।
नव वर्षों की अवधि में रोपा कीर्ति-स्तूप।
रोपा कीर्ति-स्तूप साल आया सत्तावन।
साहस धर सोत्साह किया है अनशन पावन।
पुर सिरियारी से चली देखा सुरपुर-द्वार[2]।
चमत्कार को कर रहा नमस्कार संसार ॥७॥

१. साध्वी श्री रूपाजी नाथद्वारा (मेवाड़) के भोपाशाह सोलंकी की पुत्री, मुनि श्री खेतसीजी (२२) और साध्वी श्रीकुशालांजी (४६) की छोटी वहन तथा आचार्य श्री रायचदजी की मौसी थी। उनकी माता का नाम हरुजी थी। उनके एक वड़े भाई हेमराजजी और थे। रूपांजी का विवाह रावलिया (मेवाड) मे किया गया था[1]।

२. मुनि खेतसीजी (सतयुगी) स० १८३८ चैत्र शुक्ला १५ को दीक्षित हो गये थे। उनके प्रयास से रावलिया मे अच्छी धर्म-जागृति हुई। उनके वहन-वहनोई आदि गाव के लोग दृढ श्रद्धालु वने[2]।

मुनि श्री खेतसीजी के सयोग से वहन रूपाजी के दिल में वैराग्य भावना जागृत हुई। उस समय उनकी आयु लगभग १५ वर्ष की थी। उनके एक छोटा पुत्र एक डेढ साल का था। उन्होने दीक्षा की अनुमति मागी तव पति आदि सभी घर वाले इन्कार हो गये। स्थानकवासी होने से उनका कहना था कि दीक्षा अपनी सम्प्रदाय मे लो, तेरापथ मे नही। रूपाजी स्वामीजी के सघ मे दीक्षित होना चाह रही थी। इसी कारण से कुछ दिन खीचातानी चली। फिर परिवार वालो ने 'रावला' मे ले जाकर उनका पैर खोड़े मे डलवा दिया और ताला लगाकर उसे वद कर दिया[3]।

वे इक्कीस दिन खोड़े मे रही। इस दारुण कष्ट को उन्होंने वड़े समभाव और धैर्य के साथ सहन किया। दृढ आस्था से भिक्षु स्वामी का तन्मयता पूर्वक

---

१. श्रीजीदुवारा सैंहर मे, ओसवंस अभिधान।
भोपोसाह तिहा वसैं, जाति सोलकी जान॥
सुदर 'हरु' सुहांमणी, अगज अधिक उदार।
नाम खेतसी निरमलो, सोम प्रकृति सुखकार॥
हेम सहोदर निरमल हिया तणो, वहिन उभय वुद्धिवान।
खुसालाजी रूपाजी दिल खुसी, जुग लघु भगनी जान॥
रावलिया व्याही विहु रग सू, सैणी महा सुखदाय।
'साल रूख परिवार सुसाल' नों, अधिक मिल्यो जोग आय॥
(सतयुगी चरित्र ढ़ा० १ दो०२, ३ गा० ६, ७)

२. वहिन वैनोई आदि वहु थया, प्रिय दृढ़धर्मी पेख।
धर्म वृद्धि रावलिया मे धुर थकी, वपराई सुविसेख॥
(सतयुगी चरित्र ढा० १ गा० १०)

३. खोड़ा उस युग का एक लड़की का वेडा था। उसमे पैर डालकर ताला लगा दिया जाता था, जिससे कैदी स्वेच्छा पूर्वक कही घूम फिर न सके।

स्मरण करती रही। उसके वाद उनके सौभाग्य से खोड़ा अपने आप टूट गया। अचानक खोड़ा टूटने की आवाज सुनकर आरक्षकों ने दौड़कर अधिकारियों को सूचित किया। ठाकुर साहब और गांव के पंच वहां आये। घर के अगुआ भी पहुचे। देखते-देखते रावलियां मे भीड़ लग गई। एक घुड़सवार गोगुंदा (मोटा गांव) भेजा गया। समाचार मिलते ही रावजी गोगुंदा से रावलियां पहुचे। एक प्यादा (सदेशवाहक) सदेश लेकर उदयपुर महाराणा भीमसिहजी के पास भेजा गया, उसने सारी हकीकत कही। महाराणा सुनकर आश्चर्यचकित हुए और उन्होने तत्काल शुभकामना व्यक्त करते हुए सौहार्द पूर्वक एक पत्र लिखकर उसे दिया। वह वापस गोगुदा पहुचा और उदयपुर महाराणा द्वारा प्रदत्त पत्र प्रस्तुत किया।

उस पत्र की प्रतिलिपि इस प्रकार है :—

श्री एकलिंगजी

श्री नाथजी वाणनाथजी

'वेगा थी वेगा जिण जायगां अणी सती रो मन व्है साधपणो लेवा दो। असी सती री दीखा मे वेधो घालणो नही। अपरच महाराणा भीमसिंह री तरफ थी सती माता नै कैंहवा मे आवै के म्हारै नाम री एक माला वत्ती फेरसी। जिण थी मेवाड़ री प्रजा मे सुख चैन रैसी। वत्ती काई लकूं'।

पत्र पढकर सभी वहुत प्रसन्न हुए फिर रावलिया तथा गोगुंदा के रावजी ने रूपांजी को सम्मान पूर्वक उनके घर पहुचाया। गांव के पच, रूपाजी के अभिभावक तथा सारी जनता इस चामत्कारिक घटना से अत्यधिक प्रभावित हुई। मुख-मुख पर सती के यशोगान व जय-जयकार की ध्वनियां गूजने लगी[1]।

जयाचार्य ने उक्त सदर्भ मे लिखा है :—

दिख्या लेतां आज्ञा दोहरी आई, न्यातीला घाल्या खोड़ा मांही।
आसरे दिन इकवीस तांई ॥
खोड़ो तूटो है पुन्य प्रमांणो, जग जश विस्तरियो जांणो।
करै गुण उदियापुर रांणो ॥
(खेतसी चरित्र ढ़ा० ८ गा० ५,६)

ख्यात, शासन विलास ढ़ा०२ गा० ३० की वार्तिका तथा शासन प्रभाकर-भिक्षु सती वर्णन ढा० ३ गा०४२ से ४५ मे ऐसा ही उल्लेख है।

---

१. मुनि सागरमलजी द्वारा लिखित निवंध के आधार से 'युवादृष्टि' वर्ष २ अक ७।

पति आदिक पारिवारिक जनों की आज्ञा मिलने के वाद उन्होंने पति तथा एक डेढ़ साल के वालक को छोडकर लगभग १५ वर्ष (नावालिग) की सुहागिन वय मे स्वामीजी के हाथ से रावलिया मे संयम ग्रहण किया[1]।

उनका केश लुंचन साध्वी श्री रंगूजी (२०) ने किया। कुछ समय वे उनके साथ रही ऐसा निम्न पद्य से आभासित होता है :—

वड़ी वहन कुसालांजी सूरी, रंगूजी नी नान्ही (वाल साध्वी) रूड़ी।
सती रूपांजी गुण पूरी ॥
(रूपां सती गु० व० ढ़ा० १ गा०८)

वाद मे स्वामीजी ने उन्हे साध्वी हीरांजी (२८) को सौंप दिया। वे सानंद उनके सान्निध्य मे रहकर अपना विकास करती रही।

उनकी दीक्षा के पश्चात् सं० १८५७ चैत्र शुक्ला १५ को उनकी वड़ी वहन साध्वी कुशालांजी (४६) और भानेज मुनि रायचंदजी की दीक्षा हुई।

२. साध्वी श्री रूपांजी लगभग नौ वर्ष सयम-पर्याय में रही। उन्होने यथा-शक्य तप, स्वाध्याय आदि द्वारा अपना जीवन-निर्माण किया। आखिर सं० १८५७ सिरियारी मे अनशन पूर्वक समाधि मरण प्राप्त किया।

'सत्तावने सिरियारी संथारो।'
(सतयुगी चरित्र ढ़ा०८ गा०७)

खेमांजी संथारो कियो खंत करी, रूपांजी संथारो कर पूरी रली।
खेतसी स्वाम री लघु व्हैन हुंती, समरो मन हरखे मोटी सती ॥
(सतगुणमाला-पंडित मरण ढ़ा० २ गा० ८)

---

१. स्वाम भीखू मिल्या सुखकारो, रूपांजी लियो सजम भारो।
पुत्र पीउ छांड व्रत धारो रे ॥
(सतजुगी चरित्र ढ़ा०८ गा०४)

वरस पनरै आसरै वय जाणी, सुत पीउ छांड़ सुमता आंणी।
सती रूपाजी महा स्यांणी ॥
(रूपां सती गु० व० ढ़ा० १ गा०२)

वाल वय वहु हठ सूं आज्ञा, छांड पुत्र पिउ अघहरणी।
(शासन विलास ढ़ा०२ गा० ३०)

हीरांजी श्रमणी हीरकणी, भल कीरत भारीमाल भणी।
सुखे रहै तस पास रूपां श्रमणी ॥
(रूपां सती गु० व० ढ़ा० १ गा० ६)

ख्यात, भिक्षुयशरसायण तथा शासनप्रभाकर आदि सभी स्थानों मे उनका अनशन सहित स० १८५७ मे स्वर्गवास माना है, परन्तु दीक्षा संवत् कुछ विवादास्पद है :—

स० १८५२ मे दीक्षा ली। (ख्यात)

सजम बावने सधीको, सतावने संथारो नीको।
खुशालांजी री लघु वहिन कहियै, रूपाजी जग जश लहियै॥
(भि० ज० र० ढा० ५२ गा० ५)

इन उल्लेखों मे रूपाजी का दीक्षा सवत् १८५२ है जिससे उनका साधना काल लगभग ५ साल का ठहरता है परन्तु स्वय जयाचार्य तथा अन्य कई लेखको ने उनका संयम-काल नौ वर्षो का माना है :—

नव वर्ष दिक्षा सत्तावने वर्ष अणसण रूपां हद करणी।
(शासन विलास ढ़ा० २ गा० ३०)

नव वर्ष आसरै, पाली संजम भार।
सतावन साले, कियो सखर संथार॥
(शासनप्रभाकर ढ़ा० ३ गा० ४७)

इन उद्धरणो के अनुसार उनकी दीक्षा स० १८४८ मे हुई। साध्वी रूपाजी लगभग नौ वर्ष साधु-पर्याय मे रही।

उक्त प्रामाणो से प्राचीन और जयाचार्य की दीक्षा के भी पूर्व सं० १८६७ चैत्र शुक्ला ७ के दिन 'आउवा' मे रचित—कुशाल सती गुण वर्णन ढा०१ गा० ३९ मे ९ वर्ष चारित्र पालन का उल्लेख है :—

वड़ी वहन कुसालांजी सोभता, लघु वहन रूपांजी धारो जी।
चारित्र पाल्यो नव वर्षां लगैं, सिरियारी मांय सथारो जी॥

इस प्रमाण से और अधिक पुष्टि हो जाती है कि उनकी दीक्षा सं० १८४८ में हुई न कि सं० १८५२ मे।[1] साध्वी विवरणिका तथा सेठिया सग्रह मे दीक्षा सं० १८४८ है जो उक्त निष्कर्ष से सम्मत है।

उनका दीक्षा वर्ष १८४८ मानने से एक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि स० १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लेखपत्र (सामूहिक स० ७) मे उनके हस्ताक्षर क्यो नही ?

---

१. स्वामीजी का सं० १८५२ का चातुर्मास पाली और स०१८५३ का सोजतरोड में था और शेषकाल मे वे मारवाड के क्षेत्रो में ही विहार करते थे। इससे भी सिद्ध होता है कि उनकी दीक्षा सं० १८५२ मे नही हुई।

उस लेख पत्र में उनके बाद की कनिष्ठ साध्वियों के हस्ताक्षर हैं अतः लगता है वे उस समय वहा उपस्थित नही थी तथा अन्य किसी कारण से उनकी लेखपत्र मे सही नही हो पायी।

जयाचार्य ने उनके गुणो का वर्णन करते हुए लिखा है:—

चारित्र इम लीधो चूप धरी, कर्म काटण तपस्या वोहत करी।
समणी रूपांजी महा सुखकरी ।।

निमल भाव अति निकलंको, व्रत पाल आतम मेट्यो वंको।
दियो जीत नगारा नों डंको।

समत अठारै सतावने, परलोक गया धर्म ध्यान धुने।
गुणी जन गुण गावै सुध मने ।।

(रूपां सती गु० व० ढा० १ गा० ५, ६, १०)

३८. साध्वी श्री सरूपांजी (माधोपुर)

(दीक्षा सं० १८४८ और १८५२ के बीच, स्वर्ग सं० १८६०
और १८६८ के बीच—भारीमाल युग में)

रामायण-छन्द

अग्रवाल थी जाति स्वजन की माधोपुर में था ससुराल।
छोड़ तीन सुत चरण लिया है सती 'सरूपां' ने खुशहाल[१]।
बहुत वर्ष संयम में रमकर जन्म सफल कर पाई है।
'भिक्षुनगर' में अनशन करके सुरपुर में पहुंचाई है[२] ॥१॥

१. साध्वी श्री सरूपाजी माधोपुर (ढुंढाड) की निवासिनी और जाति से अग्रवाल थी। उन्होने पति वियोग के बाद तीन पुत्र तथा परिवार को छोड़कर बड़े वैराग्य से चारित्र ग्रहण किया[1]। (ख्यात)

उनका दीक्षा संवत् प्राप्त नही है। उनके पहले की साध्वी रूपाजी (३७) का दीक्षा संवत् १८४८ माना है और उनके बाद की साध्वी वरजूजी (३९) की दीक्षा स० १८५२ मे हुई अतः उनकी दीक्षा स० १८४८ और १८५२ के बीच हुई ऐसा ज्ञात होता है।

स० १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लेखपत्र (सामूहिक सं० ७) मे उनके हस्ताक्षर है इससे प्रमाणित होता है कि उनकी दीक्षा उक्त तिथि से पूर्व हो चुकी थी।

२. उन्होने बहुत वर्ष साधना कर आत्मा को पवित्र बनाया एवं कंटालिया मे अनशन करके समाधि-मरण प्राप्त किया[2]।

उनका स्वर्गवास सवत् नहीं मिलता पर स्वामीजी के स्वर्गवास के बाद विद्यमान २७ साध्वियो मे उनका नाम है तथा स्वामीजो के स्वर्गवास के पश्चात् मुनि डूगरसीजी (४३) के सथारे [यानी सं० १८६८ जेठ सुदि ७] तक १८ संथारे हुए। उनमे समीक्षानुसार उनका नाम गिना गया है अतः उनका स्वर्गवास सं० १८६० भादव सुदि १३ के पश्चात् स० १८६८ जेठ सुदि ७ के पूर्व भारी-मालजी स्वामी के युग मे हुआ, ऐसा प्रमाणित होता है।

सं० १८५४ चैत्र कृष्णा ६ के लेखपत्र मे (व्यक्तिगत स० २६) लिखा है कि साधु-साध्वियो के मन मे साध्वी मैणाजी (१५) के प्रति ऐसी आशंका हुई कि ये गण से पृथक् होगी, इन्होने साध्वी सरूपाजी को फटाकर अपने पक्ष मे कर लिया है।

---

१. छाड़ तीन सुत लीधो चारित्र, माधोपुर ना वसवानं।

(शासन विलास ढा० २ गा० ३१)

भिक्षुयशरसायण ढ़ा० ५२ गा० ६ तथा शासनप्रभाकर ढ़ा० ३ गा०४८ मे भी उक्त उल्लेख है।

२. सैहर कटाल्ये सखर सथारो, सती सरूपां शुभ ध्यान।

(शासन विलास ढ़ा० २ गा०३१)

सरूपाजी सथारो कटाल्ये कीधो।

(सतगुणमाला-पडित मरण ढ़ा० २ गा०९)

भिक्षुयशरसायण ढ़ा०५२ गा० ६ तथा शासन प्रभाकर ढा०३ गा० ४८ में भी उक्त उल्लेख है।

३६. साध्वी श्री वरजूजी (बड़ी पादू)

(संयम पर्याय सं० १८५२-१८८७)

गीतक-छन्द

बड़ी पादू वासिनी बड़भागिनी 'वरजू' सती।
बनी शिष्या भिक्षु गुरु की सुरलता वत् फलवती।
तीन दीक्षा साध्वियों को भिक्षु ने दी साथ में।
उत्तरोत्तर वृद्धि होती सिद्धि जिनके हाथ में[१] ॥१॥

सती 'मैणां' पास में अभ्यास शास्त्रों का किया।
भिक्षु की कर भक्ति हार्दिक स्थान उन्नत पा लिया।
सिघाड़ा उनका किया है तीन वत्सर बाद ही।
विचरती जन-मेदिनी को बोध देती है सही[२] ॥२॥

किया 'रावलियां बड़ी' में बहुत ही उपकार है।
'राय' सुत सह 'कुशालां' को कर लिया तैयार है।
भिक्षु ने आकर वहां पर चरण दोनों को दिया।
कुशालां ने वास वरजू पास में सकुशल किया[३] ॥३॥

सती वरजू गुणवती विज्ञा परम ओजस्विनी।
कृपा से गुरु भिक्षु की वह बनी है वर्चस्विनी।
बढ़ाया सम्मान गण में भिक्षु ने गुण देख के।
योग्यता से व्यक्ति बनता योग्य स्वर्णिम-लेख के[४] ॥४॥

दोहा

चरण कुशालां को दिया, नाथां बीजां संग।
सौंपा उनको भिक्षु ने, शिक्षा हित सोमंग[५] ॥५॥

१. साध्वी श्री वरजूजी वडी पादू (मारवाड़) की वासिनी थी। उन्होंने पति वियोग के वाद स० १८५२ मे साध्वी श्री वीजाजी (४०) और वन्नाजी (४१) के साथ स्वामीजी के कर कमलों से एक दिन वड़ी पादू मे सयम स्वीकार किया[1]।

(ख्यात)

स० १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लेखपत्र (सामूहिक सं० ७) मे उक्त तीनों साध्वियो के हस्ताक्षर है। इससे प्रमाणित होता है कि वे तीनो दीक्षाए उक्त तिथि के पूर्व हो चुकी थी।

२. स्वामीजी ने उक्त तीनो साध्वियो को ज्ञानार्जन के लिए साध्वी मैणांजी (१५) को सौप दिया।

(शासन विलास ढा० २ गा० ३४ की टिप्पण)

साध्वी श्री वरजूजी ने मैणाजी के सान्निध्य मे विद्याभ्यास कर सिद्धान्तो की अच्छी धारणा की[2]। वे सभवतः १८५५ के चातुर्मास तक उनके साथ रही। फिर उनकी विशेष योग्यता को देखकर स्वामीजी ने स० १८५५ में उनका सिंघाडा कर दिया। इस प्रकार दीक्षित होने के लगभग तीन वर्ष पश्चात् ही वे अग्रगण्या हो गई[3]।

३. स० १८५५ के वाद और स० १८५७ चैत्र शुक्ला १५ के पूर्व साध्वी श्री वरजूजी (वीजाजी सहित) रावलियां मे पधारी। वहां उन्होंने अनेक भाई-

---

१. त्या तीन जण्या सजम लियो, इक दिन भिक्खू पास।
वरजू विजां वना सती, वरस वावने तास॥

(ऋषिराय सुजश ढा० २ दो० २)

जवू द्वीप रा भरत खेत्र मे, मुरधर आर्य देशो रे।
पादु गाम रूपारेल रुड़ो, पूज भीखनजी कीधो परवेसो रे॥
वरजूजी विजांजी तीजी वनांजी, एक दिन सजम लीधो रे।
भीखनजी स्वामी गुर मिलिया भारी, सजम अमृत रस पीधो रे।

(हेम मुनि रचित—वीजा सती गु० व० ढ़ा १ गा० १, २)

२. मैणाजी भणाया ज्ञान फल पाया, हुई भिक्खु गुर री भगता।

(वीजां (४०) सती गु० व० ढ़ा० १ गा० ३)

३. सजम लीधा नै थया, तीन वरस उनमान।
कियो सिंघाडो स्वामजी, वरजू तणो पिछांण॥

(ऋषिराय सुजश ढ़ा० २ दो० ३)

बहनो को समझाया तथा रायचन्दजी तथा उनकी माता कुशालाजी को वैराग्योत्पादक उपदेश देकर सयम के लिए तैयार किया[१]।

वाद मे स्वामीजी रावलियाँ पधारे और रायचन्दजी व उनकी माता कुशालाजी को सं० १८५७ चैत्र पूर्णिमा के दिन आम्रवृक्ष की छाया मे दीक्षा प्रदान की। संयम देने के वाद साध्वी कुशालांजी को साध्वी वरजूजी को सौंप दिया[२]।

४. साध्वी श्री अच्छी विदुषी, साहसवती, गुणवती और वडी यशस्विनी हुई। चतुर्विध सघ मे अच्छा सुयश प्राप्त किया। उनके गुणो से प्रभावित होकर स्वामीजी ने उन पर विशेप अनुग्रह रखा और उनका वहुत सम्मान वढ़ाया।

उनकी विशेपताओ की झलक निम्न पद्यो मे मिलती है :— (ख्यात)

शील तणो घर महासती, सूत्र सिद्धंत सुवोल।
भीक्खू स्वाम वधारियो, तीखो तोल अमोल ॥

(ऋपिराय सुजश ढ़ा० २ दो० ४)

वरजूजी पादू रा वासी, भिक्षु नी सुरजी भारी।
गण में तोल वधायो तीखो, आयु ईडवे हुसीयारी ॥

(शासन विलास ढ़ा० २ गा० ३२)

वरजू जी वदीत विमासी, रूड़ी शील गुणां री रासी।
तिण रो भीक्खू तोल वधायो, सती सुजश शासन में पायो ॥

(भि० ज० र० ढा०५२ गा० ७)

---

१. समणी भीक्खू स्वाम नी, वरजू विजा विचार।
गामा नगरां विचरती, सतिया नै परिवार॥
वड़ी रावलिया पधारिया रे, वरजू सती सुवदीत रे। सुगण नर।
हलुकर्मी सुण हरपिया रे लाल, पूरण धर्म सू प्रीत रे॥ सुगण नर॥
सुन्दर देशनां साभली रे, समज्या चतुर सुजाण रे।
सुलभ थया वहु धर्म सू रे लाल, ऊजम अधिको आण रे॥
माता सहित ऋपिराय नै रे, वारु चढायो वैराग रे।
चारित लेवा चित थयो रे लाल, ससार सू गयो मन भाग रे॥
(ऋपिराय सुजश ढ़ा० २ दो० १ गा० १ से ३)

२. सजम देई माता भणी, सूपी वरजूजी नै स्वाम।
पूरण किरपा पूज नी, गुणवती अभिराम॥
(ऋपिराय सुजश ढा० ३ गा० १०)
सती खुशाला मोभती मुनिन्द मोरा, रहै वरजूजी पास हो।
पवर चरण हद पालता, पूरो पुन्य प्रकास हो॥
(ऋषिराय सुजश ढा० ५ गा० ५)

आचार्य भिक्षु से लेकर आचार्य रायचंदजी तक 'साध्वी-प्रमुखा' नियुक्ति की प्रणाली नही थी। आचार्यो द्वारा विशेष सम्मानित साध्वी संघ के प्रमुख रूप मे मानी जाती थी। स्वामीजी के समय साध्वी श्री वरजूजी (३६), भारीमाल जी स्वामी के समय साध्वी श्री हीरांजी और रायचंदजी स्वामी के समय साध्वी श्री दीपाजी (६०) मुखिया कहलाती थी।

'नौ पाटो का लेखा' मे उक्त तीनों साध्वियो का नाम मुखिया के रूप में लिखा हुआ है।

साध्वी हीराजी और दीपांजी का वर्णन उनके प्रकरण मे दिया गया है।

५. स० १८५६ में स्वामीजी ने साध्वी श्री कुशालांजी (५०), नाथांजी (५१) तथा वीजाजी (५२) को दीक्षित कर साध्वी वरजूजी के सुपुर्द कर दिया था :—

> खुशालांजी, नाथांजी, विजांजी, पाली न। गुण-रस कूंपी।
> गुणसठे इक दिन दिक्षा भिक्षु, देई वरजूजी नै सूंपी॥
>
> (शासन विलास ढ़ा० २ गा०४४)

शासन प्रभाकर ढ़ा० ३ गा० ६६ मे इन तीनो साध्वियो को साध्वी श्री रगूजी (२०) को सौंपने का लिखा है जो गलत है।

साध्वी नाथाजी (५१) साध्वी वरजूजी के स्वर्गवास तक उनके साथ रही, ऐसा साध्वी श्री रायकवरजी (६१) की गुण वर्णन ढ़ाल से ज्ञात होता है।

६. साध्वी श्री वरजूजी द्वारा दीक्षित साध्विया :—

१. साध्वी श्री कमलू जी (६४)

कमलूजी की ख्यात तथा शासन विलास ढा०४ गा० ३० की वार्तिका में लिखा है कि कमलूजी ने वरजूजी के पास दीक्षा ली।

'भिक्षु शिष्यणी वरजू तिण कनै कमलूजी दीक्षा लीधी सं० १८७४ स्त्री भरतार साथै।'

मुनि श्री जीवोजी (८६) द्वारा रचित हीर मुनि गुण वर्णन ढ़ाल में उल्लेख है कि कमलूजी की दीक्षा सं०१८७४ मे उनके पति श्री हीरजी के साथ आचार्य श्री भारीमालजी के हाथ से हुई[१]।

उक्त उद्धरणो से एक विकल्प तो यह हो सकता है कि भारीमालजी स्वामी ने दोनो को दीक्षा प्रदान की और साध्वी वरजूजी ने कमलूजी का केश-लुंचन

---

१. सवत् अठारै चौमतरे, भारीमाल अणगार।
सनमुख चरण समाचरचो, भामण नें भरतार॥
(जीव मुनि रचित—हीर मुनि गु० व० ढ़ा० १ दो० ६)

किया। दूसरा विकल्प यह भी हो सकता है आचार्य श्री भारीमालजी ने अपने सम्मुख साध्वी वरजूजी को दीक्षा देने की विशेष आज्ञा प्रदान की और उन्होने दीक्षा दी।

साध्वी श्री रायकवरजी (११८) की गुण वर्णन ढ़ाल के अनुसार साध्वी श्री कमलूजी दीक्षा लेने के वाद स० १८८७ मे साध्वी वरजूजी के स्वर्गवास तक उनके साथ रही।

(२) साध्वी श्री मयाजी (१०६)

स० १८७९ जेठ सुदि २ को उन्होने साध्वी मयाजी को दीक्षा दी —

संजम वरजूजी कन्है, लीधो संवत् अठार।
वर्ष गुण्यास्ये जेठ सुदि, तिथि वीज सुखकार॥

(जय विरचित—मया सती गु० व० ढ़ा० १ दो०२)

दीक्षित होने के वाद वे साध्वी वरजूजी के सिंघाड़े में रही :—

ऋषिराय तणी आज्ञा थकी जी काई, सती रहै व्रजूजी पै जाण।

(मया सती गु० व० ढा० १ गा० १)

फिर वे स० १८८७ मे साध्वी वरजूजी के स्वर्गवास तक उनके साथ रही ऐसा उक्त ढ़ाल से जाना जाता है।

(३) साध्वी श्री रायकवरजी (११८)

स० १८८६ मे उन्होने साध्वी श्री रायकवरजी को दीक्षा दी जिन्होने उनकी अन्तिम समय मे १६ महीने सेवा की :—

वरष सोलै रै आसरै, वरजू महासती पास।
चारित्र लीयो चूंप सूं, पामी परम हुलास॥
मास सोलै रै आसरै जी, व्रजूजी नी करी सेव।
भक्ति करी भली भांत सूं जी, अलगो करी अहमेव॥

(जय रचित—रायकवर सती गु० व० ढ़ा० १ दो ० २ गा० ५)

७. रभा सती गुण वर्णन ढाल मे उल्लेख है कि आचार्य भारीमालजी ने सं० १८६८ मे रभाजी (७२) 'पीसागण' को दीक्षा देकर साध्वी वरजूजी (३९) और झूमाजी (५८) को सौप दिया। इससे फलित होता है कि साध्वी झूमाजी उस समय वरजूजी के साथ थी।

८. अनुमानत स० १८६६ और १८६९ के वीच की घटना है कि जोधोजी (४६), वखतोजी (५८) और सतोजी (५९) इन तीन साधुओ ने कारणवश पचपदरा मे चातुर्मास किया। वे तीनो मुनि 'अगड़ सूत्री' (जव तक आचाराग तथा निशीथ सूत्र का वाचन नही किया जाता तव तक वह साधु-अगड़सूत्री कहलाता

है। वह आज्ञा, आलोचना नही दे सकता) थे अतः वे वहा साध्वी वरजूजी की निश्राय (निर्देशन) मे रहे।

(परम्परा के बोल सं० २२६)

६. साध्वी श्री वरजूजी के कुछ चातुर्मास आचार्य भिक्षु के सान्निध्य मे हुये :—

गामां नगरां उपकार करंती, स्वामीजी सूं चौमासा कीधा लगता ॥

(हेम मुनि रचित—वीजा सती गु० व० ढ़ा० १ गा० ३)

साध्वी श्री कुशालाजी (४६) की दीक्षा स० १८५७ चैत्र शुक्ला १५ को हुई थी और वे साध्वी वरजूजी को सौंपी गई थी। उनके जीवन प्रसग मे भी ऐसा उल्लेख है कि आचार्य भिक्षु और भारीमालजी ने उनके तीन चातुर्मास अपने साथ करवाये :—

महाभाग्यवान महासती मुनिन्द मोरा, भिक्खू तथा भारीमाल हो।
तीन चौमासा भेला कराविया मुनिन्द मोरा, गुण निष्पन्न नाम खुसाल हो ॥

(ऋषिराय सुजश ढा० ५ गा० ६)

तीन चौमासा पूज कनें किया……।

(हेम मुनि रचित—कुशाल सती गु० व० ढा० १ गा० ३४)

इन उल्लेखों से भी साथ मे चातुर्मास करने की उपर्युक्त वात सिद्ध होती है।

साथ चातुर्मास कराने की यह वात साध्वी वरजूजी पर विशेष कृपा-दृष्टि होने की ही सूचक है। इससे पूर्व आचार्यो के साथ साध्वियो के चातुर्मास होने का कही उल्लेख नही मिलता।

उक्त तीन चातुर्मास किस वर्ष साथ मे किये इसका कही उल्लेख नही मिलता परन्तु यह अनुमान किया जाता है कि उनके दो चातुर्मास स० १८५८-५६ स्वामी जी के साथ केलवा और पाली मे हुए। तीसरा सं० १८६१ चातुर्मास भारीमालजी स्वामी के साथ पीसांगण मे हुआ। सं० १८६०के सिरियारी चातुर्मास मे तो केवल साधु ही स्वामीजी की सेवा में थे, ऐसा भिक्षुयशरसायण ढ़ा० ५३ गा० १५ से १६ में स्पष्ट उल्लेख है।

१०. साध्वी श्री वरजूजी ने अनुमानतः सं० १८८७ मे अनशन पूर्वक ईडवा मे समाधि मरण प्राप्त किया।

ख्यात तथा शासन विलास आदि में उनका स्वर्गवास संवत् नही है परन्तु साध्वी रायकवरजी (११८) के गुण वर्णन की ढ़ाल के वर्णनानुसार साध्वी वरजूजी ने सं० १८८६ में उन्हें दीक्षित किया और उसके १६ महीने वाद वे दिवंगत हुई, इससे उनका स्वर्ग संवत् अनुमानतः १८८७ ठहरता है।

ख्यात तथा शासन विलास में उनके संथारे का उल्लेख नहीं है किन्तु भिक्षु-यशरसायण ढा०५२ गा० १० से यह अर्थ निकलता है कि उन्होंने संथारा किया[1]। शासन प्रभाकर ढा० ३ गा० ५० में भी संथारे का उल्लेख है।

शासन प्रभाकर ढा० ५ गा० १३७ में उनका स्वर्गवास आचार्य श्री भारीमालजी के समय में लिखा है जो उपर्युक्त प्रमाण से तथा संत गुणमाला-पंडित मरण ढ़ाल २ के आधार से गलत है क्योंकि पंडित मरण ढाल में भारीमालजी के युग (सं० १८७८ माघ वदि ८) तक दिवंगत साध्वियों में उनका नाम नहीं है।

---

१. सुद्ध यां 'तीना' नैं सिख्या, दीधी भीक्खू एक दिन दिख्या।
सखरो छेहड़ै संथारो, समणी हद सुद्रा सारो॥
(भिक्खु जशरसायण ढा ५२ गा०१०)

४०. साध्वी श्री बींजांजी (रीयां)

(संयम पर्याय स० १८५२-१८८७)

गीतक-छन्द

ग्राम 'रियां' वासिनी 'वीजां' वनी दीक्षार्थिनी।
चरण लेकर भिक्षु कर से हो गई शिक्षार्थिनी[1]।
सौप दी मैणां सती को लिए विद्याभ्यास के।
योग्यता पाई मधुर फल मिले सतत प्रयास के[2]॥१॥

सरलता मृदुता प्रकृति में सवल सयम-साधना।
रही वन सहयोगिनी वरजू सती की शुभमना[3]।
देख क्षमता भिक्षु गुरु ने सिंघाड़ा उनका किया।
साथ में व्याख्यान-दात्री सती जोतां को दिया॥२॥

दोहा

विनय भक्ति करती वहुत, देती मधु व्याख्यान।
वीजां का जोतां सती, रखती वहु सन्मान॥३॥

नन्दू लच्छू साध्वियां, लेकर संयम भार।
रहती वीजां पास में, गुरु-आज्ञा अनुसार॥४॥

गीतक-छन्द

विचर कर वीजां सती ने किया वहु उपकार है।
वोध देकर भविक जन की नाव कर दी पार है[4]।
भिक्षु की नौ वर्ष दुगुनी पूज्य भारीमाल की।
शेष तक फिर सजी सेवा रायऋपि गणपाल की[5]॥५॥

लगी तप संलेखना में तीन वत्सर विरति धर।
सात सौ तेसठ दिनों की जोड़ आई दीर्घंतर।
हुई है कंकाल काया रहा ढांचा मात्र है।
उच्च भावों से लिए भर सुकृत रस के पात्र है ॥६॥

दोहा

निर्जल तप ही अधिकतर, कुछ तप उदकागार।
अल्प मात्र लेती विगय, करती विरसाहार ॥७॥

कुछ दिन अल्पाहार कर, अनशन किया सहर्ष।
तन्मय वन लाती गई, दिन-दिन भावोत्कर्ष ॥८॥

भजन किया अरिहंत का, ध्याया निर्मल ध्यान।
नमस्कार के मंत्र का, खोल दिया अभियान ॥९॥

नौ दिन से अनशन फला, सिद्ध हुआ सव काम।
भिक्षुनगर में विजय की, फहरी ध्वजा ललाम ॥१०॥

अष्टादश शत विक्रमी, सत्यासी की साल।
शुक्ल चौथ वैशाख की, अन्तिम तिथि सुविशाल ॥११॥

कष्टों में कायम रही, किन्तु न छोड़ा स्थान।
शोभा पाई संघ में, गाते जन गुणगान ॥१२॥

जोतां वनां सहायिका, नंदू नोजां और।
की चारों ने हृदय से, परिचर्या कर गौर[१] ॥१३॥

१. साध्वी श्री बीजांजी मारवाड़ मे 'रीयां' (वड़ी पादू के पास) की वासिनी थी। उन्होने पति वियोग के पश्चात् स० १८५२ मे वरजूजी (३९) और वन्नाजी (४१) के साथ स्वामीजी के हाथ से दीक्षा स्वीकार की[1]।

(ख्यात)

सं० १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लेखपत्र (सामूहिक स० ७) में उक्त तीनो साध्वियो के हस्ताक्षर है इससे प्रमाणित होता है कि वे तीनों दीक्षाए उक्त तिथि के पूर्व हो चुकी थी।

२. स्वामीजी ने इन तीनों साध्वियो को ज्ञानार्जन के लिए साध्वी मैणाजी (१५) को सौप दिया।

(शासन विलास ढा. २ गा. ३४ की टिप्पण)

उन्होंने उनके पास शिक्षा प्राप्त की[2]।

३. साध्वी श्री प्रकृति से भद्र और कोमल थी। सयम की साधना वडी जागरूकता से करती। साध्वी वरजूजी (३९) का सिंघाडा होने के वाद वे उनके सान्निध्य मे रही, ऐसा निम्नोक्त पद्य से ज्ञात होता है—

समणी भीक्खू स्वाम नी, वरजू विजां विचार।
गांमां नगरां विचरती, सतियां नें परिवार॥

(ऋषिराय सुजश ढा. २ दो० १)

४. स्वामीजी ने स० १८५७ के जेठ महीने मे साध्वी जोतांजी को दीक्षित किया और उन्हें साध्वी वरजूजी और वीजांजी को सौपा था। वे उनके साथ रहकर व्याख्यान आदि में निपुण वनी। तत्पश्चात् अनुमानत: स० १८५९ मे स्वामीजी ने साध्वी वीजांजी का सिंघाड़ा किया और जोतांजी को व्याख्यानादि

---

१. जवूद्वीप रा भरतखेत्र में, मुरधर आर्य देशो रे।
पादू गाम रूपा रेल रूडो, पूज भीखनजी कीधो परवेसो रे॥
वरजूजी वजाजी तीजी वनाजी, एक दिन सयम लीधो रे।
भीखनजी स्वामी गुर मिलिया भारी, सजम अमृत रस पीधो रे॥
(हेम मुनि रचित—वीजा सती गु० व० ढा० १ गा० १, २)
त्या तीन जण्या सजम लियो, इक दिन भिक्खू पास।
वरजू विजा वन्ना सती, वरस वावने तास॥
(ऋषिराय सुजश ढा० २ दो० २)

२. मैणाजी भणाया ज्ञान भल पाया, हुई भिक्खू गुर री भगता रे।
(वीजां सती गु० व० ढा० १ गा० ३)

सहयोग के लिए उनके साथ दिया[1]।

स० १८७३ मे मुनि श्री हेमराज ी ने साध्वी नन्दूजी (६२) को दीक्षा दी और बीजाजी के सिंघाडे की साध्वी जोताजी (४८) ने उनका केश लुंचन किया तव से साध्वी नन्दूजी बीजाजी के साथ रही।

संवत् १८७८ फाल्गुन वदि ४ को आचार्य रायचन्दजी ने लच्छूजी (१०१) को दीक्षा दी और साध्वी जोतांजी ने उनका केश लुचन किया। तव से साध्वी लच्छूजी साध्वी बीजाजी के साथ रही। इसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

वड़ी विजा वृद्धि कारणी हो, जोतां गुण नी जिहाज।
नन्दू कुंवारी किन्यका हो, सखर मिल्यो तसुं स्हाज॥
विजा जोतां नन्दू भणी हो, सूंपी पूज ऋषिराय।
विनय व्यावच करती थकी हो, दिन-दिन हरष सवाय॥

(लच्छू सती गु० व० ढा० १ गा० २, ३)

साध्वी श्री वीजाजी स्वकल्याण के साथ जनकल्याण के लिए ग्रामानुग्राम विहार करती रही। उन्होने अनेक भाई वहनो को प्रतिवोध देकर उन्हे तेरापथ के अनुयायी वनाये।

वजांजी चारित्र पालता विचरै, घणा प्रतिवोध्या नर नारी॥

(वीजा सती गु० व० ढा० १ गा० ५)

५. साध्वी श्री ने नौ वर्षो तक (स० १८५२ से ६०) स्वामीजी की और १८ वर्षों (स० १८६१ से ७८) तक भारीमालजी स्वामी की सेवा की। फिर मुनि श्री खेतसीजी (२२) तथा आचार्य श्री रायचदजी की सेवा का लाभ लिया[2]।

६. साध्वी श्री ने अन्तिम तीन वर्षो मे जो सलेखना तप किया उसकी तालिका इस प्रकार है:—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८
७६	१५२	३२	३८	१४	६	३	१

---

१. व्रजूजी विजांजी नैं सूपी, सती जोताजी अधिक अनूपी।
सीलामृत रस नी कूपी॥
(जोतां सती गु० व० ढा० १गा० ६)

२. नव वर्ष आसरैं भिक्खू नी सेवा, अठारै वर्ष आसरैं भारीमालो रे।
सतजुगी वाल ब्रह्मचारी सेव्या, पाप कर्म पेमालो रे॥
(वीजां सती गु० व० ढा० १ गा० ६)

उनका यह अधिकांश तप चौविहार (निर्जल) था। कुछ तप मे पानी पिया। पारणे के दिन विगय (दूध आदि) भी अल्प मात्रा मे लिया। प्राय. अरस विरस आहार किया। फिर लगातार २५ दिन अल्पाहार किया।

उक्त तप के कुल दिन ७६३ अर्थात् २ वर्ष १ महीना और १३ दिन होते है। ३२२ दिन पारणे के तथा २५ दिन लगातार अल्पाहार के मिलाने से कुल १११० अर्थात् तीन वर्ष १ महीना होता है।

इस प्रकार की घोरतम तपस्या से उनका शरीर सूखकर अस्थिपंजर की तरह हो गया। फिर उन्होंने उज्ज्वल भावो से आजीवन अनशन ग्रहण किया। अनशन के समय उन्होने अरिहत देव को स्मरण और नमस्कार महामत्र का लाखो वार जप किया। नौ दिन से अनशन सपन्न हुआ और वे स० १८८७ द्वितीय वैसाख शुक्ला ४ को कटालिया मे दिवगत हो गई[1]।

उक्त तप उन्होने सिरियारी और कटालिया मे किया था। तप तथा अनशन के समय उन्हे भारी कष्ट झेलना पड़ा। क्या कष्ट पडा इसका उल्लेख नही मिलता। पर वे उसमे वहुत दृढ रही[2]। अत मे आत्मालोचन तथा क्षमायाचना कर आराधक पद प्राप्त किया। उनके उत्कट तप और अनशन के प्रभाव से चतुर्विध सघ मे अच्छी प्रभावना हुई। लोग मुक्त कठों से उनका यशोगान गाने लगे।

साध्वी जोताजी (४८), वन्नाजी (८४), नदूजी (९२) तथा नोजाजी (९८)

---

१. सती विजाजी रीयां तणा ए, छेहडै तपसा कीध घणी।
संथारो कटाल्ये सखरो, सरल भद्र श्रमणी सुगणी॥
(शासन विलास ढा० २ गा० ३३)

नव दिन नो संथारो नीको रे, सत्यास्ये सती विजां सधीको रे।
सती लियो सुजश नो टीको॥
(जोतां सती गु० व० ढ़ा० १ गा० १२)

सवत अठारै वर्ष सत्यास्ये, दूजे वैसाख सुद चोथ सीधो रे।
ग्राम कंटाल्ये भिक्खू जनम्यां ज्यां, जिनमार्ग जश लीधो रे॥
(वीजां सती गु० व० ढ़ा० १ गा० १७)

ख्यात, भिक्षुयशरसायण ढ़ा० ५२ गा० ८ तथा शासन प्रभाकर ढाल ३ गा० ५१ मे भी सलेखना संथारा करने का उल्लेख है।

२. कष्ट पड्यो पिण न हुई अलगी, चारतीर्थ मे सोभा पाई।
(वीजां सती गु० व० ढा० १ गा० १५)

ने साध्वी बीजाजी को अन्तिम समय परम समाधि उत्पन्न की[1]।

मुनि श्री हेमराजजी ने साध्वी बीजाजी के गुणो की एक ढाल सं० १८८८ चैत्र शुक्ला १४ शनिश्चर वार को 'लावा' मे बनाई। उसमे उनके सलेखना, अनशन आदि पर प्रकाश डाला है।

---

१. सिरियारी कटाल्ये कार्य सारचा, तपस्या कर देही तोड़ी रे।
जोतांजी वनांजी नंदूजी नोजांजी, सेवा कीधी कर जोडी रे।
जाजो साज दियो सजम तप री, चित्त समाधि उपजाई रे।
(बीजां सती गु० व० ढा० १ गा० १४, १५)

४१. साध्वी श्री वन्नांजी (वड़ी पादू)

(संयम पर्याय सं० १८५२-१८६७)

रामायण-छन्द

वास वड़ी पादू में गाया भिक्षु हाथ से ली दीक्षा।
'वरजू' 'वीजां' मिली साथ में पाई 'मैंणा' से शिक्षा'।
विनयवती ने रम संयम में तप द्वारा की कृश काया।
कुशलपुरा में अनशन ठाया संवत् सड़सठ का आया[2] ॥१॥

१. साध्वी श्री वन्नाजी वड़ी पादू(मारवाड) की वासिनी थी। उन्होने पति वियोग के वाद साध्वी श्री वरजूजी (३९) और वीजांजी (४०) के साथ सं० १८५२ में स्वामीजी के हाथ से वड़ी पादू मे दीक्षा स्वीकार की।

(ख्यात)

स्वामीजी ने फिर उन्हे शिक्षार्जन के लिए साध्वी मैणाजी को सौंपा।

(शासन विलास ढ़ा० २ गा० ३४ की टिप्पण)

उक्त संदर्भ के पद्य साध्वी वरजूजी और वीजाजी के प्रकरण मे उद्धृत कर दिये गये हैं।

२. साध्वी श्री वड़ी विनयवती थी। निर्मल भावो से चारित्र का सम्यग् पालन करती।[1] उन्होने पन्द्रह वर्ष के साधना काल मे विविध तप के द्वारा वहुत सार खीचा और अपना शरीर सुखा लिया। सं० १८६७ कुशलपुरा मे अनशन कर आत्म कल्याण किया[2]।

---

१. वनाजी सुविनयवती, सुध चरण पाल चित सती।
सुखदायक गण सुविशाली, सती आतम नै उजवाली हो।।

(भि० ज० र० ढा० ५२ गा० ९)

२. वनाजी सथारो कीधो, कुसलपुरा मे, तपस्या कर तन तायो रे।
समत अठारै सतसठा वर्षे, जिन मारग दीपायो रे।।

(हेम मुनि रचित वीजा सती गु० व० ढा० १ गा० ४)

वनाजी पादू रा वासी, वर्ष सतसठे सथारो।
स्वाम भीखणजी हाथे इक दिन, ए त्रिहुं दीक्षा अवधारो।।

(शासन विलास ढ़ा० २ गा० ३४)

सरूपाजी संथारो कंटाल्ये कीधो, वनाजी रो कुसलपुरे सीधो।

(संत गुणमाला-पडित मरण ढ़ा० २ गा० ९)

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढ़ा० ३ गा० ५२ मे भी अनशन आदि का उल्लेख है।

४२. श्री वीरांजी (दड़ीबा-मारवाड़)

(दीक्षा सं० १८५२-१८५४ में दूसरी वार गणवाहर)

दोहा

थी कुम्हारिन जाति से; दीक्षित 'चंदू' संग'।
लेकिन प्रकृति प्रकोप से, छोड़ दिया है संघ[२] ॥१॥

१. वीरांजी मारवाड़ के दड़ीवा (पचपदरा के पास) गांव की रहने वाली और जाति से कुम्हार थी। उन्होने स्वामीजी द्वारा दीक्षा ग्रहण की। (ख्यात)

स० १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लेखपत्र (सामूहिक स० ७) में वीरांजी के हस्ताक्षर हैं। उनके पूर्व साध्वी वरजूजी (३९), वीजाजी (४०) और वनांजी (४१) की दीक्षा सं० १८५२ में हुई थी। इससे यह निश्चित है कि वीरांजी की दीक्षा उसी वर्ष फाल्गुन शुक्ला १४ के पूर्व तीनों साध्वियो की दीक्षा के वाद किसी दिन हुई।

चदूजी (१३) के वर्णन से पता चलता है कि चदूजी ने सं० १८३७ मे गण से अलग होकर जव दूसरी वार स० १८५२ मे स्वामीजी द्वारा पुन. दीक्षा स्वीकार की तव वीराजी उनके साथ दीक्षित हुई।

स० १८५२ के व्यक्तिगत लेखपत्र २२।५,१९ मे लिखा है—वीराजी कहती—चदूजी मेरी गुरुणी है और चदूजी कहती—वीराजी मेरी शिष्या है तथा वीराजी कहती—तू मुझे लाई और चदूजी कहती- तू मुझे लाई।

स० १८५२ के व्यक्तिगत लेखपत्र २४।५ में उल्लेख है—चदूजी ने एक वार उत्तर दिया—मैं तुम्हे क्या लाई? तू उधर से अघा गई तव उनसे तोड़कर इनमे आई।

इस वार्त्तालाप से पता चलता है कि वीराजी पहले स्थानकवासी सम्प्रदाय के किसी टोले मे दीक्षित थी। उसे छोड़कर चदूजी की प्रेरणा से उनके साथ भिक्षु गण मे दीक्षित हुई।

स्वामीजी ने चंदूजी तथा वीराजी को गण मे लेने के पूर्व जो करार किये उनमे एक करार सख्या २ इस प्रकार है.—'थांनै दोया नं जुदी जुदी मेलसां, भेली राखण री वाट जोयजो मतीं, पछै कहोला म्हानै भेली राखो जकी वात छै कोई नही।' (स० १८५२ व्यक्तिगत लेखपत्र स० २०)

दीक्षा के वाद स्वामीजी ने वीरांजी को साध्वी श्री सदाजी (२१) के साथ रखा। जव तक वे उनके साथ रही तव तक तो वड़े मेलजोल से रही। लोगो मे भी शोभा प्राप्त हुई। वाद मे वीराजी चदूजी के साथ रही तव उनके द्वारा साध्वी श्री हीराजी (२८) तथा गुमानाजी (३३) की निन्दा सुनने से उनकी भावना मे परिवर्तन आ गया। वे भी चन्दूजी के साथ अन्य साध्वियों के अवगुण वोलने लगी। स्वामीजी ने चन्दूजी और वीरांजी को वुलाकर पूछा और जाच-पड़ताल की तो उनकी वातें मिथ्या निकली।

स्वामीजी ने उन दोनो को गण से पृथक् करने के लिए आह्वान किया तव चन्दूजी वहुत देर तक वहस करती रही तथा भय दिखाती रही। लेकिन स्वामीजी ने गण मे रखना उचित न समझ कर दोनों का सम्वन्ध-विच्छेद कर दिया।

वीराजी हृदय की शुद्ध और भोली प्रकृति की थी। इससे चंदूजी के साथ जाने से पहले अकेली स्वामीजी के पास आकर बोली—'मैंने चन्दूजी के बहकावे मे आकर साध्वियों मे दोष निकाले। मैं आपके टोले के किन्ही साधु-साध्वियों मे दोष नही समझती। मैं गण मे बहुत सुख से रही। अब हाथी को छोड़कर गधे पर चढ रही हूं। रत्न को छोडकर कंकर ले रही हूं, इत्यादि उद्‌गार व्यक्त करती हुई आंखें भर-भर कर बहुत रोयी, परन्तु इसके बावजूद भी वे चदूजी के साथ यह कहती हुई गई कि—'म्हारै महा मोहनी कर्म बधिया छै, मासू थारो सग छूटै नही।' (सं० १८५२ व्यक्तिगत लेखपत्र सं० २१)

कुछ समय पश्चात् बहुत नम्रता करने पर स्वामीजी ने चदूजी और वीराजी को प्रायश्चित्त देकर पुन: सघ मे सम्मिलित कर लिया[1]। लेकिन उनकी अनुचित वृत्तियो को देखकर स० १८५४ सावन शुक्ला ७ के पूर्व खेरवा मे वीराजी को दूसरी बार (स० १८५२,५४) और चदूजी (१३) को तीसरी बार (स० १८३७, ५२, ५४) गण से पृथक् कर दिया[2]।

> वीरां जाति कुंभार रे, संजम लीधो स्वाम पै।
> प्रकृति असुध अपार रे, तिण कारण गण सूं टली॥
> (भि० ज० र० ढा० ५२ अन्तर्गत सो० २)

> जाति कुंभारी जाण रे, वीरांजी दिक्षा ग्रही।
> प्रकृति अजोग पिछाण रे, तिण सूं छोड़ी स्वामजी॥
> (शासन विलास ढा० २ सो० ३५)

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० ३ सोरठा ५३ मे ऐसा ही उल्लेख है।

स्वामीजी ने स० १८५४ सावन शुक्ला ७ को खेरवा मे चन्दूजी, वीराजी के संबंध मे एक ढ़ाल बनाई थी जो जयाचार्य विरचित 'गण विशुद्धिकरण हाजरी' मे उल्लिखित है।

वीराजी के घटना-प्रसंग चदूजी के साथ जुड़े हुए है अतः उनके प्रकरण को पढने से और अधिक स्पष्ट हो जाता है।

---

१. दूसरी बार उन्हे सघ मे सम्मिलित करने का यद्यपि स्पष्ट उल्लेख नही मिलता परन्तु सं० १८५४ में पुनः उन्हे गण से अलग करने से वह प्रमाणित हो जाता है।

२. वीराजी पहले चदूजी से सन्तुष्ट नही थी फिर एक हो गई। वीराजी चन्दूजी को गुरुणी और चन्दूजी वीराजी को शिष्या कहने लगी। दोनो के साठ-गाठ हो गई जिससे वे अन्य साध्वियो की आज्ञा नही मानती।

४३. साध्वी श्री ऊदांजी

(दीक्षा सं० १८५२ और ५६ के बीच, स्वर्ग सं० १८६० और १८६८ के बीच—भारीमाल युग मे)

छप्पय

सोनारी थी जाति से कर फूली सत्सग।
रंग चढ़ गया विरति का दिल में भरा उमंग।
दिल में भरा उमंग चरण ले गण में आई[1]।
नम्र प्रकृति, पुरुपार्थ बड़ा भावों में लाई।
अनशन कर आमेट में जीत गई है जग[2]।
सोनारी थी जाति से कर फूली सत्संग ॥१॥

१. साध्वी श्री ऊदाजी जाति से सुनार थी। उन्होंने पति वियोग के वाद दीक्षा स्वीकार की। (ख्यात)

उनका दीक्षा-संवत् नही मिलता पर स० १८५२ फाल्गुन शुक्ला १४ के लेखपत्र (सामूहिक स० ७) मे उनके हस्ताक्षर नही है तथा उनसे वाद की साध्वी झूमांजी का दीक्षा-मवत् १८५६ है इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त अवधि के वीच वे दीक्षित हुई।

२. वे प्रकृति से नम्र और उद्योगशील साध्वी थी। उन्होंने अनेक वर्षो तक संयम की आराधना की। (ख्यात)

अन्त मे अनशन कर आमेट मे दिवंगत हो गई। (ख्यात)

उनके स्वर्गवास का सवत् प्राप्त नही है। स० १८६० मे स्वामीजी के स्वर्गवास के समय विद्यमान २७ साध्वियों मे उनका नाम है। अतः उनका स्वर्ग-वास आचार्य भिक्षु के वाद मे हुआ, यह निःसदेह है। जयाचार्य द्वारा रचित संत गुणमाला-पंडित मरण ढ़ा० २ गा० ६ मे भारीमालजी स्वामी के समय तक दिवगत होने वाली साध्वियो मे उनका नाम है। इससे उनका स्वर्गवास भारीमालजी स्वामी के युग मे हुआ इसमे भी सदेह नहीं है।

स्वामीजी के वाद मुनि डूगरसीजी (४३) के स्वर्गवास (स० १८६६ जेठ सुदि ७) तक १८ सथारे हुए। उनमे समीक्षानुसार उनके नाम की गणना की गई है, अत. उनका देहावसान स० १८६० भादवा सुदि १३ के और १८६८ जेठ सुदि ७ के वीच हुआ (समीक्षा देखें साध्वी कुशालांजी (५०) के प्रकरण मे)। उनसे सबधित पद्य इस प्रकार है :—

जाति सोनार प्रकृति सुद्ध जेहनी, संजम वहु वर्ष पाली।
शहर आमेट सखर सथारो, ऊदां आतम उजवाली॥

(शासन विलास ढ़ा० २ गा० ३६)

उदाजी सथारो आमेट पहुती।

(सतगुणमाला-पडित मरण ढ़ा० २ गा० ६)

ख्यात, भिक्षुयशरसायण ढा० ५२ गा० ११ तथा शासनप्रभाकर ढ़ा० ३ गा० ५४ मे ऐसा ही उल्लेख है।

४४. साध्वी श्री झूमांजी (नाथद्वारा)

(दीक्षा० सं १८५६, स्वर्ग सं० १८६६ या ६७)

दोहा

नाथद्वारा वासिनी, पोरवाल कुल ज्ञेय।
भर भावों में विरति रस, आई पथ पर श्रेय[1] ॥१॥

रामायण-छन्द

दीर्घ काल तक शुद्ध साधना करती रही धैर्य धर कर।
'वगतू' सह सिरियारी पहुंची स्वामीजी के अनशन पर[2]।
वगड़ी में 'झूमां' ने अनशन बहु वर्षों के बाद किया।
रम समाधि में पौरुष बल से लक्ष-बिन्दु को साध लिया[3] ॥२॥

साध्वी श्री ने आचार्यप्रवर से विनय पूर्वक आज्ञा प्राप्त कर स० १८६७ फाल्गुन शुक्ला १३ को सलेखना तप प्रारम्भ किया। तेरस के दिन उपवास किया। दूसरी तेरस के दिन पारणे मे अल्पमात्र आहार लिया। चतुर्दशी से लेकर चैत्र कृष्णा ५ तक अधिकांश ऊनोदरी की। चैत्र कृष्णा ६ के दिन ऊर्ध्व भावों से उपवास किया। क्रमशः वढ़ते हुए तप का पन्द्रहवां दिन आ गया। इन पन्द्रह दिनो मे उन्होने आचार्य श्री भारीमालजी का व्याख्यान तथा भगवती सूत्र के विभिन्न प्रकरणों को सुना। मुनि खेतसीजी ने विविध अध्यात्म-प्रधान पद्य और रायचन्दजी ने चार शरण आदि सुनाये।

साध्वी श्री की भावना उत्तरोत्तर वढ़ती चली गई। उन्होने तपस्या के १५वें दिन चैत्र शुक्ला ६ को[1] आत्मालोचन एव सभी से क्षमायाचना कर आजीवन अनशन ग्रहण किया, जो आठ प्रहर के पश्चात् चैत्र शुक्ला ७ की दोपहर मे सानद सपन्न हुआ।[2]

साध्वी श्री के संलेखना एव अनशन के समय आउवा मे साधु-साध्वियों का समागम हुआ। अनशन के दिन ६ साधु और ११ साध्विया थी। सभी ने साध्वी श्री को वहुत-वहुत सहयोग दिया। अनेक गांवो के श्रावक-श्राविका साध्वी श्री के दर्शनार्थ आये और अत्यन्त प्रसन्न हुए। भाई-वहनो मे त्याग-वैराग्य की विशेप वृद्धि हुई। सभी ने आश्चर्य-चकित होकर साध्वी श्री के उत्कट त्याग की मुक्त

पूज पधारचा चूप स्यू, फलिया मनोरथ आजो जी ॥
सूरो चढै सग्राम मे, कर केसरिया पूरो जी।
ज्यूं सती रो मन तपस्या थकी, कर्म करण चकचूरो जी ॥
सतां पिण वरज्या मोकला, उतावल मत करो काई जी।
विहार करो विचरो सुखे, गामां नगरां मांहि जी ॥
वलता कुसालाजी वोलिया, म्हारै जोग मिल्यो छै रूड़ो जी।
भाई सुत नें पूज जी, तिण स्यू आयो वैराग पूरो जी ॥
(कुशाला० गु० व० ढा० १ गा० १ से ५)

१. चैत्र कृष्णा ६ से चैत्र शुक्ला ६ तक १६ दिन होते है पर पन्द्रह दिन के तप का उल्लेख होने से लगता है कि वीच मे कोई तिथि टूटी है।

२. सथारो आयो जावजीव रो, आठ पोहर मझारो।
वेल्यां दोपारां री जाणज्यो, इचरज पाम्या नर नारो।
अनशन आयो तेतीस भक्त नो, तिण मे तीन भक्त सथारो।
चेत सुदि सातम दिने, कर गया खेवो पारो ॥
(कुशाला० गु० व० ढा० १ गा० २१, २२)

कंठो से यशोगाथा गाई। श्रावकों ने ३६ खडी मडी बनाकर शोभायात्रा निकाली और उनके पौद्‌गलिक शरीर का दाह-संस्कार किया।

(कुशाला सती गु. व. ढ़ा. १ गा. ६ से २०,
२३ से २८, ३० से ३२, ३६ से ३८)

इस प्रकार साध्वी श्री ने सयम-यात्रा सफल कर सं० १८६७ चैत्र शुक्ला ७ रविवार को मध्याह्न के समय आउवा मे स्वर्ग प्रस्थान कर दिया।[1]

साध्वी श्री उस समय श्रावक शोभाचदजी के मकान मे विराजती थी। उन्होने तथा उनकी धर्म-पत्नी ने साध्वी श्री की विनय भाव से बड़ी सेवा-भक्ति की।[2]

साध्वी श्री की प्रशस्ति मे लिखे गये पद्य इस प्रकार है :—

चौथा आरा मांहे चूंप स्यूं, बड़ा-बड़ा मुनिराया।
वीर जिनंद मुख आगले, वाज वाज काम आया॥
पंचमा आरा रै मझै, भिक्खू भारीमाल ऋपराया।
त्यांरा केई साध साध्वियां पिण, जीत रा डंका वजाया॥
कुसालांजी मोटी सती, तपसा भारी कीधी।
परिणांम राख्या निर्मला, नींव मुक्त नी दीधी॥

(कुशाला गु० व. ढा० १ गा० ६ से ८)

साध्वी श्री का जिस दिन स्वर्गवास हुआ उस दिन उनके गुणानुवाद की बनाई हुई एक ढाल उपलब्ध होती है। उसमे रचयिता का नाम नही है :—

समत अठारैं सतसठे, आउवा शहर मझारो जी।
चेत सुदी सातम दिने, गुण गाया श्रीकारो जी॥

(कुशाल सती गु० व० ढ़ा० १ गा० ४१)

परन्तु वह मुनि श्री हेमराजजी द्वारा रची गई मालूम देती है। मुनि श्री का उस वर्ष (सं० १८६७) खेरवा में चातुर्मास था और शेपकाल मे वे उधर ही विहार करते थे। भारीमालजी स्वामी आदि साधु आउवा पधारे तब वे भी वहां पहुंचे हों और गीतिका बनाई हो।

---

१. सुख मांहे चारित्र आदरयो, मुख मांहे जाय वेठा॥
सुख मांहे करणी करी, सुख मांहे जाय पेठा॥

(कुशालां० गु० व० ढ़ा० १ गा० ३३)

२. सेज्यातर शोभाचन्द श्रावक, जायगा निर्दोपण दीधी।
सेज्यातरी पिण वनीत घणी, सेवा वंदकी कीधी॥

(कुशालां० गु० व० ढ़ा० १ गा० ४०)

ऋषिराय सुजश ढ़ा० ४, ५, ऋषिराय पंचढ़ालिया ढा० १, ख्यात, शासन विलास ढ़ा० २ गा० ४०, संत गुणमाला-पडित मरण ढ़ा० २ गा० ११, भिक्षुयश-रसायण ढा० ५२ गा० १६ तथा शासनप्रभाकर ढा० ३ गा० ६१ से ६३ मे साध्वीश्री से सवधित कुछ वर्णन है।

शासन प्रभाकर भिक्षु सत वर्णन ढा० २ गा० १६३ मे लिखा है कि स० १८७० कार्तिक शुक्ला १० को माधोपुर मे ऋषिराय की माता कुशालांजी का स्वर्गवास हुआ :—

> 'तिणहिज दिन माधोपुर मझारो रे लाल ।
> ऋषिराय नी माता कुशालांजी नो आयु अंत थाय ।।'

परन्तु यह भूल है। वे कुशालाजी (५०) 'पाली' थी।

४८. साध्वी श्री जोतांजी (लावा)

(संयम पर्याय सं० १८५७-१६०८)

छप्पय

'जोतां' के वैराग्य को साधुवाद सौ वार।
ज्योति जलाई धर्म की जीवन लिया निखार।
जीवन लिया निखार वास 'लावा' में उनका।
था बांवलिया गोत्र सवेरा नव जीवन का।
मुनि-श्रमणी-संयोग से जमे धर्म-संस्कार।
जोतां के वैराग्य को साधुवाद सौ वार॥१॥

हुई भावना चरण की व्यक्त किये स्व-विचार।
घर वालों ने रोष वश कष्ट दिये अनपार।
कष्ट दिये अनपार मार दे तन को मोड़ा।
तीन वार अविचार हाथ का चूड़ा तोड़ा।
देख अडिगता अंत में बने अनुमति-दातार।
जोतां के वैराग्य को साधुवाद सौ वार॥२॥

पहनाया फिर मांगलिक चूड़ा चौथी वार।
लाये पुर में भिक्षु को कर अनुनय बहुवार।
कर अनुनय बहुवार परम चरणोत्सव छाया।
तज कर पति स्वजनादि सुगुरु से संयम पाया।
वय में सतरह वर्ष की किया भोग-परिहार।
जोतां के वैराग्य को साधुवाद सौ वार॥३॥

दोहा

अचरज जन-मन में हुआ, मुख-मुख पर ध्वनि धन्य ।
सम्मुख उच्चादर्श के, झुकते नर-मूर्धन्य ॥४॥

हुए अग्रणी धर्म में, उनके ज्ञाति विशेष ।
'रत्न' श्रमण 'नंदू' सती, संयम में अग्रेश' ॥५॥

छप्पय

'वरजू' 'वीजां' पास में करती विद्याभ्यास ।
विनय क्षमा गुण वृद्धि से भरती ज्ञान प्रकाश ।
भरती ज्ञान प्रकाश खीच आगम-रस लेती ।
कंठ मधुर व्याख्यान सरस परिषद में देती ।
वीजा की सहयोगिनी रही प्रमुख साकार[२] ।
जोतां के वैराग्य को साधुवाद सौ वार ॥६॥

दोहा

दीक्षा देकर हेम ने, नन्दू को तत्काल ।
सौंपा जोतां को त्वरित, करने हित संभाल[३] ॥७॥

छप्पय

सत्यासी की साल में वीजां का सुरवास ।
किया सिघाड़ा सुगुरु ने जोतां का सोल्लास ।
जोतां का सोल्लास विचरती भू-मंडल पर ।
करती वहु उपकार बोध जन-जन को देकर ।
सात भगिनियों को दिया संयम का उपहार[४] ।
जोतां के वैराग्य को साधुवाद सौ वार ॥८॥

दोहा

सप्त नवनि की साल में, पावस पुर पीपाड़ ।
दर्शन कर 'सरदार' ने, पाया हर्ष प्रगाढ़[५] ॥९॥

छप्पय

रीति नीति में निपुणता विविध धारणा पूर्व।
स्मरण ध्यान स्वाध्याय जप करती रही अपूर्व।
करती रही अपूर्व सती सतयुग की सुरभी ।
जंघा-बल कमजोर बुढापा आया फिर भी ।
हुई नहीं स्थिरवासिनी करती रही विहार[६]।
जोतां के वैराग्य को साधुवाद सौ वार।।१०।।

पाली पावस आखिरी कार्तिक में सोत्साह।
संथारा कर भाव से ली सुरपुर की राह ।
ली सुरपुर की राह मनाया मृत्यु-महोत्सव ।
फैला सुयश अथाह कीर्त्ति गाते सब मानव।
साधिक वर्ष पचास तक बही सजल जलधार[७]।
जोतां के वैराग्य को साधुवाद सौ वार ।।११।।

सेवा 'नदू' आदि ने की रखकर उपयोग ।
भारी पुण्य-प्रयोग से मिला सुखद सहयोग[८]।
मिला सुखद सहयोग खिला है जीवन-उपवन।
भाव भरी रच गीति किया जय ने गुण-वर्णन।
रत्न जड़े हैं स्वर्ण में बड़ा भर दिया सार[९]।
जोतां के वैराग्य को साधुवाद सौ वार।।१२।।

१. साध्वीश्री जोताजी मेवाड़ में लावा (सरदारगढ़) की निवासिनी, जाति से ओसवाल और गोत्र से वावलिला (वंवलिया) थी। साधु-साध्वियो के सम्पर्क से उन्हें प्रतिवोध मिला और वे सयम ग्रहण करने के लिए उद्यत हुई। दीक्षा की अनुमति के लिए उन्हे अनेक यातनाए सहन करनी पड़ी। घर वालो ने उन्हें डिगाने के लिए मारपीट तक का तथा वधन के द्वारा काफी कष्ट दिये। तीन वार उनका चूड़ा (सुहाग का चिन्ह) तोड़ दिया। आखिर उनके उत्कट वैराग्य को देखकर घर वालो ने चौथी वार नया चूड़ा पहना कर दीक्षा की आज्ञा दी और आचार्य भिक्षु को पधारने के लिए निवेदन किया। उनकी प्रार्थना को मानकर स्वामीजी वहा पधारे।

सं० १८५७ के जेठ महीना मे जोताजी ने पति एव परिवार को छोडकर १७ वर्ष की सुहागिन वय (नावालिग) मे आचार्य भिक्षु द्वारा लावा मे चारित्र ग्रहण किया[1]।

यौवन के खिलते वसत मे सभी प्रकार के भौतिक सुखो को ठुकरा कर साध्वी जोतांजी ने वड़ा आदर्श उपस्थित किया। उनके इस प्रकार के उच्चतम त्याग से जनता मे काफी अच्छा प्रभाव पड़ा। उनके अभिभावक दृढ़धर्मी वनकर गाव के प्रमुख श्रावकों की गणना मे आ गये। वाद मे उनके परिवार की तीन दीक्षाए— मुनि रत्नजी (७४), साध्वी पेमांजी (९१) नन्दूजी (९२) की और हुई।

साध्वी जोताजी मुनि श्री रत्न जी की सभवतः भाभी और साध्वी नदूजी (९२) की चाची थी ऐसी सरदार गढ़ के श्रावको की प्राचीन धारणा है। नंदूजी

---

१. सती जोताजी महा सुखदायो रे, प्रभु पथ सती हद पायो रे।
चार तीर्थ मे जश छायो, जोतांजी मोटी सती सुखदायो रे॥
लाहवा थी भल संजम लीधो रे, पीउ छाड परम रस पीधो रे।
दुख सासरियां अति दीधो॥
तीन वार चूडो तोड्यो रे, मार दीधी वांधी तन मोड्यो रे।
चित चारित्र थी नही छोड्यो॥
चौथी वार चूड़ो पहिरायो रे, घर का आज्ञा दीधी लायो रे।
स्वाम भीखू नैं लिया वोलायो॥
वर्ष सतावने सुखकारो, जेठ मास चारित्र जयकारो।
भीखू स्व-मुख चरण उच्चारो॥
ओसवंश वावलिया सुजातो रे, आमरैं वर्ष सत्तरैं विख्यातो रे।
सती री वुद्धि घणी उतपातो॥
(जयाचार्यरचित—जोतां सती गु० व० ढ़ा० १ गा० १ से ५, ७)

के पिता का नाम फतेहचंदजी था और रत्नजी उनके छोटे भाई थे। सं० १८७३ मे रत्नजी की दीक्षा के कुछ दिन पश्चात् नंदूजी की दीक्षा हुई।

इस वर्ष पांच सुहागिन वहिनों की दीक्षा हुई जिनका वर्णन साध्वी हस्तूजी (४५), कस्तूजी (४७) के प्रकरण मे दे दिया गया है।

२. दीक्षित करने के वाद स्वामीजी ने साध्वी जोतांजी को साध्वी वरजूजी (३९) और वीजाजी (४०) को सौप दिया।[1]

वे उनके सहवास मे रहकर साधु-चर्या मे निपुण वनी और विनयपूर्वक ज्ञानार्जन करने लगी। उन्होने थोडे ही समय मे सिद्धान्तो की अच्छी जानकारी कर ली। उनके कठ मधुर और सुरीले थे जिससे व्याख्यान कला मे भी कुशल वन पाई।[2]

स्वामीजी ने सं० १८५८ या ५९ मे जव साध्वी वीजाजी का सिंघाड़ा वनाया तव साध्वी जोताजी को व्याख्यानादि के लिए उनके साथ भेजा[3]। वे उनके सिंघाडे का प्रतिनिधित्व करती रही।

३. स० १८७३ के मृगसर या पोप महीने मे मुनि श्री हेमराजजी ने कुमारी कन्या साध्वी नदूजी[4] (९२) 'लावा' को 'खारा' गांव की मीमा में गृहस्थ वेप मे गहनों-कपडो सहित दीक्षा देकर साध्वी जोताजी को सौंपा। उन्होंने नंदूजी का केश-लुचन किया, उन्हे साध्वी के कपड़े पहनाये और गृहस्थ के गहने-कपड़े उतार कर उनके पिता को सभला दिये।

(हेम नवरसो ढ़ा० ५ गा० २२, २३ तथा नंदूजी की ख्यात)

४. स० १८८७ मे साध्वी श्री वीजाजी ने सलेखना, संथारा कर आत्म-कल्याण किया तव साध्वी जोताजी ने उन्हें अच्छा सहयोग दिया। अन्य सहयोगिनी

---

१. व्रजूजी विजाजी नै सूपी रे, सती जोतांजी अधिक अनूपी रे।
सीलामृत रस नी कूपी रे॥
(जोतां सती गु० व० ढ़ा० १ गा० ६)

२. हुई सूत्र सिद्धता री जांणो रे, खिम्या विनय गुणा री खाणो रे।
वर कठ सू वाचै वखाणो॥
(जोतां० गु० व० ढ़ा० १ गा० ८)

३. स्वाम भीखू सुविचारो रे, कियो विजांजी तणो सघाड़ो रे।
वखाणीक जोतांजी उदारो॥
(जोता० गु० व० ढ़ा० १ गा० ९)

४. तेरापथ सघ मे वह सर्व प्रथम कुमारी कन्या की दीक्षा थी।

साध्वियां—वन्नांजी (८४), नंदूजी (९२) और जोतांजी (९९) थी ।[1]

साध्वी बीजाजी के स्वर्ग-गमन के बाद आचार्य श्री रायचदजी ने जोतांजी को अग्रगण्या बनाया । उन्होने विचर कर बहुत उपकार किया । प्रतिबोध देकर अनेक व्यक्तियों को धर्म के अनुरागी एव श्रद्धालु बनाये । सात बहिनो को अपने हाथ से दीक्षा प्रदान की ।[2] उनके द्वारा दीक्षित साध्विया :—

१. साध्वी श्री मयाजी (८६) 'देवगढ' को सं० १८७२ मृगसर वदि १ को आमेट मे दीक्षा दी .—

पीहर संजम पाइयो रे, सैहर आमेट मझार ।
चेली भीखू सांम नी रे, जोतांजी जसवंत ।
स्वहत्थ संजम आपियो रे, मयांजी नै मतवंत ॥
समत अठारै बोहीतरे रे, आवियो 'आगण' मास ।
वासर विध एकम तणो रे, पूर्ण पूरी आस ॥
(मुनि जीवोजी कृत—मया सती गु० व० ढा० १ गा० २, ४, ५)

इससे लगता है कि उसका स० १८७२ का चातुर्मास आमेट मे था ।

२. साध्वी श्री लच्छूजी (१०१) 'मेड़ता' को स. १८७८ फाल्गुन वदि ४ को नाथद्वारा मे दीक्षा दी । दीक्षित करने के बाद नव दीक्षिता साध्वी को गुरुचरणो मे समर्पित किया तब आचार्य प्रवर ने वापस बीजाजी, जोताजी और नदूजी को सौप दिया ।

(लच्छू० गु० व० ढा० १ गा० २, ३)

---

१. बीजांजी सती तप अति कीधो रे, साझ जोताजी अधिको दीधो रे ।
परम विनय तणो रस पीधो ॥
नव दिन नो संथारो नीको रे, सत्यास्ये सती बीजा सधीको रे ।
सती लियो सुजश नो टीको ॥
(जोता० गु० व० ढा० १ गा० ११, १२)
सरियारी कटाल्ये कार्य सारचा, तपस्या कर देही तोडी रे ।
जोतांजी बनाजी नंदूजी नोजांजी, सेवा कीधी कर जोडी रे ॥
(हेम मुनि रचित—बीजां० गु० व० ढा१ १ गा० १४)

२. जोताजी हुई महा जश धारो रे, अधिको करती उपगारो रे ।
सती शासण री सिणगारो ॥
घणां नै दियो संजम भारो रे, श्रावकपणो घणा नै श्रीकारो रे ।
घणां सुलभ किया नर नारो ॥
(जोतां० गु० व० ढ़ा० १ गा० १३, १४)

३. साध्वी श्री पन्नांजी (१३४) 'पीपाड़' को स० १८८८ मृगसर वदि १४ को पाली मे दीक्षा दी ।
४. साध्वी श्री महेखाजी (११४) 'काणाणा' को सं० १८९२ पोप सुदि ६ को काणाणा मे दीक्षा दी ।
५. साध्वी श्री चपाजी (११६) 'जोजावर को सं० १८९५ चैत्र वदि ६ को जोजावर मे दीक्षा दी ।
६. साध्वी श्री सोनाजी (२०८) 'खेरवा' को स० १९०० फाल्गुन शुक्ला ५ को हिंगोला मे दीक्षा दी ।
७. साध्वी श्री दोलांजी (२४९) 'मलसावावड़ी' को सं० १९०६ मृगसर सुदि ९ को हिंगोला मे दीक्षा दी ।

(इन्ही साध्वियो की ख्यात से)

५. स० १८९७ के चातुर्मास मे सरदार सती जव युवाचार्य श्री जीतमल जी से दीक्षा लेने उदयपुर जा रही थी तव पीपाड मे उन्होने साध्वी श्री के दर्शन कर दो दिन सेवा की ।[1]

६. साध्वी श्री की नीति वड़ी निर्मल थी । चारित्र पालन मे वड़ी जागरूक रहती । उन्हे विविध प्रकार की प्राचीन धारणाए थी । वे निरन्तर स्वाध्याय-ध्यान एव जप मे लहलीन रहती । उन्होने लाखो वार नमस्कार महामंत्र का जाप किया । इस प्रकार उनकी साधना और भाव-क्रिया को देखकर सतयुग का स्मरण हो जाता था ।[2]

वृद्धावस्था के समय चलने फिरने मे अक्षम होने पर भी वे किसी गांव मे स्थिरवास रूप मे नही रही। 'कांठा' की कोर-सिरियारी, राणावास, कंटालिया, सोजतरोड़, सुधरी आदि क्षेत्रो मे छोटे-छोटे विहार करती रही ।[3]

---

१. दर्शन जीतांजी तणा हो, सेव उभय दिवस अवधार ॥
(सरदार सुजश ढा० ८ गा० २०)

२. नीत चारित्र नी हद नीकी रे, जूनी धारणा सखर सधीकी रे ।
चौथा आरा नी सतियां सरीखी ॥
(जीता० गु० व० ढा० १ गा० १५)

ध्यान समरण अधिको धारयो रे, लाखांगमें नवकार संभारयो रे ॥
विषया रस नै दूर निवारयो रे ॥
(जीतां० गु० व० ढ़ा० १ गा० १८)

३. छेहडै क्षीण जघा वल जांणो रे, तो पिण रहया नही थापी थाणो रे ।
कांठा नी कोर विचरचा सुजाणो ॥
(जीतां सती गु० व० ढ़ा० १ गा० १६)

७. साध्वी श्री का सं० १९०८ का चातुर्मास पाली मे था। वहां कार्तिक महीने में अढ़ाई प्रहर के अनशन मे वे दिवगत हो गई। श्रावको ने ४१ खडी मडी वनाकर उनका दाह-सस्कार किया।[1]

८. साध्वी नन्दूजी (९२) आदि ने साध्वी जोताजी की अच्छी सेवा की :—

नदूजी आदि समणी सुहाणी रे, मनमानी सेवा सुखदाणी रे।
प्रवल पुण्य जोतां ना निछाणी।
(जोतां० गु० व० ढ़ा० १ गा० १७)

साध्वी श्री जोतांजी के स्वर्गस्थ होने के वाद जयाचार्य ने साध्वी नंदूजी का सिंघाड़ा वनाया।

९. जयाचार्य ने साध्वी श्री के गुणानुवाद की एक गीतिका स० १९०८ जेठ सुदि १२ के दिन वोरावड़ मे वनाई। उसमे तथा अन्य स्थलो मे साध्वीश्री के प्रति जो भावाभिव्यक्ति की है वे मूल पद्य इस प्रकार है :—

सती जोतां हुई जयकारो रे, त्यांरो भजन करो नर नारो रे।
याद आयांइ हरप अपारो ॥२२॥

सुध शासन जमावण सारो रे, सती जोतां सरीखी उदारो रे।
हिवड़ां विरली पंचम आरो ॥२३॥

पिंडत मरण करी पद पावै रे, अति कष्ट कदाचित आवै।
आचार्य सूं वेमुख नहीं थावे ॥२४॥

एहवी जोतां शासन सिणगारो रे, इसड़ा गुण आदरो नर नारो रे।
तेह थी पांमियै भवदधि पारो रे ॥२५॥

---

१. लाहो नरभव नो हद लीधो, अणसण पौहर अढाई समृधो।
सती जीत नगारो दीधो ॥
पाली सैहर पिंडत मरण पायो, उगणीसै आठे कातिक माह्यो।
जश जोतां तणो हद छायो ॥
मढ़ी कीधी है खंड इगताली, महोछव कीधा अधिक निहाली।
ए तो रीत ससार नी भाली ॥
(जोता० गु० व० ढ़ा० १ गा० १९ से २१)

जोतां सती तणा गुण गाया रे, परम हरष आनंद पाया रे ।
सुध जय जश करण सुहाया ॥२६॥
(जोता० गु० व० ढ़ा० १ गा० २२ से २६)

ख्यात, शासन विलास ढ़ा० २ गा० ४२, भिक्षुयशरसायण ढ़ा० ५२ गा० १८ तथा शासनप्रभाकर ढा० ३ गा० ६५, ६६ मे साध्वीश्री से सवधित कुछ उल्लेख मिलता है ।

४९. साध्वी श्री नोरांजी (सिरियारी)

(संयम पर्याय सं० १८५७-१८७२)

गीतक छन्द

शहर सिरियारी सुरंगा सैकड़ों श्रावक जहां।
वह रही है सजल धारा धर्म-गंगा की वहां।
सती 'नोरां' उसी पुर की सुहागिन वय में प्रवर।
छोड़कर पति पुत्र को वन गई साध्वी श्रेष्ठतर[1] ॥१॥

साल पन्द्रह पाल के चरित्र कृतकृत्या वनी।
अंत में अनशन ग्रहण कर लिख गई नव जीवनी।
ग्राम 'खेजड़ला' सुवत्सर वहत्तर का आ गया।
सफल करके काम अपना नाम तो पाया नया[2] ॥२॥

१. साध्वी श्री नौराजी मारवाड़ मे सिरियारी वासिनी थी। उन्होने पति और पुत्र को छोड़कर स० १८५७ में दीक्षा स्वीकार की[1]।

(ख्यात)

साध्वी जोताजी की दीक्षा इसी वर्ष जेठ महीने में हुई थी अतः साध्वी नौराजी की दीक्षा उनके वाद इसी वर्ष जेठ या अषाढ महीने में हुई।

इस वर्ष पाच सुहागिन वहनों की दीक्षा हुई—१. हस्तूजी (४५), २. कस्तूजी (४७), ३. कुशालांजी (४६), ४. जोताजी (४८), ५. नोरांजी (४९)।

इनका वर्णन साध्वी हस्तूजी, कस्तूजी के प्रकरण मे कर दिया गया है।

२. साध्वी श्री ने लगभग १५ वर्ष संयम का पालन कर सं० १८७२ खेजड़ला (मारवाड) में आजीवन अनशन कर पंडित मरण प्राप्त किया।[2]

(ख्यात)

---

१. सिरियारी ना पुत्र पिउ तज, चारित्र लीधो चित्त आणी।

(शासन विलास ढ़ा० २ गा० ४३)

२. वोहित्तरे अणसण खेजडले, सती नोरांजी सुखदाणी।

(शासन विलास ढा० २ गा० ४३)

नवराजी सथारो खेजरले कीधो।

(संत गुणमाला-पडित मरण ढ़ा० २ गा० १२)

ख्यात, भिक्षुयशरसायण ढा० ५२ गा० १९ तथा शासनप्रभाकर ढ़ा० ३ गा० ६७ मे भी उपर्युक्त वर्णन है।

५०. साध्वी श्री कुशालांजी (पाली)

(संयम पर्याय सं० १८५९-१८७०)

रामायण-छन्द

एक साथ में एक हाथ से पाली में उनसठ की साल।
हुई तीन वहनों की दीक्षा भेंट मिली गुरु को सुविशाल।
नाम कुशालां नाथां वीजां पाली में ही जिनका वास।
स्वामीजी ने तीनों को ही रखा सती वरजू के पास[1] ॥१॥

सोरठा

हीरा सती समक्ष, थी छासठ की साल में।
परिचर्या प्रत्यक्ष, नगां सती की की सही[2] ॥२॥

भारी गुरु के साथ, पावस सत्तर साल का।
माधोपुर में ख्यात, की चालू संलेखना ॥३॥

दोहा

हुई असाता आंख की, फिर भी नहीं अधीर।
वीरवृत्ति की वस्तुत, दी है बडी नजीर ॥४॥

चढ़ते भावों से किया, अनशन-व्रत स्वीकार।
आया पन्द्रह प्रहर का, छाया सुयश अपार ॥५॥

संवत् सत्तर साल का, आया है श्रीकार।
नवमी शुक्ला कार्त्तिकी, मंगल मंगलवार[3] ॥६॥

संथारा चौवीसवां, भिक्षु समय के वाद।
हो पाया है आपका, फैला सुयश-निनाद[4] ॥७॥

जय जय शासन भिक्षु का, जय जय साधक-वृन्द।
सतयुग की सी भर रहा, कलि मे सरस सुगन्ध[5] ॥८॥

१. साध्वी श्री कुशालाजी पाली (मारवाड) की निवासिनी थी। उन्होंने पति वियोग के वाद सं० १८५९ पाली मे साध्वी श्री नाथाजी (५१) और वीजाजी (५२) के साथ आचार्य भिक्षु के हाथ से सयम ग्रहण किया। दीक्षा के वाद स्वामीजी ने तीनो साध्वियो को साध्वी वरजूजी (३६) को सौंप दिया।[1]

(ख्यात)

उक्त तीनो साध्वियो की दीक्षा-तिथि प्राप्त नहीं है। स० १८५९ मे स्वामीजी का चातुर्मास पाली था अत: वे दीक्षाए चातुर्मास मे अथवा मृगसर महीने में विहार करते समय हुई ऐसा प्रतीत होता है।

शासनप्रभाकर ढ़ा० ३ गा० ६९ मे उक्त तीनों साध्वियों को दीक्षा के बाद साध्वी रगूजी (२०) को सौपने का उल्लेख है जो भूल से लिखा गया है।

२. साध्वी श्री कुशालाजी सं० १८६६ मे साध्वी श्री हीरांजी (२८) के सिंघाड़े मे थी। उस वर्ष देवगढ़ मे साध्वी नगांजी (२९) ने सथारा किया था। उस समय उनकी परिचर्या करने वाली साध्वियो मे वे भी थीं[2]—१. हीरांजी, २. कुशालाजी (५०), ३. कुशालांजी (६१), ४. कुनणाजी (६२), ५. दोलांजी (६३)।

३. आचार्य श्री भारीमालजी का सं० १८७० का चातुर्मास माधोपुर मे था। उस वर्ष साध्वी कुशालाजी भी आचार्यप्रवर की सेवा मे थी।

(ख्यात)

---

१. गुणसठे वरस गुणवती, वहु चरण धार वुद्धिवती।
त्या मे तीन जण्या इक साथे, हद दिख्या भीक्खू नैं हाथे हो॥
कुशालाजी नाथांजी विजाजी, पाली ना विहु भ्रम-भांजी।
तीनू शीलामृत कूंपी, दीख्या देई नैं व्रजूजी नें सूपी हो॥

(भि० ज० र० ढ़ा० ५२ गा० २१, २२)

खुशालाजी, नाथां, विजाजी, पाली ना गुण रस कूपी।
गुणसठे इक दिन दीक्षा भिक्षु, देई व्रजूजी ने सूपी॥

(शासन विलास ढ़ा० २ गा० ४४)

पाली शहर सुहामणो, तिण मे लीधो सजम भार।
स्वाम भीखणजी रैं आगले, सति कुशालांजी तिणवार॥

(हेम मुनिरचित-कुशालां० गु० व० ढ़ा० १ दो० ३)

२. संवत अठारैं छांसटे, वड़ा हीरांजी हाजर विचार।
कुशालाजी दोनू कुनणां दोलांजी, सतियां सेवा कीधी श्रीकार॥

(नगां सती गु० व० ढ़ा० १ गा० ३२)

साध्वी श्री विहार करती हुई जब माधोपुर पधारी तब उनका विचार संलेखना करने का हुआ। अकस्मात् उनकी आंखो में भयकर पीड़ा हो गई किन्तु वे अडिग रही और सलेखना तप प्रारंभ कर दिया। चातुर्मास शुरू होने के पूर्व आषाढ़ महीने मे उन्होने ६ पारणे किये, २० दिन तपस्या मे बीते।

श्रावण मास में केवल ४ पारणे किये। इसी तरह भाद्रव मे चार, आश्विन मे दो, और कार्त्तिक महीने मे केवल तीन पारणे किये। इस तरह चातुर्मास काल मे कार्त्तिक शुक्ला ७ तक लगभग ११२ दिनों मे उन्होने केवल १३ दिन आहार किया। ९९ दिन तपस्या मे बीते।

(कुशाला सती गु० व० ढा० १ गा० १ से ४)

कार्त्तिक शुक्ला ८ सोमवार को चारतीर्थ के बीच बडे उमग से उन्होने आजीवन अनशन ग्रहण किया। सभी साधु-साध्वियो से क्षमायाचना की। आचार्य श्रीभारीमालजी ने दर्शन देकर उन्हें पाच महाव्रतो का पुनरारोपण करवाया। पन्द्रह प्रहर के पश्चात् कार्त्तिक शुक्ला ९ मगलवार को सथारा सपन्न हुआ—

च्यार तीर्थं सुणतां थकां रे, कियो संथारो जांण रे।
काती सुद आठम सोमवार में रे लाल, हर्ष घणो मन आण रे॥
साध साधवियां सकल स्यूं, रूड़ी रीत खमाय रे।
पंच महाव्रत फेर उचराविया रे लाल, श्रीमुख पूजजी आय रे॥
समत अठारै सित्तरे रे, काती सुदि नवमी मंगलवार रे।
संथारो आयो पनरा पोहर आसरै रे लाल, धन धन करै नर नार रे॥

(कुशाला० गु० व० ढा० १ गा० ५,६, १०)

(१) उक्त पद्यो मे साध्वी श्री का स्वर्गवास कार्त्तिक शुक्ला ९ को लिखा है।

ख्यात्, शासनविलास मे कार्त्तिक शुक्ला १० है।

(२) 'काती सुद दसम रै दिन आयु' (ख्यात)

(३) ल्होड़ी खुशालांजी संथारो, भारीमाल पै चउमासो।
कार्त्तिक सुदि दशमी तिथि वारु, माधोपुर में सुखरासो॥

(शासन विलास ढा० २ गा० ४५)

(४) सं० १८७० के इन्द्रगढ चातुर्मास मे कार्त्तिक शुक्ला १० के दिन मुनि रामजी (२३) का अनशन (मुनि हेमराजजी के साथ) संपन्न हुआ। उसी वर्ष माधोपुर चातुर्मास मे आचार्य श्री भारीमालजी के साथ साध्वी कुशालांजी ने आयुष्य पूर्ण किया।

(शासन विलास ढा० १ गा० २३ की वार्त्तिका)

उक्त चारो उल्लेखों मे प्रथम उल्लेख वास्तविक प्रतीत होता है। इस अति

स्पष्ट उल्लेख को ही सथारे सम्पन्न होने की सही तिथि माननी चाहिए।

शेप तीन उल्लेखो के अनुसार ऐसा भी संभव हो सकता है कि संथारा नवमी की रात्रि के पश्चिम काल मे सपन्न हुआ हो और दशमी तिथि का प्रातःकाल निकट होने से व्यवहार भाषा मे उसे दशमी को सपन्न हुआ लिखा हो।

शासनप्रभाकर ढा० ३ गा० ७० में उनकी स्वर्गवास तिथि कार्त्तिक कृष्णा १० लिखा है, जो गलत है।

अन्य स्थलो मे साध्वी श्री के अनशन आदि का उल्लेख इस प्रकार है:—

सत्तरे कुशालांजी संथारो, भारीमाल भेला सुविचारो।
माधोपुर मास कार्त्तिक मे, परलोकं पोहता छिनक मे ॥
(भि० य० र० ढ़ा ५२ गा० २३)

नवरांजी संथारो खेजरले कीधो, कुसालांजी रो माधोपुर सीधो।
पाली मे संजम लियो कर खंती, समरो मन हरखे मोटी सती ॥
(सतगुणमाला-पंडित मरण ढ़ा० २ गा० १२)

साध्वी श्री की वीर वृत्ति के सदर्भ मे लिखा है :—

कुशालांजी मोटी सती, तपस्या कीधी करूर।
केसरीया दर झांखीया, कर्म किया चकचूर ॥
(कुशाला० गुण० व० ढा० १ गा० ७)

४. स० १८६० भाद्रव शुक्ला १३ को स्वामीजी का स्वर्गवास हुआ। उसके बाद साधु-साध्वियो मे २३ सथारे हुए। साध्वी कुशालांजी का २४वां और मुनि रामजी का २५वा सथारा था :—

स्वाम भीखणजी पाछे किया, संथारा तेवीस।
चौवीसमो संथारो सती तणो, पचीसमो राम जगीस ॥
(कुशाला. गु० व० ढा० १ दो० २)

२५ सथारो की सूची इस प्रकार है :—

१. मुनिश्री उदयरामजी (३७) स० १८६० शेपकाल मे चैत महीने के पूर्व।
२. ,, सुखरामजी (६) स० १८६२ भादवा सुदि ६।
३. ,, जीवणजी (५१) स० १८६२ कातिक कृष्णा १।
४. ,, सुखजी छोटा (३५) स० १८६४ मिगसर वदि ८, ६ के आस-पास।
५. ,, भोपजी (४६) स० १८६६ भादवा सुदि ८।
६. ,, सामजी (२१) स० १८६६ मिगसर वदि ५।
७. ,, डूगरसीजी (४३) सं० १८६८ ज्येष्ठ शुक्ला ७।

८. साध्वीश्री अमरुजी (२३) सं० १८६०-६८ के बीच भारी० युग में।
९. „ तेजूजी (२५)
१०. „ नगांजी (२९) सं० १८६६ वैसाख सुदि १३।
११. „ पन्नाजी (३१) स० १८६०-६८ के बीच भारी० युग मे।
१२. „ गुमानाजी (३३) „
१३. „ खेमाजी (३४) „
१४. „ सरुपांजी (३८) „
१५. „ वनाजी (४१) सं० १८६७।
१६. „ ऊदाजी (४३) सं० १८६०-६८ के बीच भारी० युग मे।
१७. „ कुशालाजी (४६) स० १८६७ चैत वदि ७।
१८. „ दोलाजी (६३) सं० १८६७ कार्तिक कृष्णा १५।
१९. „ जसोदाजी (५४) स० १८६८ जेठ सुदि ७ और १८७० के बीच।
२०. „ डाहीजी (५५) „
२१. „ नोजांजी (५६) „
२२. „ कुशालाजी (६१) „
२३. „ कुन्नणाजी (६२) स० १८६८ जेठ सुदि ७ और १८७० के बीच।
२४. „ कुशालांजी (५०) स० १८७० कार्तिक शुक्ला ९ मगलवार।
२५. मुनि श्री रामजी (२३) स० १८७० कार्तिक शुक्ला १०।

स्वामीजी का स्वर्गवास होने के पश्चात् मुनि डूगरसीजी (४३) तक (स० १८६८ जेठ सुदि ७ तक) १८ सथारे हुए। उनमे उपर्युक्त उदयरामजी से डूगरसीजी तक ७ साधु और अमरुजी से दोलाजी तक ११ साध्वियां है। इनमें सात साध्वियो के सथारे समीक्षानुसार गिने गए है—अमरुजी, तेजूजी, पन्नाजी, गुमानाजी, खेमाजी, सरुपाजी, उदांजी।

मुनि डूगरसीजी के १८वें सथारे के बाद साध्वी कुशालाजी (५०) (सं० १८७० कार्त्तिक सुदि ९) के पूर्व पाच साध्वियो—जसोदाजी, डाहीजी, नोजांजी, कुशालाजी, कुन्नणाजी के समीक्षानुसार सथारे गिनने से २३ सथारे हो जाते है। साध्वी कुशालाजी का २४वां और मुनि रामजी का २५वा सथारा था।

उक्त सथारो मे १२ (सात और पाच) सथारो की सतगुणमाला—पडित मरण ढाल आदि कृतियो के माध्यम से अन्वेषणापूर्वक समीक्षा की गई है।

५. जिस प्रकार भगवान् महावीर के समय धन्ना, शालिभद्र आदि मुनियों ने घोरतम तपस्या करके आत्म-कल्याण किया। उसी तरह आचार्य भिक्षु के

शासन काल में अनेक साधु-साध्वियों ने वही आदर्श उपस्थित किया :—

वीर जीणंद मुख आगले, घनो सालभद्र मुनिराज ।
तपस्या करी भांत भांत स्यूं, सारया आतम काज ।।

पांचमा आरा नै विषे, भीखू सरीसा मुनिराय ।
त्यारां केइ साध साधवी, दिया जीतरा डंका बजाय ।।

(कुशाला० गु० व० ढा० १ गा० ८,६).

५१. साध्वी श्री नाथांजी (पाली)

(संयम पर्याय सं० १८५९-१८९७)

दोहा

पुर 'पाली' की वासिनी, 'नाथां' सती सुजान ।
मिले भिक्षु गुरु भाग्य से, खिले दिली अरमान ।।१।।

बहुत संपदा छोड़ के, धर कर विरति अपार ।
पाई संयम-संपदा, जिसका आर न पार ।।२।।

सौंपा वरजू को उन्हें, करने हित सुविकास[१] ।
वनकर के सहयोगिनी, रही अन्त तक पास[२] ।।३।।

सौम्य प्रकृति धृतिशालिनी, विनय-लता फलवान ।
शोभा ली है संघ में, खूब बढ़ाई शान[३] ।।४।।

साल छिन्नुवे में किया, पाली वर्षावास ।
मिला तृतीयाचार्य की, सेवा का अवकाश[४] ।।५।।

सप्त नवति की साल में, कर अनशन स्वीकार ।
पहुंची स्वर्ग जसोल से, जीवन लिया सुधार[५] ।।६।।

१. साध्वी श्री नाथांजी पाली (मारवाड़) की वासिनी थी। उन्होंने पति वियोग के बाद विपुल धन-संपत्ति[1] छोड़कर सं० १८५९ पाली में साध्वी श्री कुशालाजी (५०) और बीजांजी (५२) के साथ आचार्य भिक्षु के हाथ से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के पश्चात् स्वामीजी ने तीनों साध्वियों को साध्वी वरजूजी (३९) को सौंप दिया[2]। (ख्याति)

उक्त तीनों साध्वियों की दीक्षा तिथि प्राप्त नहीं है। सं० १८५९ में स्वामीजी का चातुर्मास पाली था, अत. वे दीक्षाए चातुर्मास में अथवा मृगसर महीने मे विहार करते समय हुई, ऐसा प्रतीत होता है।

२. साध्वी श्री वरजूजी के स्वर्गवास (स० १८८७) तक वे उनके साथ मे रही, ऐसा साध्वी रायकवरजी (११८) की गुणोत्कीर्तन ढाल के उल्लेख से जाना जाता है।

३. साध्वी श्री प्रकृति से सौम्य, सरल और बड़ी विनयवती थीं। सघ मे अच्छी शोभा प्राप्त की[3]। (ख्यात)

४. आचार्य श्री रायचन्दजी का सं० १८९६ का चातुर्मास पाली मे था। उस चातुर्मास में नाथाजी आदि साध्वियां गुरुदेव की सेवा मे थी। उनके साथ साध्वी कमलूजी (९४) और रायकंवरजी (११८) थी ऐसा साध्वी रायकवरजी के गुण वर्णन की ढाल से जाना जाता है। वहां आचार्यप्रवर ने साध्वी बीजांजी (१६२) को दीक्षा प्रदान की।

५. साध्वी श्री सं० १८९७ जसोल में संथारा कर दिवगत हुई[4]। (ख्यात)

---

१. ससार लेखे ऋद्धवती। (भि० ज० र० ढा० ५२ गा० २४)
वड़ी साहिबी तजी नाथाजी। (शासन विलास ढा० २ गा० ४६)

२. उक्त पद्यो से लगता है कि आप वहुत सम्पन्न घराने की थी। संवंधित पद्य साध्वी कुशालाजी (५०) के प्रकरण मे दिये गए है।

३. पाली प्रगट छिन्नुए, चौमासो सुखकार।
चौमासे भेला हुता, नाथांजी सुविशाल।
समणी एक थई तिहा, परम पूज पै न्हाल॥
(ऋषिराय सुजश ढा० ११ दो० १,३)

४. नाथांजी गाम जसोल न्हाली, वर सथारो सुविशाली।
ससार लेखे ऋद्धवती, समणी सुध, प्रकृति सोहती।
(भि० ज० र० ढा० ५२ गा० २४)
वड़ी साहिवी तजी नाथांजी, प्रकृति सौम्य अति सुखदाई।
सत्ताणुअे सथारो सखरो, गण मे अति कीरति पाई॥
(शासन विलास ढ़ा २ गा० ४६)

शासनप्रभाकार ढ़ाल ३ गा० ७१ मे भी उक्त वर्णन है।

साध्वी श्री रायकंवरजी (११८) मांढ़ा ने सं० १८८६ मे साध्वी श्री वरजूजी (३६) द्वारा दीक्षा ग्रहण की। उस समय साध्वी वरजूजी के सिंघाड़े मे साध्वी नाथांजी (५१) और कमलूजी (६४) थी।

साध्वी रायकंवरजी को १६ महीने साध्वी वरजूजी की सेवा का अवसर मिला। उनके स्वर्गवास के बाद उन्होने पिछले १६ महीने मिलाकर १२ वर्ष साध्वी नाथांजी की सेवा की यानी उनके सथारे तक उनके साथ मे रही। उसके बाद साध्वी कमलूजी की पिछले १२ वर्ष मिलाकर साधिक १५ वर्ष सेवा की। ऐसा साध्वी रायकवरजी (११८) की गुणवर्णन गीतिका मे विवरण मिलता है।

इस सदर्भ मे साध्वी नाथाजी के उपर्युक्त स्वर्गवास सवत् (१८९७) की पुष्टि होती है तथा साध्वी वरजूजी के दिवंगत स० १८८७ होने के बाद वे अग्रगण्या रूप मे विचरी, ऐसा भी प्रमाणित होता है।

५२. साध्वी श्री बींजांजी (पाली)

(संयम पर्याय सं० १८५६-१८८६)

रामायण छन्द

पुर पाली की बीजां श्रमणी धार्मिक कुल में था ससुराल ।
स्वामीजी के उपदेशों से विरति भावना हुई विशाल ।
सती कुशाल्गं नाथां सहचर पाया है संयम जीवन ।
गुरुचरणों में कर पाई है श्रद्धायुत अर्पित तनमन' ॥१॥

दोहा

वरजू के सहवास में, रहकर के वहु वर्ष ।
करती निर्मल साधना, भर कर भावोत्कर्ष ॥२॥

रामायण छन्द

किया सात सतियों से जयपुर साल छयासी का पावस ।
तन में हुई असाता कुछ कुछ फिर भी नस-नस में साहस ।
कर विहार हरिगढ़ में आई तीन दिवस स्थिति कर पाई ।
रह करके अजमेर पांच दिन 'कालु' 'वलुंदे' चल आई ॥३॥

दोहा

व्यथा हुई अतिसार की, तव तप हित तैयार ।
सतियां करती वर्जना, करें रोग-उपचार ॥४॥

वोली अवसर यह वड़ा, आत्मिक भाव समृद्ध ।
करके तप संलेखना, करूं मनोरथ सिद्ध ॥५॥

लोटोती में आ गई, कर धृति युक्त विहार ।
विनति कराई सुगुरु से, भेजी सतियां चार ॥६॥

आये गुरु तत्क्षण वहां, लेकर के मुनिवृन्द ।
फूली है बीजां सती, देख पूज्य-मुखचंद ॥७॥

स्वीकृति लेकर सुगुरु की, उद्यत हुई तुरंत ।
की चालू संलेखना, धर पौरुष अत्यंत ॥८॥

रामायण-छन्द

घोर तपस्या कर श्रमणी ने खींच लिया जीवन का सार ।
आत्मालोचन क्षमायाचना करके पाई हर्ष अपार ।
अन्तिम तेले के दिन अनशन ग्रहण किया भर परमोत्साह ।
तीन दिनों से सफल हो गया सकुशल ली सुरपुर की राह ॥९॥

दोहा

शुक्ल दूज वैशाख की, विदित छयांसी साल ।
लोटोती से ली विदा, सुयश चढ़ाया भाल ॥१०॥

सतियों ने सहयोगिनी, की सेवा भरपूर ।
लाभ लिया है समय का, किये कर्म-चकचूर[२] ॥११॥

१. साध्वी श्री वीजाजी पाली (मारवाड) की वासिनी थी। उन्होने पति वियोग के वाद सं० १८५६ पाली मे साध्वी श्री कुशालांजी (५०) और नाथांजी (५१) के साथ आचार्य भिक्षु के हाथ से संयम ग्रहण किया। दीक्षा के पश्चात् स्वामीजी ने तीनो साध्वियों को साध्वी वरजूजी (३६) को सौप दिया[1]। (ख्यात)

उक्त तीनों साध्वियो की दीक्षा-तिथि प्राप्त नही है। स० १८५६ में स्वामीजी का चातुर्मास पाली था अतः वे तीनो दीक्षाएं चातुर्मास में अथवा मृगसर महीने मे विहार करते समय हुई, ऐसा प्रतीत होता है।

२. साध्वी श्री वीजाजी अनेक वर्षो तक साध्वी श्री वरजूजी के सिंघाड़े में रह कर तप जप स्वाध्याय आदि द्वारा संयमी जीवन में उत्तरोत्तर निखार लाती गई।

वाद मे वे अग्रगण्या वनी। सं० १८८६ में उनका चातुर्मास जयपुर में था। वहा उनके शरीर मे कुछ अस्वस्थता हो गई, फिर भी साहसपूर्वक चातुर्मास के पश्चात् विहार कर कृष्णगढ आ गई। तीन दिन वहां रहकर अजमेर पधारी और वहा पाच दिन रही। वाद मे कालू और वलूंदा होती हुई पोष वदि ६ वुद्धवार के दिन लोटोती पधारी। वहां कुछ दस्तों की शिकायत हो गई तव उनका मन तपस्या करने के लिए उत्कंठित हो गया। साध्वियो ने निवेदन किया—'अभी आपकी शक्ति अच्छी है, अतः जल्दी न करें।' उन्होने उत्तर दिया—'अभी अच्छा अवसर है अतः मैं सहर्ष तप करके अपना कल्याण करूंगी।'

उस समय साध्वी श्री वीजाजी के साथ छह साध्विया और थी—हस्तूजी (५६), चन्नणाजी (६४), जसूजी (६६), मगदूजी (६६), दोलांजी (१०८), एक साध्वी और (नाम प्राप्त नही है)। उनमे से चार साध्वियो को निकटस्थ किसी गाव में आचार्य श्री रायचन्दजी के दर्शनार्थ भेजा। उनकी प्रार्थना पर आचार्य श्री ने साधु परिवार से लोटोती पधार कर साध्वी श्री को दर्शन दिये। साध्वी श्री वहुत प्रसन्न हुई।

पोष वदि ७ वृहस्पतिवार को साध्वी श्री ने सलेखना प्रारम्भ की। उसमें जो तप किया उसकी ख्यात आदि के अनुसार तालिका इस प्रकार है :—

३	२	१०	७	६	५	२	४	३	२	३	४	१५	३२
१	१	१	१	३	१	१	१	१	२	१	१	१	१

उसके वाद तेला किया। तेले का पारणा किये बिना ही आजीवन तिविहार अनशन ग्रहण कर लिया। अनशन मे केवल चौथे प्रहर मे पानी लेती थी और तीन प्रहर चौविहार रखती। अंत मे आत्मालोचन कर सभी के साथ क्षमायाचना

---

१. सवधित पद्य साध्वी कुशालांजी (५०) के प्रकरण में दिये गए है।

की। उनका मन अत्यत हर्ष-विभोर था। उन्हे तीन दिनो का सथारा आया। सं० १८८६ वैसाख शुक्ला ६ को लोटोती मे उन्होने समाधिपूर्वक पडित मरण प्राप्त किया।

(वीजा० गु० व० ढा० १ गा० १ से १४)

सहयोगिनी साध्वी श्री हस्तूजी (५६), जसूजी (६६), मगदूजी (६६) तथा दोलांजी (१०८) आदि ने साध्वी श्री की वडी तन्मयता से सेवा की :—

हस्तूजी चनणांजी जसूजी सती, वले मगदूजी ला ो ।
दोलांजी दिल ऊजले, कीधी सेवा तिवारो ॥

(वीजां० गु० व० ढा० १ गा० १५)

उक्त तप की तालिका ख्यात, शासन विलास ढा० २ गा० ४७ की वार्तिका तथा शासनप्रभाकार ढा. ३ गा० ७३ से ७७ के अनुसार दी गई है। वीजा सती गु० व० ढाल मे तप के पूर्वापर क्रम मे क्वचिद् भिन्नता है। वहां एक तेले की तपस्या भूल से छूटी हुई है।

सलेखना और सथारे के दिन ११८ (११२+३+३) होते है, पारणे के १७ दिन मिलाने से कुल १३५ दिन होते है जो साढे चार महीने हुए। पोष वदि ७ से वैशाख शुक्ला ७ तक पूरे साढे चार महीनो का मिलान वैठता है।

साध्वी श्री का स्वर्गवास सवत् गुण वर्णन गीतिका मे स० १८८७ और अन्य सभी स्थलो मे १८८६ है :—

समत अठारै सीत्यासीए, [मास वैसाख सुजाणो ।
शुक्ल पख छठ रे दिने, सथारो सीझ्यो जाणो ॥

(वीजा० गु० व० ढा० १ गा० १४)

तप दिवस वत्तीस सुतपिया, जिन जाप विजाजी जपिया।
तीन दिवस तणो संथारो, वरस छयांसीये अवधारो ॥

(भि० ज० र० ढा० ५२ गा० २५)

विजांजी चउमासे वहु तप, छेहडे दिवस वत्तीस कीयं।
अठम भवत करी संथारो, वर्ष छंयास्ये सुजश लीयं ॥

(शासन विलास ढा० २ गा० ४७)

२७ वर्ष आसरै संजम पाल्यो।

(ख्यात, शासन विलास ढा० २ गा० ४७ की वार्तिका)

गुणसाठा थी लेई, छियांसिया लग सार ।
सत्ताईस वर्ष आसरै, पाल्यो संयम श्रीकार ॥

(शासन प्रभाकर ढा० ३ गा० ७६)

साध्वी श्री ने २७ वर्ष संयम पर्याय का पालन किया। सं० १८५९ से १८८६ तक २७ वर्ष होते है अतः उनका स्वर्गवास सं० १८८६ (सावनादि क्रम) ही यथार्थ लगता है। गीतिका में सं० १८८७ है उसे चैत्रादि क्रम से समझना चाहिए।

जयाचार्य ने साध्वी श्री के गुणानुवाद की एक ढ़ाल स० १८९० के वैसाख महीने मे आमेट (मेवाड़) मे बनाई जिसमें उनके सलेखना संथारे का प्रतिपादन किया।

५३. साध्वी श्री गोमांजी (रोयट)

(संयम पर्याय सं० १८५९-१८९०)

नवीन छन्द

कौटुम्बिक काकी थी 'गोमा' जय-भीम-स्वरूप बंधुओं की।
दीक्षित हुई भिक्षु-शासन में धारी शिक्षा मुनि-सतियों की[१]।
आर्जव मार्दव आदि गुणों से सरसाया जीवन-उपवन को।
संवत्सर इकतीस साधना की केन्द्रित करके तनमन को[२] ॥१॥

दोहा

पांच प्रहर का शेष में, कर अनशन अविकार।
पहुंची अमर-निवास में, निकट किया शिव द्वार[३] ॥२॥

१. साध्वी श्री गोमांजी मारवाड़ मे रोयट वासिनी, गोत्र से गोलेछा (ओसवाल) और मुनि श्री स्वरूपचन्दजी (६२), भीमजी (६३) और जयाचार्य की ससार पक्षीया कौटुम्बिक चाची थी। उन्होंने पति वियोग के पश्चात् स० १८५९ के शेपकाल में दीक्षा ग्रहण की।[1]

(ख्यात)

दीक्षा कहां और किसके द्वारा संपन्न हुई, इसका उल्लेख नही मिलता। आचार्य भिक्षु ने सं० १८५८ का चातुर्मास केलवा (मेवाड) मे किया। उस वर्ष के समाप्त होने के पूर्व ही वे मारवाड मे पधार गये और स० १८५९ का चातुर्मास पाली मे किया। उसके वाद मारवाड मे ही विचरते रहे। मारवाड की अन्तिम यात्रा मे स्वामीजी द्वारा ४ साधु और ७ साध्वियों की दीक्षा हुई थी :—

उपकार कियो दोय वरस में, मारवाड़ में आय।
च्यार साध सात साधवियां हुई, त्यां संजम लियो सुखदाय ।।

(हेम मुनि कृत-भि० ज० र० ढा० ५ दो० २)

करता पर उपगार, आया मुरधर देश मझार ।
चरम उपगार हुवो घणो जी।।

च्यार भाया ने वायां सात, त्यां दीख्या लीधी जोड़े हाथ।
वैरागे घर छोडिया जी ।।

(वैणी मुनि कृत-भिक्षु चरित्र ढा० ५ गा० ४, ५)

साध्वियो की सात दीक्षाओ में तीन साध्वियों—कुशालाजी (५०), नाथांजी (५१) और वीजाजी (५२) की दीक्षा स० १८५९ पाली मे आचार्य भिक्षु द्वारा हुई ऐसा स्पष्ट उल्लेख है।

साध्वी गोमांजी की दीक्षा भी उक्त उद्धरणो के अनुमार स० १८५९ के शेपकाल मे आचार्य भिक्षु द्वारा मारवाड़ के किसी ग्राम मे सपन्न हुई। यही वात साध्वी गोमाजी के वाद की तीन साध्वियो—जसोदांजी (५४), डाहीजी (५५) और नोजाजी (५६) के सवध मे समझनी चाहिए।

---

१. गोमाजी रोयट ना वासी, वर्ष गुणसठे लीध दीक्षा।

(शासन विलास ढा० २ गा० ४८)

सरूप भीम जीत ना ताह्यो, कलुवे काकी कहिवायो।
गुणसठे दिख्या गुणवती, गोमांजी नेउए पार पोहती ।।

(भि० ज० र० ढ़ा० ५२ गा० २६)

शासनप्रभाकर ढ़ा० ३ गा० ८० मे भी उक्त उल्लेख है।

२. साध्वी श्री प्रकृति से भद्र, नीति से निर्मल और विनयवती थी। उन्होंने सम्यग् प्रकार से चारित्र की आराधना की। (ख्यात)

३. साध्वी श्री ने सं० १८९० में पांच प्रहर के संथारे से पंडित मरण प्राप्त किया[1]। उनका संयमी जीवन लगभग ३१ वर्ष का रहा।[1] (ख्यात)

---

१. वर्ष नेउए हद संथारो, सतगुरु नी धारी शिक्षा।

(शासन विलास ढा० २ गा० ४८)

भिक्षुयशरसायण ढा० ५२ गा० २६ तथा शासनप्रभाकर ढा० ३ गा० ८० में भी ऐसा उल्लेख है।

५४. साध्वी श्री जसोदांजी (खेरवा)

(दीक्षा सं० १८५६, स्वर्ग सं० १८६० के बाद १८६८ या १८७० के पूर्व)

दोहा

ग्राम आपका खेरवा, और जशोदां नाम।
पाया शुभ संयोग से, चरण-रत्न अभिराम[1] ॥१॥

कितने वर्षो बाद में, कर अनशन स्वीकार।
लिया पंथ सुरधाम का, किया आत्म-उद्धार[2] ॥२॥

१. साध्वीश्री जसोदांजी खेरवा (मारवाड़) की वासिनी थी। उन्होंने पति वियोग के वाद सं० १८५६ के शेषकाल मे दीक्षा स्वीकार की।

(ख्यात)

दीक्षा से सवंधित वर्णन साध्वी गोमांजी (५३) के प्रकरण में कर दिया गया है।

२. साध्वी श्री ने अन्त में अनशन कर समाधिपूर्वक पंडित मरण प्राप्त किया। (ख्यात)

जशोदां खेरवा नी वासी, डाहीजी नोजांजी विमासी।
संजम भीक्खू छतां सारो, वहु वर्सां पाछै संथारो॥

(भि० ज० र० ढा० ५२ गा० २७)

सती जसोदां डाही नोजां, स्वाम छतां संजम सारो।
वर्ष कितंइक चरण पाल नैं, अणसण करि पांमी पारो॥

(शासन विलास ढा० २ गा० ४६)

जसोदांजी डाहीजो दोनूं संथारो, नोजांजी पीसांगण उतरी पारो।

(संत गुणमाला—पडित मरण ढा० २ गा० १३)

वलि सतिय जसोदां, डाहां नोजां जाण।
स्वामी छतां दिक्षा, अणसण अत कराण॥

(शासनप्रभाकर ढा० ३ गा० ८२)

उक्त सभी उद्धरणो मे साध्वी श्री का अनशनपूर्वक दिवगत होने का उल्लेख है परन्तु स्वर्गवास सवत् नही मिलता। स्वामीजी के स्वर्ग-प्रस्थान के वाद २७ साध्वियां विद्यमान रही उनमे उनका नाम है तथा सतं गुणमाला-पडित मरण ढ़ा० २ मे भारीमालजी स्वामी के समय तक दिवंगत होने वाली साध्वियों में उनका नाम है। अतः उनका स्वर्गवास-सवत् १८६० भाद्रव शुक्ला १३ के वाद और सं० १८७८ माघ कृष्णा ८ के पूर्व ठहरता है।

स्वामीजी के स्वर्गवास के पश्चात् मुनि डूंगरसीजी (४२) तक (सं० १८६८ ज्येष्ठ शुक्ला ७ तक) १८ संथारे हुए। उसके वाद साध्वी कुशालाजी (५०) तक (सं० १८७० कार्त्तिक शुक्ला ६ तक) ६ संथारे हुए। उनमे समीक्षानुसार साध्वी जशोदांजी की गणना की गई है अत. उनका स्वर्गवास-संवत् १८६८ जेठ सुदि ७ के वाद स० १८७० कार्त्तिक सुदि ६ के पूर्व ठहरता है। देखें समीक्षा-साध्वी कुशालांजी (५०) के प्रकरण में।

स्वर्ग स्थान प्राप्त नही हैं।

५५. साध्वी श्री डाहीजी

(दीक्षा संवत् १८५६, स्वर्ग १८६० के बाद—६८ या ७० के पूर्व)

दोहा

मारवाड़ की वासिनी, था 'डाही' शुभ नाम।
दीक्षा लेकर भाव से, बड़ा कर लिया काम[1] ॥१॥

अनशन पर श्री भिक्षु के, 'बगतू' श्रमणी संग।
पहुंची सिरियारी सती, भरकर हृदय उमंग[2] ॥२॥

अनशन लेकर अन्त में, 'डाही' बनी कृतार्थ।
उन्नत भावों से किया, संयम-जीवन सार्थ[3] ॥३॥

१. साध्वी श्री डाहीजी मारवाड़ प्रान्त मे रहने वाली थी। उन्होने पति वियोग के बाद सं० १८५९ के शेषकाल मे दीक्षा स्वीकार की।

दीक्षा से सबधित वर्णन साध्वी गोमाजी (५३) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

वे मारवाड़ मे कौन से गाव की थी इसका उल्लेख ख्यात आदि मे नही मिलता।

२. आचार्य भिक्षु के सथारे के समय साध्वी श्री वगतूजी (२७) और झूमांजी (४४) के साथ साध्वी डाहीजी सिरियारी गई थी[1]।

३. साध्वी श्री ने कुछ वर्ष सयम की आराधना करने के वाद अनशन कर आत्म-कल्याण किया। (ख्यात)

उक्त संवध के पद्य साध्वी जशोदांजी (५४) के प्रकरण मे दे दिये गये हैं।

ख्यात आदि सभी स्थानों मे साध्वी श्री के अनशन पूर्वक दिवंगत होने का उल्लेख है परन्तु स्वर्गवास सवत् नही मिलता।

स्वामीजी के स्वर्ग प्रस्थान के वाद २७ साध्वियां विद्यमान रही उनमे उनका नाम हैं तथा सत गुणमाला-पडित मरण ढ़ा० २ मे भारीमालजी स्वामी के समय तक दिवगत होने वाली साध्वियो में उनका नाम है अतः उनका स्वर्गवास स० १८६० भाद्रव शुक्ला १३ के वाद और स० १८७८ माघ कृष्णा ८ के पूर्व ठहरता है।

स्वामीजी के स्वर्गवास के पश्चात् मुनि डूगरसीजी (४२) तक (सं० १८६८ ज्येष्ठ शुक्ला ७ तक) १८ सथारे हुए। उसके वाद साध्वी कुशालांजी (५०) तक (स० १८७० कार्त्तिक शुक्ला ९ तक) ६ सथारे हुए। उनमे समीक्षानुसार साध्वी जशोदांजी की गणना की गई है अत. उनका स्वर्गवास सवत् १८६८ जेठ सुदि ७ के वाद सं० १८७० कार्त्तिक सुदि ९ के पूर्व ठहरता है। समीक्षा देखें—साध्वी कुशालांजी (५०) के प्रकरण मे।

स्वर्ग स्थान प्राप्त नही हैं।

---

१. साधवियां वगतूजी झूमां डाहीजी, प्रणमै भीक्खू रा पाया।
(भि० ज० र० ढा० ६१ गा० ६)

५६. साध्वी श्री नोजांजी

(दीक्षा सं० १८५६, स्वर्गवास १८६० के वाद—६८ या ७० के पूर्व)

दोहा

मरुधरणी में मोद से, 'नोजां' करती वास।
यथासमय साध्वी बनी, करने आत्म-विकास[1] ॥१॥

कर सम्यग् आराधना, खींच लिया नवनीत।
प्राप्त किया उद्देश्य को, कर अनशन से प्रीत[2] ॥२॥

१. साध्वी श्री नोजांजी मारवाड़ प्रान्त में रहने वाली थी। उन्होंने पति वियोग के वाद सं० १८५६ के शेषकाल में दीक्षा स्वीकार की।

दीक्षा से संवंधित वर्णन साध्वी गोमांजी (५३) के प्रकरण में कर दिया गया है।

मारवाड़ मे वे कौन से गांव की थी इसका ख्यात आदि में उल्लेख नही मिलता।

२. साध्वी श्री ने कई वर्ष साधुत्व का पालन कर पीसांगण में अनशन किया और अपना जीवन सफल वनाया। (ख्यात)

उक्त संवध के पद्य साध्वी जशोदांजी (५४) के प्रकरण में दे दिये गये है।

ख्यात आदि सभी स्थानो मे साध्वी श्री का स्वर्गवास संथारे मे होने का उल्लेख है परन्तु स्वर्गवास-संवत् नही मिलता। स्वामीजी के स्वर्ग-प्रस्थान के वाद २७ साध्वियां विद्यमान रही उनमें उनका नाम है तथा संत गुणमाला—पंडित मरण ढ़ा० २ मे भारीमालजी स्वामी के समय तक दिवंगत होने वाली साध्वियों मे उनका नाम है अत: उनका स्वर्गवास सं० १८६० भाद्रव शुक्ला १३ के वाद और १८७८ माघ कृष्णा ८ के पूर्व ठहरता है।

स्वामीजी के स्वर्ग-प्रस्थान के पश्चात् मुनि डूगरसीजी (४२) तक (सं० १८६८ ज्येष्ठ शुक्ला ७ तक) १८ संथारे हुए। उसके वाद साध्वी कुशालांजी (५०) तक (सं०१८७० कार्तिक शुक्ला ६ तक) ६ संथारे हुए। उनमें समीक्षानुसार साध्वी जशोदांजी की गणना की गई है अत: उनका स्वर्गवास-संवत् १८६८ जेठ सुदि ७ के वाद सं० १८७० कार्तिक सुदि ६ के पूर्व ठहरता है। देखें समीक्षा-साध्वी कुशालांजी (५०) के प्रकरण मे।

शासन-समुद्र

द्वितीयाचार्य श्री भारीमालजी का शासन-काल

विक्रम सं० १८६० से १८७८

दोहा

भारी गुरु के समय में, सतियां चौवालीस ।
संघ सदस्याएं बनीं, श्रद्धायुत नत शीष ॥

५।७।२।१ साध्वी श्री आसूजी (पीपाड़)

(दीक्षा सं० १६८१ या ८२, स्वर्ग सं० १८७३ या ७४)

गीतक-छन्द

स्वजन पुर पीपाड़ के समकक्ष दोनों पक्ष थे।
संपदा वहु गेह में फल पुन्य के प्रत्यक्ष थे।
वोध पाया सती हस्तू के मधुर उपदेश से।
किया दीक्षित फिर उन्होंने सुगुरु के आदेश से ॥१॥

छोड़ पति धन ज्ञाति आदिक विरति धर कर वलवती।
प्रथम शिष्या वनी भारीमाल की 'आशू' सती[१]।
साधुचर्या में कुशल वन किया ज्ञानार्जन परम।
वनी विदुषी आगमों की धारणा कर गहनतम ॥२॥

कला में व्याख्यान की अच्छी मिली है सफलता।
विनय लज्जा क्षमादिक की गई वढ़ती गुणलता।
दृष्टि की आराधना गुरुदेव की करती रही।
संघ में शोभा वढ़ी अति सुयश पाया है सही[२] ॥३॥

अग्रगण्या हो विचर कर किया वहु उपकार है।
भरे मानव-मेदिनी में धर्म के संस्कार है।
श्रावकों को व्रत धरा कर वनाये वारह व्रती।
चार वहनो को प्रवर्ज्या हाथ से दी भगवती[३] ॥४॥

चौथ भक्तादिक किया तप ऊर्ध्व वारह तक चढ़ी।
शीत ऋतु में शीत सहकर भाव से आगे वढ़ी[४]।
अंत में अनशन ग्रहण कर स्वर्ग 'लावा' में गई।
साल वारह में सवलतम फसल निपजी है नई[५] ॥५॥

१. साध्वी श्री आशूजी का, पीहर और ससुराल पीपाड़ (मारवाड़) मे था। उनके दोनों पक्ष धनाढ्य और सुप्रसिद्ध थे। उनके हृदय में साधु-साध्वियों के प्रतिबोध से यौवन के खिलते वसत मे वैराग्य के अकुंर प्रस्फुटित हुए। फिर वीस वर्ष की सुहागिन अवस्था मे पति एव विपुल संपत्ति को छोड़कर साध्वी श्री हस्तूजी (४५) द्वारा सं० १८६१ पीपाड़ मे दीक्षा स्वीकार की। वे आचार्य श्री भारीमालजी की प्रथम शिष्या वनी :—

समत अठारै इकसठे, संजम लीधो हो ए तो शहर पींपाड़।
हस्तुजी वडा रे हाथे करी, वीस वर्ष नी हो आसरै वयधार।
धिन धिन धिन आसूजी मोटी सती॥

घर सासरीया में ऋद्ध संपत घणी, पियर में पिण हो धन वहुत वखांण।
भरतार छोड़ी पूज भेटिया, सुखदाई हो सुवनीत सुजांण॥
पूज भारीमाल पाट वेठां पछै, प्रथम सिषणी हो आसूजी पुनवान।
(साध्वी आसूजी गुण वर्णन ढा० १,२,३)

उपर्युक्त गीतिका मे साध्वी श्री का दीक्षा स० १८६१ लिखा है। अन्य स्थानो में १८६२ है।

स० १८६२ दीक्षा।

(ख्यात)

'सैहर पींपाड़ तणा प्रीतम तज, वर्ष वासठे वर दिख्या जी।'
(शासन विलास ढ़ा० ४ गा०१)

दीक्षा अठारै वासठे, भण गुण पडित थायो जी।
(शासन प्रभाकर ढा० ५ गा० २)

गुण वर्णन ढ़ा० १ गा० ११ मे उनकी दीक्षा-पर्याय १२ वर्षों की लिखी है।

'संजम पाल्यो वारै वर्ष आसरै।'

पूर्वापर चिंतन करने से ढाल के अनुसार उनका दीक्षा सवत् १८६१ और ख्यात आदि के अनुसार १८६२ ठहरता है। ऐसा भी सभव है कि ढाल में संवत् सावनादि क्रम से और अन्य स्थानो मे चैत्रादि क्रम से हो। अत हमने दीक्षा सवत् १८६१ या ६२ लिखा है।

२. साध्वी श्री साधुक्रिया में जागरूक होकर ज्ञानार्जन करने लगी। उन्होने शास्त्रों की गहरी धारणा और व्याख्यान कला में अच्छी निपुणता प्राप्त की एवं पढ-लिखकर विदुषी वनी। विनय, लज्जा व क्षमादिक गुणो की अभिवृद्धि की। आचार्यप्रवर के इंगित और दृष्टि की सम्यग् आराधना कर संघ में अच्छा सुयश

प्राप्त किया[1]। (ख्यात)

३. साध्वी श्री ने सिंघाडबंध होकर ग्रामानुग्राम में विहार किया। अनेक व्यक्तियो को सुलभबोधि, श्रावक बनाया और चार बहनो को दीक्षित किया[2]।

१. साध्वी श्री चन्नणाजी (६४) 'खाटू' को सं० १८६६ मे दीक्षा दी।

२. ,, चतरुजी (६५) 'बाजोली' को स० १८६६ मे दीक्षा दी।

३. ,, नगाजी (७६) 'बोरावड़' को स० १८६६ आषाढ़ शुक्ला ५ को बागोट (मारवाड़) मे दीक्षा दी। दीक्षा तिथि साध्वी नगांजी के गुण वर्णन की ढ़ाल मे है।

४. साध्वी श्री दीपाजी (६०) 'जोजावर' को स० १८७२ जोजावर मे दीक्षा दी। (इन्ही साध्वियो की ख्यात के आधार से)

४. साध्वी श्री ने उपवास, बेले आदि से १२ दिन तक तपश्चर्या की। सर्दी मे बहुत शीत सहन किया[3]।

५. साध्वी श्री ने १२ वर्ष साधना कर स० १८७४ लावा मे अनशन सहित स्वर्ग प्रयाण किया[4]।

---

१. सूत्र सिद्धात सीखे सुविनय करी, खम्यावती लजवती गुणखांण ॥
भण गुण प्रवीण पडित थई, वखांण वाणी कला अधिक विचार ॥
आचार्य गुरु नी आगन्या, पालैं रूड़ी चालैं मुरजी प्रमाण।
प्रतीत घणी पेठ तेह नी, जसवंती एहवी आसूजी सयाण ॥
(आसू० गु० व० ढ़ा० १ गा० ३,४,६)

ख्यात मे लिखा है—सिंघाडबध उघडती आर्यां हुई।

२. सती घणां नै दियो साधूपणो, गामां नगरां करती उग्र विहार।
सती घणां जीवां नै समझाय नैं, अदराया श्रावक व्रत उदार।
केइकां नै सुलभबोधि किया, स्याणी सुगणी गण मे सुखकार।
(आसू० गु० व० ढ़ा० १ गा० ४,५)

३. चौथ छठादिक चूप स्यू, बारै तांई सती किया उपवास।
शीतकाले सह्यो सी आकरो, रुड़ा चित्त स्यूं तोड़ी कर्मां री रास ॥
(आसू० गु० व० ढ़ा० १ गा० १०)

४. समत अठार चिमंतरे अणसण, धुर शिषणी आसू शिख्या जी।
(शासन विलास ढा०४ गा० १)

आसूजी संथारो लावे दीपंती।
(संत गुणमाला—पडित मरण ढ़ा० २ गा० १३)

ख्यात, शासन प्रभाकर भारी० सती गु० व० ढ़ा० ५ गा० ३ मे स्वर्गवास सवत् १८७४ है।

गुण वर्णन ढाल के अनुसार उनका दीक्षा स० १८६१ एवं १२ वर्ष का साध्वी-जीवन मानने से उनका स्वर्गवास सं० १८७३ और ख्यात आदि के अनुसार दीक्षा सवत् सं० १८६२ एव १२ वर्ष का साध्वी-जीवन मानने से उनका स्वर्गवास संवत् १८७४ ठहरता है अतः हमने स्वर्गवास सवत् १८७३ या ७४ लिखा है।

जयाचार्य ने साध्वी के गुण वर्णन की एक ढाल सं० १८९९ फाल्गुन शुक्ला १५ को बोरावड (बगीची) मे बनाई और उनकी विशेषताओ का उल्लेख किया।

५८।२।२ साध्वी श्री झूमांजी (पाली)

(संयम पर्याय सं० १८६२-१८८२)

गीतक-छन्द

वास पाली शहर में था मरुधरा की गोद में।
साधना की वेदिका पर चढ़ी परम प्रमोद में[१]।
रही 'वरजू' पास अच्छा किया विद्याभ्यास है।
यत्न से व्याख्यान का भी हुआ अधिक विकास है ॥१॥

दोहा

अग्रगामिनी हो किया, विहरण पुर-पुर ग्राम[२]।
बीस साल की अवधि में, फलित हुआ सब काम[३] ॥२॥

१. साध्वी श्री झूमांजी पाली (मारवाड) वासिनी थी। उन्होंने पति वियोग के बाद सं० १८६२ में चारित्र ग्रहण किया[१]। (ख्यात)

२. दीक्षा के पश्चात् वे साध्वी श्री वरजूजी (३६) के सिंघाड़े मे रही। जयाचार्य कृत साध्वी श्री रंभाजी (७२) की ढ़ाल में उल्लेख है कि आचार्य श्री भारीमालजी ने सं० १८६८ में साध्वी श्री रंभाजी को दीक्षित कर साध्वी श्री वरजूजी और झूमांजी (झमकूजी) को सौंपा :—

वरजू झमकू नै गणी, सूंपी सुगुरु सयाण।
सेव करै साचै मने, रंभा गुण नी खांण॥

(रभां सती गु० व० ढा० १ दो० ४)

इससे जाना जाता है कि वे आरंभ से ही साध्वी वरजूजी के सिंघाड़े मे थी।

साध्वी श्री पढलिख कर व्याख्यान आदिक कला में निपुण वनी और अग्रगण्या रूप में विचर कर वहुत उपकार किया[२]।

(ख्यात)

साध्वी श्री सिंघाड़वंध हुई इसका ख्यात, शासन विलास ढ़ा० ४ गा० २ की टिप्पण तथा शासनप्रभाकर भारी० सती वर्णन ढा० ५ गा० ४ मे तो उल्लेख है ही, पर रंभा सती गुण वर्णन ढाल में भी उनका सिंघाड़वध होना प्रमाणित होता है। ढाल में उल्लेख है कि सं० १८८२ मे साध्वी झूमांजी के स्वर्गवास के पश्चात् उनके साथ की साध्वी श्री रंभाजी का सिंघाडा वनाया गया :—

संवत् अठारै वंयासिये, सती झमकू पहुंती परलोग।
ऋषिराय सिंघाड़ो रंभा तणो, कांई कीधो जाणी जोग॥

(रभां गु० व० ढ़ा० १ गा० ३)

इससे यह भी फलित होता है कि साध्वी झूमाजी साध्वी श्री वरजूजी के जीवनकाल मे ही अग्रगण्या वना दी गई, क्योंकि साध्वी वरजूजी साध्वी झूमांजी के वाद सं० १८८८ में दिवंगत हुई थी।

३. साध्वी श्री ने २० वर्ष चारित्र का पालन कर सं० १८८२ में स्वर्गगमन किया ऐसा उपर्युक्त पद्य में उल्लेख है।

---

१. सैंहर पाली ना वर्ष वासठे, संजम लीधो सुखकारी जी।

(शासन विलास ढ़ा० ४ गा० २)

शासनप्रभाकर ढ़ा ५ गा० ४ मे भी उक्त उल्लेख है।

२. कला वखाण तणी अति तीखी, भणी गुणी झूमा भारी।

(शासन विलास ढ़ा० ४ गा० २)

५।८।२।३ साध्वी श्री हस्तूजी 'छोटा' (पीपाड़)

(संयम पर्याय सं० १८६२-१८६६)

गीतक-छन्द

जन्म पुर पींपाड़ में ससुराल भी तो थी वहां।
पति विरह के बाद 'हस्तू' ने लिया प्रभु-पथ महा।
साल बासठ में सुगुरु की पा गई सच्ची शरण।
दूर कर आवरण सारे बढ़ाये आगे चरण[1] ॥१॥

प्रकृति कोमल शांत सबको थी बड़ी सुखकारिणी।
एक से ले नौ दिवस तक हुई तप-विस्तारिणी।
शीत सर्दी में सहा ली ग्रीष्म में आतापना[2]।
हृदय से स्वीकार की है अन्त में संलेखना ॥२॥

त्राणुवें बेले बिना जल कर लिये सोल्लास है।
चार तेले कर किये पच्चीस फिर उपवास है।
पारणे में विगय छोड़ी स्वाद पर पाई विजय।
हुई खंखरभूत काया किया कर्मों का विलय ॥३॥

लिया अनशन आखिरी दो दिवस में ही फल गया।
भिक्षु की जन्मस्थली में दीप मंगल जल गया।
छिन्नुवे की साल में सुविशाल कर पंडित-मरण।
स्वर्ग में हस्तू गई है छोड़ के मधु संस्मरण[3] ॥४॥

दोहा

त्रीजां व्रतिनी ने किया, जब अनशन व्रत स्वस्थ।
हस्तू आदिक साध्वियां, थी उनके पार्श्वस्थ[4] ॥५॥

१. साध्वी श्री हस्तूजी की समुराल और पीहर पीपाड़ (मारवाड़) मे था। उन्होंने पति वियोग के बाद सं० १८६२ में दीक्षा स्वीकार की[1]।

२. साध्वी श्री दत्तचित्त संयम की आराधना करने लगी। वे प्रकृति से शांत, सुखदायिनी और बड़ी तपस्विनी हुई। उन्होने उपवास मे लेकर नौ दिन तक क्रमबद्ध तप किया। शीत ऋतु मे शीत सहा और ग्रीष्म ऋतु में आतपना ली[2]।

३. अन्त में उन्होने अपूर्व साहस के साथ संलेखना तप प्रारंभ किया जिसका क्रम लगभग एक वर्ष तक चला। उसमे ६२ चौविहार बेले, ४ तेले और २५ उपवास किये। पारणे के दिन विगय का परिहार कर दिया। इस प्रकार शरीर को सुखाकर पूर्ण वैराग्य भावना से आजीवन तिविहार अनशन ग्रहण किया। दो दिन के अनशन से सं० १८९६ कटालिया मे समाधि युक्त पंडित मरण प्राप्त किया[3]।

(हस्तू० गु० व० ढा० १ गा० ३ से ७)

४. साध्वी श्री बीजाजी (५२) ने जब सं० १८८६ लोटोती मे अनशन किया तब साध्वी हस्तूजी उनकी सेवा मे थीं[4]।

---

१. छोटा हस्तूजी हद छटा, पीहर सासरो पीपार।
वासठे संजम आदरयो, नित्य जपियै नर नार॥
(जयाचार्य कृत-हस्तू गु० व० ढा० १ दो० १)

२. हस्तूजी घणां हरप सू, होजी संजम पालै सार।
सुखदाई सहु गण भणी, कांई आछी प्रकृति उदार॥
चौथ छठादिक चूंन सूं हो, नव तांई निकलंक।
सीत उष्ण तप अति सही, मेटयो आतम वंक॥
(हस्तू० गु० व० ढा० १ गा० १, २)

३. वर्ष वासठे दिख्या लीधी, छेहडै तप कीधो भारी जी।
सखर सथारो वर्ष छिन्नुवे, हद लघु हस्तू हितकारी जी॥
(शासन विलास ढा० ४ गा० ३)
ख्यात, शासन विलास ढा० ४ गा० ३ की वार्तिका तथा शासनप्रभाकर ढा० ५ गा० ५ से ८ मे भी उक्त वर्णन है।

४. हस्तूजी चनणांजी, जसूजी सती, वले मगदूजी सारो।
दोलाजी दिल ऊजले, कीधी सेवा तिवारो॥
(बीजां० गु० व० ढा० १ गा० १५)

६०।२।४ श्री राहीजी

(दीक्षा सं० १८६२ और ६६ के बीच, भारी० युग में गणबाहर)

सोरठा

राही ने ली राह, संयम की घर छोड़ के।
किन्तु हुई गुमराह, सब नियमों को तोड़ के[1] ॥१॥

१. राहीजी ने पति वियोग के वाद दीक्षा ली।

(ख्यात)

उनके दीक्षा संवत् का उल्लेख नही है परन्तु उनके पूर्व की साध्वी हस्तूजी (५९) का दीक्षा संवत् १८६२ और वाद की साध्वी चन्नणांजी (६४) का दीक्षा संवत् १८६६ है। इससे राहीजी तथा क्रमांक ६१ से ६३ तक का दीक्षा संवत् १८६२ और ६६ के वीच ठहरता है।

वे कुछ वर्ष संघ मे रही। फिर अपनी दुर्वलता के कारण संयम का निर्वाह नही कर सकी और गण से पृथक् हो गई[1]। (ख्यात)

---

१. राही दीक्षा लीध रे, कर्म जोग गण सूं टली।
संजम कठण प्रसीध रे, कायर सूं ते किम पलै॥

(शासन विलास ढा० ४ गा० ४)

शासनप्रभाकर ढा० ५ सो० ९ में भी उक्त उल्लेख है।

६१।२।५ साध्वी श्री कुशालांजी (जीलवाड़ा)

(दीक्षा सं० १८६२ और ६६ के बीच, स्वर्ग १८६८ जेठ सुदि ७ और १८७० कार्त्तिक सुदि ६ के बीच)

गीतक-छन्द

जीलवाड़ा वासिनी चारित्र की अभ्यासिनी।
कुशालां श्रमणी बनी है परम आत्म-विकासिनी[1]।
साथ 'हीरां' के सजी है नगां की सेवा बड़ी[2]।
सफल यात्रा की स्वयं की जोड़ अनशन में कड़ी[3]॥१॥

१. साध्वी श्री कुशालांजी मेवाड़ मे जीलवाड़ा की निवासिनी थी। उन्होने पति वियोग के वाद दीक्षा स्वीकार की। (ख्यात)

उनके दीक्षा सवत् का उल्लेख नही है परन्तु उनके पूर्व की साध्वी हस्तूजी (५९) की दीक्षा स० १८६२ मे और वाद की साध्वी चन्नणांजी (६४) की दीक्षा स० १८६६ मे हुई अतः उनकी दीक्षा स० १८६२ और ६६ की मध्यावधि मे हुई।

२. साध्वी श्री नगाजी (२९) ने स० १८६६ वैशाख शुक्ला १३ को देवगढ़ मे अनशन सपन्न किया। उस समय साध्वी कुशालांजी साध्वी हीराजी (२८) के साथ थी और उन्होने नगांजी की सेवा की। अन्य साध्विया—कुशालांजी (५०) 'पाली', कुनणांजी (६२) 'केलवा' और दोलांजी (६३) 'कांकडोली' थी[1]।

३. साध्वी श्री ने वहुत वर्ष संयम का पालन कर अनशन पूर्वक पंडित मरण प्राप्त किया। ऐसा ख्यात तथा शासनप्रभाकर ढा० ५ गा० १० मे उल्लेख है किन्तु वहां स्वर्गवास संवत् नही है।

संत-गुणमाला-पंडित मरण ढाल में भारीमालजी स्वामी के समय तक दिवंगत साध्वियो मे उनका नाम है :—

कुशालांजी कुनणांजी संथारे सूरी…

(संत गुणमाला-पंडित मरण ढा० २ गा० १४)

इससे इतना स्पष्ट होता है कि वे स० १८६६ वैशाख शुक्ला १३ (देखें टिप्पण सं० २) के वाद और स० १८७८ माघ वदि ८ के पूर्व भारीमालजी स्वामी के युग मे अनशन पूर्वक दिवंगत हुई।

समीक्षा :—

स्वामीजी के स्वर्गवास के वाद सं० १८६८ जेठ सुदि ७ तक मुनि श्री डूंगरसीजी (४३) का १८वां सथारा हुआ। उन संथारो मे उनका सथारा गर्भित नही होता। उसके वाद स० १८७० कार्त्तिक सुदि ९ तक साध्वी कुशालाजी (५०) का २४ वा सथारा हुआ ऐसा उनकी गुण वर्णन ढाल में लिखा है। उन संथारो मे उक्त कुशालाजी के नाम की परिगणना की गई है। अतः उनका सथारा सं० १८६८ जेठ सुदि ७ के वाद और स० १८७० कार्त्तिक शुक्ला ९ के पूर्व सम्पन्न हुआ। (देखें समीक्षा—कुशालांजी (५०) के प्रकरण मे)

---

१ संवत् अठारै छासटे समै, वड़ा हीराजी हाजर विचार।
कुशालांजी दोनूं, कुनणां दोलांजी, सतियां सेवा कीधी श्रीकार॥
(नगां० गु० व० ढ़ा० १ गा० ३२)

६।२।२।६ साध्वी श्री कुन्नणांजी (केलवा)

(दीक्षा सं० १८६२ और ६६ के बीच, स्वर्ग १८६८ जेठ सुदि ७ और १८७० कार्तिक सुदि ६ के बीच)

रामायण-छन्द

ग्राम केलवा मेदपाट में सती कुन्दना का सुविदित।
जोगीदास रमण जो उनके हुए भिक्षु युग में दीक्षित।
साध्वी बनी कुन्दना पीछे चले गये वे जब सुरधाम।
धन्य धन्य कहलाई श्रमणी कर पाई सर्वोत्तम काम[1] ॥१॥

दोहा

संयम में रम कर सदा, करती रही विहार ।
अनशन करके अंत में, जीवन लिया सुधार[2] ॥२॥

१. साध्वी श्री कुन्नणांजी केलवा (मेवाड़) की वासिनी थी'।

(ख्यात)

उनके पति मुनि जोगीदासजी (४५) गोत्र से चोरड़िया (ओसवाल) थे। उन्होंने पत्नी (कुन्नणांजी) को छोड़कर सं० १८५७ या ५८ मे आचार्य भिक्षु के पास दीक्षा स्वीकार की थी। सं० १८५९ के 'पीसांगण' चातुर्मास मे उनका चौविहार अनशन मे स्वर्गवास हो गया था। (विस्तृत वर्णन उनके प्रकरण मे पढ़ें।)

तत्पश्चात् आचार्य श्री भारीमालजी के युग मे साध्वी कुन्नणाजी ने संयम ग्रहण किया :—

सती खुशालां जीलवाड़ा नी, केलवा री कुनणा धारी जी।
जोगीदासजी चल्यां चरण तसु, तास त्रिया अति सुखकारी जी॥

(शासन विलास ढ़ा० ४ गा० ४)

ख्यात, शासन विलास ढाल ४ गा० ४ की वार्तिका तथा शासनप्रभाकर ढ़ा० ५ गा० ११ मे भी उक्त वर्णन है।

साध्वी कुन्नणांजी के दीक्षा सवत् का उल्लेख नही है परन्तु उनके पूर्व की साध्वी हस्तूजी (५९) का दीक्षा संवत् १८६२ और वाद की साध्वी चन्नणांजी (६४) का दीक्षा संवत् १८६६ है, इससे उनकी दीक्षा १८६२ और १८६६ के बीच मे हुई।

२. ख्यात तथा शासनप्रभाकर ढ़ाल ५ गा० १२ मे लिखा है कि वे वड़ी उत्तम साध्वी थी। उन्होने वहुत वर्ष सयम पालन कर अपना कल्याण किया पर वहां स्वर्गवास सवत् नही है।

साध्वी नगांजी (२९) की गुण वर्णन ढ़ा० १ गा० ३२ मे लिखा है कि उन्होंने स० १८६६ वैशाख शुक्ला १३ को देवगढ़ मे अनशन सपन्न किया। तव साध्वी कुन्नणांजी साध्वी हीराजी (२८) के साथ थी और उन्होने नगांजी की सेवा की। अन्य साध्वियां—कुशालांजी (५०) 'पाली', कुशालांजी (६२) 'जीलवाड़ा' और दोलांजी (६३) 'कांकरोली' थी।

संत गुणमाला-पडित मरण ढा० २ गा० १४ मे भारीमालजी स्वामी के समय तक दिवंगत साध्वियो मे उनका नाम है तथा सथारे का उल्लेख है :—

कुशालांजी कुनणांजी संथारे सूरी'''।

इससे इतना स्पष्ट हो जाता है कि वे सं० १८६६ वैशाख शुक्ला १३ के वाद और १८७८ माघ वदि ८ के पूर्व भारीमालजी स्वामी के युग मे अनशनपूर्वक दिवंगत हुई।

समीक्षा :—

स्वामीजी के स्वर्गवास के वाद सं० १८६८ जेठ सुदि ७ तक मुनिश्री डूगरसीजी (४३) का १८वा संथारा हुआ। उन सथारो मे उनका नाम गर्भित नही होता। उसके वाद सं० १८७० कार्तिक शुक्ला ६ तक साध्वी कुशालांजी (५०) का २४वां सथारा हुआ, ऐसा उनकी गुण वर्णन ढ़ाल मे लिखा है। उन संथारो मे उक्त साध्वी कुन्नणांजी के नाम की गणना की गई है अतः उनका संथारा स० १८६८ जेठ सुदि ७ के वाद और १८७० कार्तिक शुक्ला ६ के पूर्व संपन्न हुआ। (देखे समीक्षा—साध्वी कुशालांजी (५०) के प्रकरण मे)।

६३।२।७ साध्वी श्री दोलांजी (कांकड़ोली)

(दीक्षा सं० १८६२ और ६६ के बीच, स्वर्गवास १८६७)

रामायण-छन्द

जन्मभूमि श्रीजीद्वारा में हेम-नन्दना 'दोलां' की ।
सगी भतीजी सत 'सतयुगी' 'रूपां सती 'कुशाला' की ।
हुई कांकरोली में शादी थे तलेसरा ससुरादिक ।
दीक्षित हुई भिक्षु शासन में विरति भाव से अधिकाधिक[1] ॥१॥

प्रकृति-भद्रता वचन-मधुरता आदि गुणों से चमकाई ।
सुविनीता शिष्या गुरुवर की गण में अति शोभा पाई[2] ।
उपवासादिक तप के द्वारा तन से सार निकाला है ।
आजीवन चल संयम पथ पर जीवन को उजवाला है ॥२॥

सोरठा

अनशन का सुविशाल, तिलक लगाया भाल पर ।
आई सडसठ साल, लाई प्रभु निर्वाण दिन ॥३॥

पाई मुक्ता सीप, आराधक पद प्राप्त कर ।
जले भावना दीप, फले दिली अरमान सब[3] ॥४॥

दोहा

नगां सती सुरपुर गई, कर अनशन शालीन ।
आप उस समय थी वहां, सेवा में लहलीन[4] ॥५॥

१. साध्वी श्री दोलाजी नाथद्वारा के भोपाशाह सोलंकी के पुत्र हेमराजजी की पुत्री थी। मुनि श्री खेतसीजी (२२), साध्वी श्री रूपांजी (३७) और कुशालांजी (४६) की भतीजी थी। उनका विवाह कांकड़ोली के तलेसरा (ओसवाल) परिवार मे हुआ। उन्होंने पति वियोग के वाद पूर्ण वैराग्य से चारित्र ग्रहण किया :—

सती दोलांजी सोभती, पीहर श्रीजीदुवार।
कांकरोली में सासरो, तलेसरा कुलधार ॥
सतजोगी स्वामी तणा जी, सगी भतीजी सुखदाय।
दोलांजी दिल ऊजलै जा, चारित्र लियो ओछाय ॥

(दोलां० गु० व० ढ़ा० १ दो० १ गा० १)

हेम-सुता दोलांजी नामो, सतयुगी नी भतीजी तामो।
धारचो चरित गुणमणि धामो ॥

(सतजुगी चरित्र ढ़ा० ८ गा० २)

ख्यात, शासन विलास ढा० ४ गा० ६ तथा शासनप्रभाकर ढ़ा० ५ गा० १३ में उनको मुनि खेतसीजी की वहिन लिखा है जो भूल से लिखा गया प्रतीत होता है क्योंकि वे मुनि खेतसीजी के छोटे भाई हेमराजजी की पुत्री थी, अतः खेतसीजी स्वामी की भतीजी हुई न कि वहिन।

उनका दीक्षा संतत् ख्यात आदि मे नही है, परन्तु उनके पूर्व की साध्वी हस्तूजी (५९) का दीक्षा संवत् १८६२ और वाद की साध्वी चन्नणांजी (६४) का दीक्षा संवत् १८६६ है अतः संवत् १८६२ और ६६ की मध्यावधि में उनकी दीक्षा हुई।

२. साध्वी श्री प्रकृति से भद्र और मधुर-भाषिणी थी। गुरु के प्रति वड़ा विनयभाव रखती थी। संघ में अच्छी शोभा प्राप्त हुई[1]।

३. साध्वी श्री ने उपवास, वेले आदि तप के द्वारा शरीर से अच्छा सार निकाला। अंत मे अनशन कर सं० १८६७ कार्तिक कृष्णा अमावस्या (महावीर

---

१. सुवनीत घणी सतगुर तणी जी, सुन्दर प्रकृति सुहाय।
गण मांहे महिमा घणी जी, निरमल वचन नरमाय ॥

(दोलां गु० व० ढ़ा० १ गा० २)

निर्वाण दिवस) के दिन स्वर्ग प्रस्थान कर दिया[1]।

४. साध्वी श्री नगाजी (२९) की गुण वर्णन ढाल १ गा० ३२ मे उल्लेख है कि जब उन्होंने सं० १८६६ वैशाख शुक्ला १३ को देवगढ़ में संथारा किया तब साध्वी दोलांजी साध्वी हीरांजी (२८) के साथ उनकी सेवा में थी। अन्य साध्वियां—कुशालाजी (५०) 'पाली', कुशालांजी (६२) 'जीलवाड़ा' और कुन्नणांजी (६२) 'केलवा' थी।

---

१. चौथ छठादिक चूंप सूं जी, तप कर नै तन ताय।
वरस घणे लगे विचरिया जी, सतसठे आसरै सुमन्न।
परलोके पोहंती सती जी, दोलां दिवाली दिन्न॥

(दोलां० गु० व० ढा० १ गा० ३,४)

तप बहु वर्ष सतसठे आसरै, दोलां अणसण दीवाली।

(शासन विलास ढा० ४ गा० ६)

ख्यात, शासनप्रभाकर ढा० ५ गा० १३ मे भी उक्त वर्णन है।

६४।२।८ साध्वी श्री चन्नणांजी (बड़ी खाटू)

(संयम पर्याय सं० १८६६-१८६६)

दोहा

गोत्र बाफणा तात का, बाजोली में वास।
वरमेचा ससुरादि थे, पुर खाटू के खास ॥१॥

बाल्यावस्था मे वसा, एक नया परिवार।
बाल्यावस्था में अहो, उजड़ गया ससार ॥२॥

बाल्यावस्था में रही, ब्रह्मचारिणी आप।
गहरी होती ही गई, धर्म ध्यान की छाप ॥३॥

भाग्य याग से मिल गये, सद्गुरु भारीमाल।
वैराग्यांकुर खिल गये, पाकर बोध विशाल ॥४॥

वय से सतरह साल की, आशू श्रमणी हाथ।
दीक्षित होकर के रही, आशू श्रमणी साथ' ॥५॥

छप्पय

सती चंदना ने किया श्रेय मार्ग स्वीकार।
चतुर्मुखी कर साधना जीवन लिया निखार।
जीवन लिया निखार ज्ञान का भरा खजाना।
सीखे सूत्र अनेक गूढ़ अर्थों को जाना।
की नानाविध धारणा कर उद्यम हरवार।
सती चंदना ने किया श्रेय मार्ग स्वीकार ॥६॥

छटा बड़ी व्याख्यान की था वाणी में ओज।
करती विनय विवेक से गुण-मणियों की खोज।

गुण-मणियों की खोज कला से की इकतारी।
थी गण गणि से प्रीति ध्यान आज्ञा पर भारी।
देख योग्यता सुगुरु ने दिया उन्हें अधिकार।
सती चंदना ने किया श्रेय मार्ग स्वीकार ॥७॥

अग्रगामिनी रूप मे पुर पुर किया विहार।
जन-जन को प्रतिवोध दे भरे धर्म-संस्कार।
भरे धर्म सस्कार तारना तरना सीखा[२]।
घोल विरति सिन्दूर लगाया तप का टीका।
रत हो जप स्वाध्याय मे रखती ऊर्ध्व विचार[३]।
सती चंदना ने किया श्रेय मार्ग स्वीकार ॥८॥

दोहा

वींजा ने सलेखना, अनशन किया सजोर।
तव सेवा में चन्दना, चार साध्वियां और[४] ॥९॥

जय मुनि ने खमणोर में, दीक्षित कर तत्काल।
'सुखां' आपको सौंप दी, करने हित संभाल[५] ॥१०॥

रामायण-छन्द

विचरी तीस साल तक भू पर करती जनता का उपकार।
वृद्धावस्था मे चल आई पुर सिरियारी आखिरकार।
रायचन्द गुरु वहा पधारे फूली श्रमणी दर्शन कर।
एक मास सेवा का अवसर उन्हें मिल गया है सुन्दर ॥११॥

हस्तू तपस्विनी के खातिर चतुर्मास भी सिरियारी।
हो पाया है उनका सहचर सात साध्वियां सुखकारी।
कार्तिक में अस्वस्थ हुई जब दर्शनार्थ 'दीपा' आई।
दे सहयोग चन्दना को सुसमाधि चित्त मे उपजाई ॥१२॥

मृगसर में फिर गुरुवर आये तन मन में खुशियां छाई।
स्थानादिक कारण से श्रमणी भिक्षुनगर चलकर आई।
स्वस्थ रही कितने दिन तो वे बढ़ी अचानक श्वास-व्यथा।
वल न किसी का चल सकता है अजब गजब यमराज-कथा ॥१३॥

जब तक हो न पूज्य के दर्शन तब तक भोजन का परिहार।
श्रावक जन ने सुगुरु पास में विनति कराई सोच विचार ।
पहुंच न पाये है गुरुवर तो पहले ही पहुंची परलोक ।
चार प्रहर का अनशन आया छाया है नूतन आलोक ॥१४॥

दोहा

साल छिन्नुवे की सुखद, नवमी कृष्णा पोष ।
चरम-स्थल कंटालिया, मुख-मुख पर जयघोष ॥१५॥

हस्तू जीवू आदि ने, दिया बड़ा सहयोग ।
सेवा तन मन से सजी, रख करके उपयोग[६] ॥१६॥

गुण वर्णन की मिल रही, ढ़ालें दो प्राचीन ।
ख्यात आदि में भी सरस, विवरण तत्कालीन[७] ॥१७॥

१. साध्वी श्री चन्नणांजी बाजोली (मारवाड) निवासी जगरूपजी बाफणा की पुत्री तथा स्वरूपचन्दजी की पौत्री थी। उनका विवाह 'वड़ी खाटू' (मारवाड़) के सूरजमलजी बरमेचा (ओसवाल) के साथ किया गया। बाल्यावस्था मे उनका विवाह हुआ और बाल्यावस्था मे ही प्रकृति-प्रकोप से उनके पति का देहान्त हो गया। वे बाल्यावस्था से ही ब्रह्मचारिणी रह कर अपना जीवन धर्मध्यान मे विताने लगी। कुछ समय पश्चात् आचार्य श्री भारीमालजी के दर्शन, सेवा एव प्रेरक उपदेश से उनके हृदय मे वैराग्य की धारा प्रवाहित हो गई[1]।

उन्होने पति वियोग के पश्चात् साधिक १७ वर्ष की वय (नाबालिग) मे साध्वी आशूजी (५७) द्वारा चारित्र ग्रहण किया। गुरुचरणो मे समर्पित करने पर आचार्य श्री भारीमालजी ने साध्वी चन्नणाजी को साध्वी आशूजी को ही सौप दिया। स्वय आचार्यप्रवर ने भी साध्वी चन्नणाजी को ज्ञानार्जन करवाया[2]।

२. साध्वी श्री आचार-विचार मे कुशल बनकर ज्ञान की आराधना मे संलग्न हुई। उन्होने जैन आगमो का वाचन कर गूढ़तम ज्ञान किया। सूक्ष्म-सूक्ष्म चर्चाओ की छानबीन कर अच्छी धारणा की। हजारो पद्य कठाग्र किये। उनकी व्याख्यान छटा निराली थी। पुरुषो की तरह आवाज बुलद थी। वे प्रकृति से सौम्य, भाग्यशालिनी, बुद्धिमती, साहसवती और विनयवती थी। गुरु के प्रति

---

१. पियर बाजोली मझै, कुल बाफणा कहिवाय।
पिता जगरूप पिछाणियै, चदणा सुता सुहाय॥
सासरिया खाटू मझै, बरमेचा कुल मांय।
पिउ विजोग बालपणे, बाल ब्रह्मचारी ताय॥
भारीमाल गुर भेटिया, पाम्यो परम सवेग।
चारित्र लेवा चित थयो, धारण तप नी तेग॥
(जय कृत-चदना० गु० व० ढा० १ दो० २ से ४)

बाजोली गाम वखाणिए, पुत्री चनणां गुणखाण।
पिता जगरूपजी जाणिए, पोती स्वरूपचन्दजी री पिछाण॥
सासरो खाटू सोभतो, सूरजमल नैं घर नार।
(हेम कृत-चदना० गु० व० ढा० १ गा० ४,५)

२. आसूजी उपगार आछो कियो रे, चदणाजी ने चारित्र दीध।
(जय कृत-चदना, सती गु० व० ढा० १ गा० ३)

सतरै वर्ष जाझेरी थकी, लीधो सजम भार।
भारीमाल भणाई भले भाव स्यू, सिषणी सूपी आसूजी नै एन॥
(हेम कृत-चदना० गु० व० ढा० १ गा० ५,६)

आंतरिक भक्ति रखती तथा गुरु-आज्ञा का पालन बडी जागरूकता से करती। वे बडी निर्मल और जैन शासन की शोभा बढाने वाली साध्वी हुई[1]।

उनके विविध गुणों से प्रसन्न होकर आचार्य श्री भारीमालजी ने उनका सिंघाडा बना दिया (ख्यात)। उन्होंने ३० साल ग्रामानुग्राम विहार कर अच्छा उपकार किया[2]।

३. उन्होने उपवास, बेले, तेले आदि अनेक बार किये। पचोला तथा अठाई की तपस्या भी की। तप के साथ क्षमादिक का विशेष अभ्यास करने से उनकी तपस्या अधिक देदीप्यमान हुई[3]।

४. स० १८८६ मे साध्वी श्री बीजाजी (५२) ने संलेखना एव अनशन किया तब वे उनकी सेवा मे थी। ऐसा बीजा सती गुण वर्णन ढा० १ गा० १५ मे उल्लेख है।

५. स० १८८९ मे गुजरात जाते समय मुनि श्री जीतमलजी (जयाचार्य) ने खमणोर (मेवाड) मे साध्वी श्री सुखाजी (१३५) को दीक्षा देकर साध्वी

---

१. आगम अर्थ अनोपम ओलख्या, झीणी चरचा जाण।
ग्रथ हजारा मूहढ़ै सीखिया, वारु अमृत वांण ।।
सूत्र सिद्धत घणा सती वाचिया, वखाण नी छिव ऐन।
भिन्न-भिन्न भेद सुणी भवि जीवड़ा, चित्त मे पामै चैन ।।
सील तणो घर भल मोटी सती, निर्मल नीका नैण।
याद आयां तन मन हीयो हुल्लसै, धिन-धिन सती रा वैण ।।
सुदर मुद्रा सती नी सोभती, रूप अनूप सुरंग।
मन वैराग पामै देख्यां थका, वाधै अति उचरग ।।
विनीत घणी गुर आग्या पालवा, सतगुर सूं वहु प्रीत।
धोरी जिण मार्ग जमायवा, सजम पालण नीत ।।
(जय कृत-चंदना० गु० व० ढा० १ गा० ५ से ९)

२. तीस वर्ष उपगार कियो घणो…।
(जय कृत-चदना० गु० व० ढा० १ गा० ११)

३. उपवास, वेला, तेलादिक वहु किया, पाच आठ अधिकार।
वहु क्रोध मान माया सती परहरया, गण मे घणी सुखकार ।।
(जय कृत-चदना० गु० व० ढा० १ गा० १०)

चन्नणांजी को सौंपा था[1]।

६. साध्वी श्री सं० १८९६ के शेषकाल मे सिरियारी पधारी। उस समय उनकी वृद्धावस्था थी और दीक्षित हुए इकतीसवां वर्ष चालू था। उनकी भावना गुरु-दर्शन के लिए उत्कंठित हो गई। भाग्ययोग से कुछ ही दिनो बाद आचार्य श्री रायचन्दजी सिरियारी पधार गए। आचार्यप्रवर के दर्शन कर साध्वी श्री बहुत हर्षित हुई। वहा लगभग ५५ साधु-साध्वियां सम्मिलित हो गये। आचार्य श्री ने लगभग एक महीने तक सेवा का अवसर प्रदान किया और साध्वी श्री को मधुर वचनो से संतुष्ट कर वहां से विहार किया[2]।

साध्वी श्री चन्नणांजी के साथ तपस्विनी साध्वी हस्तूजी (५९) थी। उनके लिए उन्होने ७ ठाणो से सं० १८९७ का चातुर्मास सिरियारी मे किया। वहां कार्त्तिक महीने मे साध्वी श्री चन्नणांजी अस्वस्थ हो गई। उस समय साध्वी श्री दीपांजी (९०) (संभवत उनका निकटवर्ती किसी ग्राम मे चातुर्मास था) उनके दर्शनार्थ आई। बडे मेलमिलाप से बातचीत की और अपनी सहानुभूति प्रकट की[3]।

चातुर्मास के पश्चात् मृगसर महीने मे आचार्य श्री रायचन्दजी ने सिरियारी पधार कर साध्वी श्री को दर्शन दिये और सात दिन सेवा कराई, जिससे उनका

---

१. त्यां आया था नाथद्वारा ना भाया वलि, इक रात्रि रह्या तिहा रंगरली।
रगरली तिहा सुखाजी नै चारित्र रत्न दे उमही।
वृद्ध चंदणांजी प्रते सूपी, गोगुंदे आया सही॥
(जय सुजश ढा० १९ गा० ३)

२. तीस वर्स उपगार कियो घणो, इगतीसमा वर्स माहि।
विचरत-विचरत सिरियारी आविया, पूज रा दर्शण री चाहि॥
पूज परम गुर ना दर्शण करी, पाम्यो बहु संतोप।
ठाणां पचावन आसरैं आविया, पूज वचन सुख पोष॥
पूज महाराज सती नै दर्शण दिया, एक मास आसरै जांण।
विहार कियो सती नै संतोष नै, पूज वच अमी समाण॥
(जय कृत-चंदना० गु० व० ढ़ा० १ गा० ११ से १३)

३. चौमास धार त्यांही रह्या, हस्तूजी तपसण रै हेत।
सात साधवियां हेत स्यू, सुमत गुप्त सावचेत॥
काती मास मे कारण ऊपनो, दीपांजी आया दर्शण काज।
हिलमिल हेत जूक्त करी, भलो दियो संजम तो स्हाज॥
(हेम कृत-चंदना० गु० व० ढ़ा० १ गा० १०,११)

मन प्रसन्नता से भर गया। सिरियारी मे जगह की असुविधा रहने से उनको मृगसर महीने में ही कंटालिया पहुंचा दिया गया। वे कुछ समय तक स्वस्थ रही पर आयुष्य के आगे किसी का वल नही चलता। अचानक उनके श्वास का प्रकोप वढ़ गया। उस समय उनकी आचार्य श्री के दर्शन की प्रवल इच्छा हुई और जव तक गुरुदेव के दर्शन न हो तव तक उन्होंने तीनो आहारों का त्याग कर दिया। उस समय आचार्यप्रवर दूधोड विराजते थे। श्रावकों ने वहां कासीद (सदेशवाहक) भेजकर साध्वी श्री को दर्शन दिलाने के लिए गुरुदेव से विनती करवाई।

परन्तु आचार्य श्री के वहा पधारने के पहले ही साध्वी श्री ने उक्त अभिग्रह के चार प्रहर वाद ही आजीवन अनशन कर लिया और चार प्रहर के वाद वे समाधि मरण को प्राप्त हो गई[1]।

इस प्रकार आचार्य श्री के दर्शन किये विना ही स० १८९६ पोष वदि ९ को कटालिया (स्वामीजी के जन्म-स्थल) मे ४ प्रहर के (तिविहार-ख्यात) अनशन मे वे स्वर्ग पधार गईं। श्रावको ने २५ खडी मंडी वनाकर उनका चरमोत्सव मनाया। तपस्विनी साध्वी हस्तूजी (५९) तथा जीवूजी (१२३) आदि ने साध्वी श्री को वहुत सहयोग दिया[2]।

---

१. मिगसर मास मे पूज पधारिया, चनणाजी हुई हर्ष अथाय।
जागादिक कारण जाण नै, दीधी कटालिये पोचाय॥
सुखे रहता काइएक साता हुई, काल आगे जोर नही कोय।
उठी असाता थर्णाचितवी, सांस रो कारण होय।
पवर कासीद पोचावियो, श्रावका धरी मन राग।
पूज रा दर्शण किया विनां, तीनूंई आहार ना त्याग।
चार पौहर वरत्या अभिग्रह मझै, पछै जावजीव किया पचखाण।
पचखाण सथारो आयो च्यार पोर नो, आसरै चट दे छोडचा प्राण॥
(हेम कृत-चदना० गु० व० ढ़ा० १ गा० १२ से १५)

२. पूज तणा दर्शन करिवा तणी, अतरंग थी वहु चाहि।
हिवै दर्शण करता दीसै महाराज ना, क्षेत्र विदेह रै मांहि॥
हस्तूजी जीवूजी आदि, सतियां दीयां वहु साज।
पोह विद नवमा अठारै सै छिन्नूंए, सती चंदणा सारचा आत्म काज॥
पचीस खडी माहडी श्रावकां करी, मोहछव वहुत विध ताहि।
सावद्य कार्य संसार ना, साधू नैं अनुमोदणा नाहि॥
(जय कृत-चंदना० गु० व० ढा० १ गा० २० से २२)

७. साध्वी श्री के गुणोत्कीर्त्तन की दो ढालें है :—

(१) पहली ढ़ाल का रचनाकाल सं० १८९६ पोष शुक्ला १२ गुरुवार और स्थान कंटालिया है जिसके रचनाकार सभवत: मुनि श्री हेमराजजी हैं क्योकि जयाचार्य उस समय थली के क्षेत्रों मे विहार कर रहे थे।

(२) दूसरी ढाल का रचनाकाल स० १८९६ वैशाख शुक्ला ६ और स्थान पाली है जिसके रचयिता—जयाचार्य (युवाचार्य अवस्था मे) हैं क्योंकि वे उस समय मारवाड़ होते हुए सं० १८९७ का चातुर्मास करने के लिए उदयपुर पधारे थे।

ख्यात, शासन विलास ढ़ा० ४ गा० ७ की वार्त्तिका तथा शासनप्रभाकर ढ़ा० ५ गा० १४ से २३ मे साध्वी श्री से सबधित कुछ वृत्तांत मिलता है।

वड खाटू ना वासी वारु, सोम प्रकृति फुन बुद्धि भारी।
चर संथारो वर्ष छिन्नुअे, चदणा वड़ी सुजश धारी ॥

(शासन विलास ढ़ा० ४ गा० ७)

६५।२।६ साध्वी श्री चतूजी बड़ा (बाजोली)

(संयम पर्याय सं० १८६६-१६१४)

दोहा

चतू के ससुराल का, था बाजोली वास।
दीक्षित छासठ साल में, आशू श्रमणी पास ॥१॥

हीरां के सान्निध्य में रहकर किया विकास।
ज्ञाता शास्त्रों की बनी, करके सतताभ्यास ॥२॥

कुशल बनी व्याख्यान में, प्रश्नोत्तर में तेज।
साहस बल को देख के, रखता भय परहेज ॥३॥

गीतक-छन्द

बड़ी निष्ठा साधुता में दोष मौलिक टालती।
सुगुरु की आज्ञा अखंडित प्राणप्रण से पालती[1]।
वर्ण काला देह का था नाम जिससे कालिका।
प्रकृति अल्हड, नीम सम कटु वचन की थी तालिका[2] ॥४॥

अग्रगण्या हो विचर कर किया धर्म प्रचार है।
बोध दे बहु भगिनियों को दिया संयम भार है[3]।
मिली अनुसंधान से कुछ नौंध पावस-काल की।
विवरणिका नौ साल से ले प्राप्त चौदह साल की[4] ॥५॥

दोहा

बीदासर पावस किया, सप्त नवति की साल।
किये सती सरदार ने, दर्शन वहां रसाल[5] ॥६॥

किया निवेदन सुगुरु से, यहां ठहरिये आप।
जिससे हम भी आज का, देखें मधुर मिलाप ॥७॥

रहे विराजित गुरु वही, आये मुनि श्री हेम।
खुशियां छा गई संघ में, देख परस्पर प्रेम[६] ॥८॥

रामायण-छन्द

भेंट चीपिया करके बोली—देंगे कांटे आप निकाल।
छड़ी बैत की भेंट इसलिए होंगे वैत (अवसर) ठीक गणपाल[७]।
उपालंभ वह वरजूजी को दिया जीत ने कुछ त्रुटि देख।
'झुला रहे हैं सुगुरु पालने में' बोली चत्रू सविवेक[८] ॥९॥

दोहा

सुनकर सुगुरु-उलाहना, रहती अति खामोश।
चिंतन करती गुरु बिना, कौन मिटाए दोष[९] ॥१०॥

रामायण-छन्द

किये बहुत व्रत वेले आदिक तीन वार सौलह सोत्कर्ष।
दस पचखाण निरंतर करती एक वार प्रति वर्ष सहर्ष।
शीतकाल में तीस साल तक शीत सहा है साहस धर।
पांच विगय का त्याग रखा है विरति भाव से बहु वत्सर[१०] ॥११॥

दोहा

अपने मुख से कर लिया, अनशन आखिरकार।
दो मुहूर्त के बाद में, सुरपुर गई सिधार ॥१२॥

चोथ चांदनी पोष की, संवत् दस पर चार।
ग्राम केलवा में हुआ, चरमोत्सव जयकार ॥१३॥

वरजू पीछे आपके, पाई अग्रिम स्थान[११]।
जय ने रचकर गीतिका, गाये है गुणगान[१२] ॥१४॥

१. साध्वी श्री चन्नूजी वाजोली (मारवाड़) की रहने वाली थी। उन्होंने पति वियोग के वाद साध्वी श्री आशूजी (५७) द्वारा सं० १८६६ मे दीक्षा स्वीकार की।

दीक्षा के पश्चात् आचार्य श्री भारीमालजी के आदेशानुसार वे साध्वी श्री हीरांजी (२८) के साथ मे रहीं[1]। साध्वी हीरांजी भारीमालजी स्वामी के समय में मुखिया साध्वी थी। उनके पास साध्वी चन्नूजी ने सिद्धान्तो का गहरा ज्ञान किया। लगभग तीस सूत्रों का वाचन किया। व्याख्यान कला में अच्छी निपुणता प्राप्त की। वे साधु क्रिया मे कुशल, वड़ी साहसवती और निर्भीक साध्वी हुई। तत्वचर्चा की उन्होने विविध धारणा की। प्रश्नों का जवाव देने मे वड़ी चतुर थी। स्व-परमती लोगो मे उनकी धाक पडती थी। संघ के प्रति वे गहरी निष्ठा रखती और आचार्यों की आज्ञा का पूर्ण जागरूकता से पालन करती[2]।

२. उस समय चन्नूजी नाम की कई साध्वियां होने से उनका दूसरा नाम 'कालिकी' पड गया था। सभवतः उनके शरीर का वर्ण काला था जिससे वे उक्त नाम से पुकारी जाने लगी।

उनकी प्रकृति मे कठोरता और वाणी मे कडुवापन था जिससे उन्हे 'पिशाची' भी कह दिया जाता था। (प्रकीर्णक पत्र प्रकरण ४ पत्र संख्या २७)

---

१. नगा सती गुण वर्णन ढाल गा० ३२ के अनुसार साध्वी श्री हीरांजी (२८) स० १८६६ वैशाख सुदि १३ को साध्वी श्री नगाजी (२६) के सथारे पर देवगढ मे थी। अतः इस तिथि के वाद वे उन्हें सौंपी गई थी।

२. समत अठारै छासठे हो, आसूजी सती पास।
वडा चन्नूजी सजम लियो, आणी अधिक हुलास॥
अधिक भक्त भारीमाल री हो, हीरांजी हद कीधी।
तास पास रहै महासती, सैणी सुगुणी प्रसीधी॥
सुमति गुप्ति सुखदायिनी हो, आछी आण आराधै।
वारु वखाण जमावती, शिव पथज साधै॥
सूत्र तीस वाच्या सती हो, अवसर नी जांण।
सग परिचय सती परहरै, गुर मोटो पिछांण॥
हिमतवान सती हुती हो, गुण आण अखंडै।
पिंडत मरण आरै करै, तो पिण गण नवि छडै॥
(चन्नूजी० गु० व० ढा० १ गा० २ से ४, ८)
ख्यात, शासन विलास ढा० ४ गा० ८ की वार्तिका तथा शासनप्रभाकर ढा० ५ गा० २४ से २६ मे भी उक्त वर्णन है।

३. साध्वी श्री ने सिंघाडबंध रूप में अनेक वर्षों तक विचर कर बहुत उपकार किया। बहुत भाई-बहनों को प्रतिबोध दिया और अनेक बहनों को दीक्षा दी।

उनके द्वारा दीक्षित साध्वियो की तालिका इस प्रकार है:—

१. साध्वी श्री झूमाजी (१०३) को सं० १८८१ शवगढ मे दीक्षा दी।
२. „ चादूजी (१०४) 'थादला' को सं० १८८१ थादला (शवगढ से तीन मील दूर) मे दीक्षा दी।
३. साध्वी श्री सिणगाराजी (१२१) 'कोलिया' को स० १८८७ मृगसर वदि १ को डीडवाणा में दीक्षा दी।
४. साध्वी श्री किस्तूराजी (१३१) 'लाडनू' को स० १८८८ मृगसर वदि ५ को लाडनू मे दीक्षा दी।
५. साध्वी श्री तुलछाजी (१३२) 'लाडनू' को सं० १८८८ मृगसर वदि ५ को लाडनू मे दीक्षा दी।
६. साध्वी श्री कुन्नणाजी (१३३) 'लाडनू' को स० १८८८ मृगसर वदि ५ को लाडनू मे दीक्षा दी।

क्रमाक १३१, १३२, १३३ की तीनो दीक्षाएं एक साथ हुई।

७. साध्वी श्री वरजूजी (१३६) 'रतनगढ' को स० १८६१ मे दीक्षा दी।
८. साध्वी श्री लिछमांजी (१४३) 'वीदासर को स० १८६२ मृगसर वदि ६ को सभवत· वीदासर में दीक्षा दी।
९. साध्वी श्री गुलाबाजी (१७२) 'लाडनू' को स० १८६७ मृगसर वदि ५ को वीदासर मे दीक्षा दी।
१०. साध्वीश्री तीजांजी (२०३) 'कोटासर' (डूगरगढ के पास) को स० १६०० फाल्गुन शुक्ला १ को वीदासर मे दीक्षा दी।
११. साध्वी श्री चांदूजी (२४८) 'पोखरजी' को स० १६०६ मृगसर वदि १२ को वाजोली के दीक्षा दी।
१२. साध्वी श्री ज्ञानाजी (२८६) को स० १६१० मृगसर वदि ३ को ईडवा मे ७० वर्ष की वय मे दीक्षा दी। ज्ञानाजी साध्वी चन्नूजी की वहन थी।

उपर्युक्त दीक्षाओ का विश्लेपण—

क्रम स० १२१, १३१, १३२, १३३, १३६, १४३ और १७२ की सात दीक्षाएं ख्यात मे केवल चन्नूजी के हाथ से लिखी है पर वहा वडा चन्नूजी (आप) तथा छोटा चन्नूजी (७०) 'तोसीणा' का उल्लेख नही है।

साध्वी श्री वरजूजी क्रमांक १३६ का सं० १६१० मे साध्वी चन्नूजी 'वड़ा'

के साथ रहने का उल्लेख मिलता है।

अतः इनकी दीक्षा हमने उनके हाथ से मानी है।

सं० १३१, १३२ तथा १३३ की दीक्षा एक ही दिन लाडनू में हुई। इनमें साध्वी श्री तुलछाजी (१३२) के गुणो की ढाल मे उल्लेख है कि साध्वी श्री चन्नूजी 'वड़ा' ने साध्वी तुलछांजी को अन्तिम समय (सं० १८९२ कार्त्तिक सुदि ४ को स्वर्गवास) मे वडा सहयोग दिया.—

वड़ी चन्नूजी साझ अजरो दियो, विनय वैयावच हो कीधी विविध प्रकार।
सती रा परिणाम चढ़ाविया, जश लीधो हो वीदासर सैहर मझार॥

(तुलछा० गु० व० ढ़ा० १ गा० १२)।

इस प्रकार साध्वी श्री तुलछाजी का उनके साथ रहने का उल्लेख मिलता है अतः इनकी तथा इनके साथ दीक्षित होने वाली साध्वी श्री किस्तूरांजी (१३१) तथा कुन्नणाजी (१३३) की दीक्षा भी हमने उनके हाथ से मानी है।

साध्वी श्री छोटा चन्नूजी (७०) का स० १८८८ का चातुर्मास किसनगढ़ में था, इससे भी उक्त कथन की पुष्टि होती है।

साध्वी श्री लिछमाजी (१४३) की दीक्षा स० १८९२ मे हुई। वे वीदासर की थी और साध्वी श्री वडा चन्नूजी का स० १८९२ का चातुर्मास वीदासर था, अतः इनकी दीक्षा भी उनके हाथ से मानने मे कोई आपत्ति नही लगती।

साध्वी श्री सिणगाराजी (१२१) का चन्नूजी 'छोटा' से सम्वन्धित कोई वर्णन नही मिलता अत: उनकी दीक्षा भी हमने उनके हाथ से मानी है।

साध्वी श्री गुलावाजी (१७२) 'आर्यादर्शन' की ढालो के अनुसार स० १९११, १२, १३, १४ में साध्वी चन्नूजी 'वड़ा' के साथ मिलती है तथा स० १८९७ में उनका चातुर्मास भी वीदासर था।

इससे यह दीक्षा उनके हाथ से प्रमाणित होती है।

४. उपर्युक्त दीक्षा प्रकरण से कुछ चातुर्मास इस प्रकार मिलते है :—

१. स० १८८७ मे उनका चातुर्मास डीडवाना मे था। वहां मृगसर वदि १ को उन्होने साध्वी श्री सिणगाराजी (१२१) को दीक्षित किया।
२. स० १८८८ मे उनका चातुर्मास लाडनू मे था। वहां मृगसर वदि ५ को उन्होने साध्वी श्री किस्तूराजी (१३१), तुलछांजी (१३२) और कुन्नणांजी (१३३) को एक साथ दीक्षा दी।
३. स० १८९२ मे उनका चातुर्मास वीदासर था। वहा उन्होने साध्वी लिछमांजी (१४३) को दीक्षित किया तथा साध्वी श्री तुलछांजी (१३२) कार्त्तिक शुक्ला ४ को उनके पास दिवगत हुई।

४. स० १८९७ मे उनका चातुर्मास वीदासर था। वहा मृगसर वदि ५ को साध्वी गुलावाजी को संयम दिया तथा चातुर्मास मे सरदारसती ने साध्वी श्री के दर्शन किये। (सरदार सुयश ढ़ा० ८ गा० १३)

५. स० १९०६ मे उनका चातुर्माम वाजोली था। वहां मृसगर वदि ३ को साध्वी श्री चादूजी (२४८) को चारित्र दिया।

६. सं० १९१० मे उनका चातुर्मास ईडवा था। वहा मृगसर वदि ३ को साध्वी श्री ज्ञानाजी (२८९) को दीक्षा प्रदान की।

स० १९१२ का काकडोली, सं० १९१३ का केलवा तथा स० १९१४ का भी कारण योग से केलवा चातुर्मास था जिसका उल्लेख आगे किया गया है।

'आर्यादर्शन' ढालो मे साध्वी श्री के कुछ चातुर्मास तथा तपस्या आदि का विवरण इस प्रकार मिलता है :

(१) स० १९०९ मे वे ९ ठाणो से थी। चातुर्मास स्थान प्राप्त नही है। चातुर्मास के वाद वृद्धावस्था के कारण न स्वय गुरुसेवा मे जा सकी और न साथ की साध्वियो को भेज सकी।

(२) स० १९१० मे उनका ८ ठाणो से मारवाड मे चातुर्माम था। वृद्धावस्था के कारण वे चातुर्मास के वाद गुरु-सेवा मे नही जा सकी। साथ की माध्वियो को भेजा। वे १५ दिन सेवा कर वापस मारवाड़ आ गई .—

आठ ठाणै वड़ चन्नू वृद्धा, समणी भणी पठाई।
पनरै दिवस आसरै दर्शण, कर फिर मरुधर आई॥
(आर्यादर्शन ढा० २ गा० ३)

उन्होने साध्वी श्री ज्ञानांजी (२८९) को मृगसर वदि ३ के दिन ईडवा मे दीक्षा दी थी। इससे लगता है कि स० १९१० मे उनका ईडवा चातुर्मास था।

(३) स० १९११ मे वे ८ ठाणो से थी। चातुर्मास स्थान उपलब्ध नही है। चातुर्मास के वाद उन्होने गुरुदर्शन कर तीन दिन सेवा की। उस वर्ष उनके साथ की साध्वियो ने इस प्रकार तप किया —

१ साध्वी श्री सेराजी (१७७) ने १७ किये।
२. ,, ऊमाजी (१७५) ने ८ किये।
३. ,, गुलावांजी (१७२) ने ११ किये।

(४) सं० १९१२ मे उन्होने ८ ठाणो से काकडोली चातुर्मास किया। चातुर्मास के पश्चात् उन्होने आचार्य श्री के दर्शन कर १५ दिन सेवा की। चातुर्मास में साध्वी श्री गुलावांजी (१७२) ने ९, ऊमांजी (१७५) ने ११ तथा सेरांजी (१७७) ने १५ दिन का तप किया।

(५) सं० १६१३ में उनका ८ ठाणों से केलवा में चातुर्मास था। चातुर्मास के बाद वे वृद्धावस्था से गुरुदर्शन नहीं कर सकी। साथ की तीन साध्वियों को भेजा। उन्होंने तीन दिन सेवा की। चातुर्मास में साध्वी श्री गुलाबांजी ने १२, ऊमांजी ने ६ और सेरूंजी ने १७ दिन का तप किया।

(६) स० १६१४ में वृद्धावस्था से उनका ८ ठाणों से चातुर्मास केलवा में ही हुआ। वहां उन्होंने ५ दिन, ऊमांजी ने १३ दिन, गुलाबांजी ने १२ और सेरूंजी ने २० दिन का तप किया।

क्रमश:

५. स० १८६७ में दीक्षा लेने के लिए उदयपुर जाते समय सरदारसती ने बीदासर चातुर्मास में साध्वी श्री के दर्शन किए :—

बीदासर चतरू सती, दर्शन किया तिवार।

(सरदार सुजश ढा० ८ गा०१३)

६. एक बार चातुर्मास के पश्चात् आचार्य श्री रायचंदजी राजनगर में विराज रहे थे। गुरु-दर्शनार्थ अनेक साधु-साध्वियां आये हुए थे। मुनि श्री हेमराजजी राजनगर पधारने वाले थे। उनके वहां पहुंचने से पहले आसपास के अनेक गावों के लोग एकत्रित हो गये। ऋषिराज प्रत्येक बार की तरह इस बार भी सामने पधार कर उन्हें वंदना करेंगे, इस दृश्य को देखने की सभी के दिलों में बडी उत्कंठा थी।

लेकिन उस दिन ऋषिराय सामने नहीं पधारे। मुनि श्री हेमराजजी ठहरते ठहरते स्थान पर पधार कर एक बाजोट (पट्ट) पर विराज गये। ऋषिराय ने बाजोट पर बैठे-बैठे उन्हें वदना कर ली। लोगों के मन में ऊहापोह खड़ा हो गया। वे सोचने लगे—'न जाने अब क्या होगा? उस समय जसराजजी 'मारू' ने ऋषिराज को उपालंभ के स्वरों में कहा—आपने यह क्या किया? आप सामने पधारते तो अनेक लोगों के हृदय में कितनी खुशी होती एवं कितने कर्म कटते।

मुनि श्री जीतमलजी (जयाचार्य) वहीं पास में थे। उन्होंने लोगों को टोकते हुए कहा—'आचार्य की इच्छा हो तो सामने जाए और इच्छा न हो तो न भी जाए। इस विषय में तुम गृहस्थों को बीच में पड़ने की क्या आवश्यकता है।'

यह सुनकर जन समूह को बड़ा आश्चर्य हुआ और जान लिया कि ये तो सब एक हैं।

बाद में मुनि श्री जीतमलजी ने एकान्त में ऋषिराय से निवेदन किया—'आपको बाजोट से नीचे उतर कर वंदना कर लेनी चाहिए थी।'

ऋषिराय ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—जीतमल! इतना ही क्यों मैं?

तो बहुत वार हेमराजजी स्वामी के सामने गया हूं और आगे भी जाता रहूंगा। इस वार तो इस कालकी साध्वी श्री चत्रूजी (६५) के कहने से नही गया। साध्वियो की इच्छा थी कि आप यहा विराजें रहे तो हम भी इस मिलाप को देख ले। (प्रकीर्णक पत्र प्र० ४ पत्र स० २७)

७. स० १९०८ मे जयाचार्य के पदासीन होने के पश्चात् साध्वी श्री ने एक चीपिया (कांटा निकालने की चीपडी) भेट किया जिसका सकेत था कि गुरुदेव ! आप सबके दुर्गण रूप काटो को निकाल देगे।

दूसरी एक 'वैत की छडी' भेट की जिसका तात्पर्य था कि आपके सब वैत (अवसर) मनोनुकूल होंगे। (प्रकीर्णक० प्र० ४ पत्र स० २७)

८. स० १९१० मे जयाचार्य कांकरोली के रेती-बाजार मे विराज रहे थे। आचार्यप्रवर ने साध्वी चत्रूजी के साथ की साध्वी वरजूजी (१३९) को किसी गलती के लिए कडा उलाहना दिया। तब साध्वी चत्रूजी ने मुस्कराते हुए कहा— 'देखो ! देखो ! गुरुदेव बच्चे (टाबर) को पालना (झूला) मे झुला रहे है।'

(प्रकीर्णक० प्र० ४ पत्र स० २७)

९. साध्वी श्री कठोर शब्दों मे दी गई गुरु-शिक्षा को सुनकर अस्थिर व अधीर नही होती.—

कठन वचन गुर सीख थी, थिर चित्त नै थाप्यो।

(चत्रू० गु० व० ढा०१ गा० ९)

१०. उन्होंने उपवास वेले आदि बहुत किये। तीन वार १६ दिन की तपस्या की। प्रत्येक वर्ष 'दश पचखाण' किये, बहुत वर्षो तक ५ विगय का परित्याग रखा। केवल एक 'कडाई विगय' महीने मे ५ दिन खाने का आगार (छूट) रखा। प्रत्येक साध्वी को चार पछेवडी रखना कल्पता है पर उन्होने तीस वर्ष तक सर्दी मे एक पछेवडी ओढी। तीन पछेवड़ी का परित्याग किया।[1]

११. साध्वी श्री सं० १९१४ का केलवा मे चातुर्मास सपन्न कर राजनगर पधारी। वहा उन्होने पोप सुदि ४ को दो मुहूर्त्त के चौविहार सथारे मे समाधि-

---

१. चौथ छठादिक बहु किया, सोलै किया तीन वार।
दसपचखाण किया वले, वरसोवरस विचार॥
तीन पछेवडी परहरी, शीतकाल मझार।
तीस वर्ष रै आसरै, आंणी हर्ष अपार॥
पच विगै न परहरी, बहु वर्ष सुजन्न।
विगै कडाई आचरी, मास में पंच दिन्न॥
(चत्रू० गु० व० ढ़ा० १ गा० ५ से ७)

मरण प्राप्त किया।[1]

उनके स्वर्गवास के समय उनके पास १. साध्वी चन्नूजी (१३८), २. गुलाबाजी (१७२), ऊमांजी (१७५), सेरूजी (१७७) तथा तीन साध्वियां और थी।

उनके स्वर्गवास के बाद उनके साथ की साध्वी चन्नूजी (१३८) का सिंघाड़ा हुआ ऐसा 'आर्यादर्शन' ढालों से ज्ञात होता है।

१२. जयाचार्य ने साध्वी श्री के गुणों की एक गीतिका बनाई। ख्यात, शासन-विलास ढा० ४ गा० ८ की वार्तिका तथा शासनप्रभाकर ढा० ५ गा० २८ से ३१ में भी साध्वी श्री से संबंधित कुछ वर्णन है।

---

१. दोय मोहरत रे आसरै, अणसण हद आयो।
राजनगर रूडी रीत सूं, वारू सुजश वधायो॥
उगणीसै चवदे समै, पोह सुदि चौथ पिछांण।
परभव में सती पांगरी, कीधो जन्म किल्यांण॥
(नन्दू गु० व० ढा० १ गा० ११, १२)
बाजोली रा चरण छासठे, बडी चन्नूजी अवधारी जी कांई।
उगणीसै चवदे संथारो, चोविहार सुगुण उजारी जी कांई॥
(शासन विलास ढा० ४ गा० ८)

६६।२।१० साध्वी श्री जसूजी (वीसलपुर)

(संयम पर्याय सं० १८६८-१८८८)

गीतक-छन्द

विसलपुर की वासिनी थी 'जसू' विरति-विकासिनी।
साल अड़सठ में वनी है महाव्रत-अभ्यासिनी।
सरल प्रकृति से शुद्ध दिल से साधना गिरि पर चढ़ी।
विनय आदिक सद्गुणों से सघ में शोभा वढी[१] ॥१॥

सोरठा

तप वहु किया पुनीत, मासखमण की चोकड़ी।
वहु वर्षो तक शीत, सहा शीत ऋतु के समय[२] ॥२॥

वीजाजी के साथ, वास छयांसी साल में।
की सेवा दिन रात, कर्म निर्जरा दृष्टि से[३] ॥३॥

कर भावों से स्वच्छ, अनशन-व्रत दो दिवस का।
पाई है पद उच्च, वीस वर्ष कर साधना ॥४॥

अठ्यासी की साल, पहुंची है सुर-सदन में।
सुयश चढ़ाया भाल, चंदेरी के चमन में[४] ॥५॥

१. साध्वी श्री जसूजी मारवाड़ में विसलपुर (पींपाड और जोधपुर के वीच) की निवासिनी थी। उन्होने पति वियोग के वाद सं० १८६८ में दीक्षा स्वीकार की। (ख्यात)

वे प्रकृति भद्रता, हृदय सरलता, विनय और क्षमादिक गुणो से सघ मे अच्छी सेवा को प्राप्त हुई[1]।

२. वे तपस्विनी साध्वी हुई। उन्होने उपवास, वेले आदि अनेक वार किये तथा चार वार मासखमण की तपस्या की। शीतकाल मे वहुत वर्षो तक शीत सहन किया[2]।

३. सं० १८८६ मे वे साध्वी श्री वीजाजी (५२) की सेवा मे थी, ऐसा वीजां सती गुण वर्णन ढा० १ गा० १५ मे उल्लेख है।

४. साध्वी श्री ने वीस साल सयम-पर्याय का पालन कर सं० १८८८ लाड़नूं मे दो दिन के संथारे से आराधक पद प्राप्त किया[3]।

---

१. पीपाड जोधपुर नै विचै, वीसलपुर वसिवांन।
जसूजी जग जश लियो, सरल भद्रीक सुजाण॥
समत अठारै अडसठे जी, सजम लियो सुखदाय।
सम दम प्रकृति कोमल सती जी, निरमल हीये नरमाय॥
सुवनीत घणी सतगुर तणी, शोभा गण मांहि सवाय।
विनयवती ने खिम्यावंती, हरप घणो हीया माय॥
(जसु० गु० व० ढा० १ दो० १ गा० १, २)

२. चौथ छठादिक चित धरी जी, वोहला किया उपवास।
मासखमण च्यार आसरै जी, हद तप कियो हुलास॥
शीतकाले वहु सी सह्यो जी, सुमत गुप्त में सचेत।
प्रकृति भद्र पेखता जी, हिवडा मे उपजै हेत॥
(जसु० गु० व० ढ़ा० १ गा० ४,५)

३. आयो अणसण दोय दिन आसरै, अठ्यासीये वरस अठार।
परभव माहे पागरी, लाडनूं सैहर मझार॥
(जसु० गु० व० ढ़ा० १ गा० ७)

वीसलपुर ना चरण अडसठे, मासखमण तप चिहु भारी जी।
अणसण वर्प अठ्यासिये वारु, सती जसूजी सुखकारी जी॥
(शासन विलास ढा० ४ गा० ६)

जयाचार्य विरचित साध्वी श्री के गुणो की एक ढाल है। ख्यात, शासन-विलास ढा० ४ गा० ६ तथा शासन प्रभाकर ढ़ा० ५ गा० ३२ से ३४ में भी उपर्युक्त वर्णन है।

६७।२।११ साध्वी श्री कुशालांजी (बोरावड़)

(दीक्षा संवत् १८६८, स्वर्ग १८७८ माह वदि ८ के पूर्व)

गीतक-छन्द

मरुधरा में 'कुशालां' का ग्राम बोरावड़ वड़ा।
चरण लेकर भर लिया है साधना रस का घड़ा[1]।
अंत में अनशन अमल कर लक्ष्य पूरा कर लिया।
ऊर्ध्वगामी भावना से भवाम्बुधि को तर लिया[2] ॥१॥

१. साध्वी श्री कुशालाजी का निवास स्थान वोरावड़ (मारवाड़) था। उन्होने पति वियोग के वाद दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

ख्यात आदि मे उनके दीक्षा वर्ष का उल्लेख नही है। उनके पहले की साध्वी जसूजी (६६) की दीक्षा सं० १८६८ मे हुई और वाद की साध्वी चनूजी (७०) की दीक्षा भी सं० १८६८ मे हुई, अत: वीच की क्रमांक ६७ से ६९ तक की साध्वियों का दीक्षा सवत् १८६८ ही होना चाहिए।

२. साध्वी श्री ने वहुत वर्ष सयम का पालन किया। अत में अनशन कर अपना कल्याण लिया[1]।

(ख्यात)

शासन प्रभाकर ढा० ५ गा० ३५ मे भी यही उल्लेख मिलता है।

उपर्युक्त स्थानों मे साध्वी श्री का स्वर्गवास संवत् नही मिलता परन्तु भारीमालजी स्वामी के समय तक दिवगत साध्वियो मे उनका नाम है :—

खुशालांजी फत्तूजी वोरावड़ वाली, संजम ले तप कर देह गाली।
दोन्यूं संथारो कर सुर गति पहुंती, सुमरो मन हरषे मोटी सती॥

(सत गुणमाला-पंडित मरण ढा० २ गा० १५)

इससे सिद्ध होता है कि वे सं० १८७८ माघ वदि ८ के पूर्व भारीमालजी स्वामी के युग मे दिवगत हुई।

---

१. वोरावड़ नी सती कुशालां, अणसण कर पोंहती पारी।

(शासन विलास ढ़ा० ४ गा० १०)

६८।२।१२ साध्वी श्री गीगांजी (वाजोली)

(दीक्षा सं० १८६८, स्वर्ग १८७८ माघ वदि ८ के पूर्व)

गीतक-छन्द

ग्राम वाजोली कहा सुत छोड़ के संयम लिया[1]।
अलग आज्ञा-भंग करने से उन्हें गण से किया।
दंड लेकर पुनः आई संघ के सहवास में[2]।
स्वर्ग में अनशन ग्रहण कर गई चेलावास में[3]॥१॥

१. साध्वी श्री गीगाजी वाजोली (मारवाड़) की वासिनी थी। उन्होंने पति वियोग के वाद पुत्र को छोड़कर दीक्षा ली।

(ख्यात)

उनकी दीक्षा स० १८६८ मे हुई।

२. समयान्तर से उन्होंने साध्वी अमीयाजी (८६) के साथ दलवंदी कर ली। इसकी जानकारी से आचार्य श्री भारीमालजी ने उन दोनों को एक सिंघाड़े में रखना उचित न समझ कर अलग-अलग रहने का आदेश दिया। किन्तु उन्होने आज्ञा का पालन नही किया तव उन्हे सघ से पृथक् कर दिया। वाद मे अमियांजी तो गृहस्थवास में चली गई और गीगांजी प्रायश्चित्त लेकर वापस गण में आ गई।

(शासन विलास ढा० ४ गा० २५ की वार्त्तिका)

उक्त घटना स० १८७२ के वाद की है क्योकि साध्वी अजवूजी (३०) द्वारा अमियाजी की दीक्षा सं० १८७२ मे हुई थी और साध्वी श्री गीगाजी उस समय साध्वी अजवूजी के सिंघाडे मे थी।

३. उन्होने चेलावास मे अनशन कर आत्म-कल्याण किया।

(ख्यात)

वाजोली री सुत तज गीगां, चेलावास कर संथारो।

(शासन विलास ढा० ४ गा० १०)

संत गुणमाला-पडित मरण ढा० २ मे भारीमालजी स्वामी के समय तक दिवंगत साध्वियो मे उनका नाम हैं। इससे फलित होता है कि वे सं० १८७८ माघ वदि ८ के पूर्व भारीमालजी स्वामी के युग मे स्वर्गस्थ हुई।

उनके अनशन करने का उल्लेख निम्नोक्त गाथा में भी मिलता है :—

गीगांजी रो चेलावास संथारो, भिक्षु भारीमाल स्वामीजी रो वारो।
ए सरव आरज्जियां हुई अडती, समरो मन हरखे मोटी सती॥

(संतगुणमाला-पंडित मरण ढ़ा० २ गा० १६)

'आर्यादर्शन' ढा० १ दो० ९ मे साध्वी गीगाजी 'वाजोली' का सं० १९०८ मे दिवगत होने का उल्लेख है, वह क्रमांक १२० गीगांजी 'वाजोली' का है न कि इन गीगाजी (६८) का :—

'छोडचो इक हुकमा भणी, समणी मघू सोय।
गीगां वाजोली तणी, परभव पहुंती दोय॥'

६६।२।१३ साध्वी श्री कुशालांजी (देवगढ़)

(संयम पर्याय सं० १८६८-१८६३)

गीतक-छन्द

देवगढ की थी 'कुशालां' विरति से दिल जोड़के।
बनी साध्वी स्वजन जन से स्नेह बंधन तोड़ के[1]।
गई बढती धैर्य से ज्यों शिखर पर चढ़ती लता।
कलश अनशन कर चढाया पा गई है सफलता[2] ॥१॥

१. साध्वी श्री कुशालांजी देवगढ़ (मेवाड़) की वासिनी थी। उन्होंने पति वियोग के बाद दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

उनकी दीक्षा सं० १८६८ में हुई।

२. साध्वी श्री ने बहुत वर्ष साधुत्व का पालन कर सं० १८९३ नाथद्वारा में अनशन पूर्वक स्वर्ग गमन किया।[1]

(ख्यात)

---

१. सुरगढ़तणी खुसाला सखरी, चारित्र लीधो घर प्यारी जी।
श्रीजीदुवारे सखर संथारो, वर्ष त्राणुंअे हितकारी॥

(शासन-विलास ढ़ा० ४ गा० ११)

शासन प्रभाकर ढ़ा० ५ गा० ३६ में भी उपर्युक्त उल्लेख है।

७०।२।१४ साध्वी श्री चनूजी 'छोटा' (तोसीणा)

(संयम पर्याय सं० १८६८-१९१३)

दोहा

'तोसीणा' की वासिनी, नाहर गोत्र प्रधान ।
यौवन में चारित्र के, भाव हुए बलवान ॥१॥

गीतक-छन्द

छोड़ पति को बनी श्रमणी सफल जीवन कर लिया ।
सुगुरु की मंगल शरण ले कलश मंगल भर लिया[1] ।
लीन हो संवेग रस में साधना पथ पर बढ़ी ।
सहज समता सरलतादिक गुणों की पुस्तक पढ़ी[2] ॥२॥

अग्रगण्या हो किया है पांच देशों में गमन ।
बोध बहुजन को दिया है किया धार्मिक गुल चमन[3] ।
पांच बहिनों को चरण देकर बढ़ाई गण-शिखा ।
स्व-पर का कल्याण करना वाक्य यह दिल में लिखा[4] ॥३॥

दोहा

सेवा कर फूली सती, आचार्यों की तीन ।
नव-नव अनुभव प्राप्त कर, लाई शक्ति नवीन ॥४॥

गीतक-छन्द

व्याधि तन में हुई फिर भी विचरती पुरुषार्थ धर ।
पूज्य दर्शन कर हृदय में हर्ष भरती अधिकतर ।
वास गुरुकुल में अधिक कर फूलती फलती सती ।
नाम लेते ही विदा का समय आगे खीचती[5] ॥५॥

दोहा

सुनकर मर्यादावली, पाती मोद विशेष ।
जागरूक हो पालती, नहीं उपेक्षा लेश[६] ॥६॥

तप जप अधिकाधिक किया, लाभ लिया है खूब ।
ज्ञान-ध्यान-रत हो बनी, हरी भरी ज्यों दूब[७] ॥७॥

'भया' सती बहु वर्ष तक, रही आपके पास[८] ।
दिया 'सदां' को आपने, योगदान सोल्लास[९] ॥८॥

छप्पय

चत्रू ने चातुर्य से बड़ा कर लिया काम ।
पाली के इतिहास में नया लिख दिया नाम ।
नया लिख दिया नाम साल बारह की गाई ।
करने चातुर्मास खेरवा पुर में आई ।
मिला अचानक पत्र तब बदल गया प्रोग्राम ।
चत्रू ने चातुर्य से बड़ा कर लिया काम ॥९॥

चौदस शुक्लाषाढ़ की अथवा पूनम शेष ।
पाली में चल आ गई जान सुगुरु आदेश ।
जान सुगुरु आदेश भेद तब सब खुल पाया ।
श्रावक जन को घोष जोश युत साफ सुनाया ।
बन्द गोचरी आपकी प्रवचन सुबह न शाम ।
चत्रू ने चातुर्य से बड़ा कर लिया काम ॥१०॥

घबराये अगुआ सभी लगे खिसकने पैर ।
उथल-पुथल दिल मे मची अब न रहेगी खैर ।
अब न रहेगी खैर देर प्रकृति कर सकती ।
किन्तु न करती खैर झूठ तो अधिक न टिकती ।
की गलती हमने बड़ी मन यह हुआ हराम ।
चत्रू ने चातुर्य से बडा कर लिया काम ॥११॥

चितन करके वास्तविक पहुंचे जय गणि पास ।
नत हो माफी मांगते ले लम्बे निःश्वास ।
ले लम्बे निःश्वास सुगुरु ने डांट लगाई ।
सहकर के चुपचाप बड़ी क्षमता दिखलाई ।
हो प्रसन्न गुरुदेव ने भारी दिया इनाम ।
चन्नू ने चातुर्य से बड़ा कर लिया काम ॥१२॥

दोहा

दंड मिला है भूल का, स्वीकृति से वरदान ।
घटना स्मृति में रख चले, संभल-संभल इन्सान[10] ॥१३॥

बीलाड़ा पीपाड फिर, लोटोती को स्पर्श ।
आई है आनंदपुर, पाई गुरु के दर्श ॥१४॥

कर पाई आलोचना, जय के सम्मुख आप ।
महाव्रतारोपन किया, क्षमायाचना साफ ॥१५॥

गीतक-छन्द

अन्त में अनशन ग्रहण कर किया स्वर्गो में गमन ।
पूर्णिमा वैशाख की उन्नीस सौ तेरह हयन ।
साल पैतालीस लम्बा काल सयम का रहा ।
भावना से फला वाछित सुयश छाया है महा[11] ॥१६॥

दोहा

सेवा में सतिया रही, सिणगाराजी आदि ।
रख करके आत्मीयता, उपजाई सुसमाधि[12] ॥१७॥

रच जयगणि ने गीतिका, किये सती गुण याद ।
ख्यात आदि में भी लिखा, उनका कुछ संवाद[13] ॥१८॥

१. साध्वी श्री चत्रूजी तोसीणा (मारवाड़) की निवासिनी जाति से ओसवाल और गोत्र से नाहर थी। उन्होने पति को छोड़कर साध्वी फत्तूजी (७१) के साथ वडे वैराग्य से दीक्षा स्वीकार की।[1]

(ख्यात)

दीक्षा स० १९६८ मे हुई.—

……………………लघु चत्रू वर्ष अडसठे।
पिउ तज चरण सुजोग रे, तोसीणा ना न्हार ते।।

(आर्या दर्शन ढ़ा०५ सो०१३)

२. साध्वी श्री चारित्र की निर्मलता, संघ व संघपति के प्रति अनुरक्ति, प्रकृति भद्रता, समता भाव, नि.सगता आदि गुणो से संपन्न हुई।[2]

३. साध्वी श्री ने सिघाडवध रूप मे पांच देशो में विहरण किया—मेवाड़, मारवाड़, थली, हाडोती और ढूढ़ाड। अनेक व्यक्तियों को प्रतिवोध देकर श्रद्धालु

---

१. गांम तोसीणा रा वासी, वारु वैराग सूं व्रत अभिलासी।
पीउ छांड चरण धारयो नीको।।
(चत्रू० गु० व० ढ़ा०१ गा० ६)

तोसीणा रा चरण पीउ तज, छोटी चत्रू सुविचारी।
(शासन विलास ढ़ा०४ गा०१२)

२. सुमत गुप्त सैंणी सुगणी, भल तंत चत्रु वखांण भणी।
निमल चरण पाल्यो नीको।।
प्रकृति भद्रीक सुजांण पणे, गुरदेव सासण सू हरख घणे।
तंत सती नो व्रह्म तीखो।।
सरस सवेग अधिक समता, रूड़ी जिन शासन मांहि रगरता।
दीन विमन नही मन नीको।।
परम सुगर सू प्रीत घणी, चित मांहै हूंस अति सेव तणी।
संग छांड हियो कियो चद सरीखो।।
पुद्‌गल नी वहु प्यास नही, नित संजम मे लहलीन रही।।
तसुं कीरत जिन तहतीको।।
अधिक विपय हुवै आतमा में, तुम हास कुसंगत अधिक गमे।
एहवो छोड़ दियो अवगुण पीको।
(चत्रू० गु० व० ढा० १गा ० १ से ५, ८)

बनाया।[1]

उनके चातुर्मास स्थानो की प्राप्त तालिका इस प्रकार है :—

१. स० १८८८ ठाणा ४ किसनगढ।

साथ की साध्वियो के नाम—चन्नणाजी (११५ या ११६), लच्छूजी (१०१), नदूजी (११७)।

उक्त उल्लेख किसनगढ निवासी श्रावक उमेदमलजी द्वारा रचित 'पूजगुणी' ढाल० २ गा० २० से २७ मे मिलता है।

२. स० १९०६ वोरावड।

वहां उन्होने साध्वी सरदाराजी (२४७) 'वडू' को स० १९०६ मृगसर वदि ४ के दिन दीक्षा दी थी, इससे उक्त चातुर्मास की सभावना की जाती है।

'आर्यादर्शन' ढालो के अनुसार उनके चातुर्मास आदि का विवरण इस प्रकार मिलता है।

(क) स० १९०९ मे साध्वी श्री पाच ठाणो से थी। चातुर्मास के वाद उन्होने गुरु-दर्शन कर ८ दिन सेवा की।

(ख) सं० १९१० मे वे ६ ठाणो से थी। चातुर्मास के वाद अस्वस्थता के कारण न स्वय गुरु-दर्शनार्थ जा सकी और न साथ की साध्वियो को भेज सकी।

(ग) स० १९११ मे वे ६ ठाणो से थी। चातुर्मास के वाद वृद्धावस्था के कारण न स्वय गुरु-दर्शनार्थ जा सकी और न साथ की साध्वियो को भेज सकी।

उक्त वर्षो के चातुर्मास-स्थान उपलब्ध नही है।

(घ) स० १९१२ में ६ ठाणो से उनका चातुर्मास पाली (इसका विश्लेपण टिप्पण सख्या ९ मे देखे) था।

चातुर्मास के वाद वृद्धावस्था के कारण स्वयं गुरु-दर्शनार्थ न जा सकी। साथ की तीन साध्वियो को भेजा, उन्होने १३ दिन सेवा का लाभ लिया।

चातुर्मास में साध्वी श्री चंपाजी (१५१) ने १६, सिणगाराजी (१७९) ने १०, सिरदारांजी (२४७) ने १२, चादूजी (२४१) ने ९ और हस्तूजी (१९१) ने १५ दिन का तप किया।

(च) स० १९१३ में ५ ठाणों से ईडवा चातुर्मास किया। चातुर्मास के पश्चात् गुरु-दर्शन कर डेढ महीनें सेवा की। चातुर्मास मे साध्वी चपाजी ने ३०,

---

१. मेवाड़ मुरधर माय मतिवती, थली हाडोती ढूंढाड मे विहरती।
वहुजन प्रतिवोध्या रमणी को॥
(चन्नू० गु० व० ढा० १ गा०९)

सिणगारांजी ने ११, हस्तूजी ने. १६, और सिरदाराजी ने १५ दिन का तप किया।

४. साध्वी श्री द्वारा दीक्षित साध्वियां:—

(१) साध्वी श्री सिणगारांजी (१७६) 'पीसांगण' को सं० १८६७ जेठ वदि ५ को 'मेवाड्या' मे दीक्षा दी।

(२) साध्वी श्री हस्तूजी (१६१) 'सवलपुर' को स० १८६६ पोप वदि १० को सवलपुर मे दीक्षा दी।

(३) साध्वी श्री जीऊजी (२४३) 'रीणी' (तारानगर) को सं० १६०५ मृगसर सुदि ३ को दीक्षा दी। दीक्षा स्थान ख्यात मे चूरू और आर्यादर्शन ढाल १ सो० १७ मे रीणी है।

(४) साध्वी श्री सिरदाराजी (२४७) वडू को वोरावड मे दीक्षा दी।

उक्त दीक्षाओ मे साध्वी जीवूजी और सिरदाराजी का साध्वी चत्रूजी 'छोटा' के हाथ से दीक्षित होने का ख्यात मे स्पष्ट उल्लेख है।

साध्वी सिणगारांजी और हस्तूजी की दीक्षा निम्नोक्त समीक्षानुसार हमने साध्वी चत्रूजी 'छोटा' के हाथ से माना है।

साध्वी श्री सिणगारांजी (१७६)—

ख्यात मे साध्वी श्री सिणगाराजी (१२१) 'कोलिया' तथा साध्वी श्री सिणगाराजी (१७६) 'पीसांगण' इन दोनो की दीक्षा साध्वी श्री चत्रूजी के हाथ से लिखी है परन्तु चत्रूजी 'वडा' (६५) या चत्रूजी 'छोटा' (७०) के हाथ से हुई यह नही है।

साध्वी श्री सिणगाराजी (१७६) की दीक्षा सं० १८६७ मेवाड्या गांव मे हुई। उस वर्ष चत्रूजी (६५) 'वडा' वीदासर की तरफ विहार करती थी अतः यह दीक्षा उनके हाथ से सभव नही लगती। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि सिणगारांजी (१७६) सं० १६१२, १३ मे 'आर्यादर्शन' ढालो के अनुसार चत्रूजी (७०) 'छोटा' के साथ थी और सं० १६१३ मे चत्रूजी (७०) 'छोटा' के स्वर्गगमन के वाद सिणगारांजी (१७६) का सिंघाडा हुआ तव जो साध्विया चत्रूजी 'छोटा' (७०) के साथ थी वे ही सिणगारांजी (१७६) के साथ रही अतः उनके साथ सिणगाराजी (१७६) 'पीसांगण' ही थी क्योकि वे ही सिंघाडवध हुई थी; उन्ही सिणगाराजी 'पीसांगण' का आर्यादर्शन ढा० ८ गा० २८ मे उल्लेख है:—

'पीसांगण वाला सिणगारां, कृष्णगढ़ चिउं ठाणै।
इकसौ वावन दिवस आसरै, सुगुरु सेव सुख माणै॥'

साध्वी श्री हस्तूजी (१६१)—

साध्वी श्री हस्तूजी (१६१) की दीक्षा भी ख्यात मे साध्वी श्री चत्रूजी के

हाथ से लिखी हैं। वहा भी बडा या छोटा चत्रूजी का उल्लेख नही है। साध्वी श्री हस्तूजी की दीक्षा स० १८६६ मे हुई। उस वर्ष चत्रूजी (६५) 'वड़ा'थली की तरफ विहार करती थी अत. हस्तूजी की दीक्षा सवलपुर मे उनके हाथ से संभव नही लगती। दूसरा कारण यह भी है कि हस्तूजी (१६१) 'आर्यादर्शन' ढालो के अनुसार स० १६१२, १३ मे चत्रूजी (७०) 'छोटा' के साथ थी अतः उनकी दीक्षा भी हमने चत्रूजी (७०) 'छोटा' के हाथ से मानी है।

साध्वी श्री सदाजी (१५०) को उन्होंने स० १८६३ मे दीक्षा दी, ऐसा प्रतीत होता है। (देखें टिप्पण सख्या ६)

५. साध्वीश्री को तीन आचार्यो—भारीमालजी, रायचन्दजी और जयाचार्य की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ।[1]

उनका मनोवल वहुत मजवूत था। अस्वस्थ होने पर भी वे छोटे-छोटे विहार करती रहती। आचार्य श्री की सेवा का अवसर मिल जाता तो वे अत्यधिक प्रसन्न होती और अधिक से अधिक दिनो तक साथ रहने का प्रयत्न करती। आहार, पानी तथा स्थानादिक की कठिनाई मे भी अधीरता नही लाती। आचार्य श्री द्वारा विदाई का आह्वान करने पर भी विहार की अवधि आगे से आगे बढाती जाती। इसका स्वय जयाचार्य ने अपने पद्यो मे इस प्रकार चित्रण किया है:—

तन कारण कर विहरंता, गुरु दर्शन कर चित हरषंता।
करी वहु दिन हर्ष अधीको ॥
सीख दीधां पिण विहार करै नांहि, अति हरष दर्शण हिया मांहि।
ए गुण विरला जन गुणी को ॥
कायर जे दिन अल्प रही, सीख मांगी विहार करै उमही।
एहवो कायर पणो नहि ए सती को ॥
(चत्रू० गु० व० ढा०१ गा० १२ से १४)

६. सघीय मर्यादाओं को सुनकर वे वहुत प्रसन्न होती और उनका जागरुकता से पालन करती[2]।

---

१. भारीमाल ऋषिराय तणी, वलि जय गणपति नी सेव घणी।
हिमत वल हिया मे अधीको ॥
(चत्रू० गु० व० ढा०१ गा० १०)।

२. मर्याद सुणी अति हरषती, आतो सतिय सिरोमण लजवती।
गुण सजम जात्रा जप नीको ॥
(चत्रू० गु० व० ढा०१ गा० ११),

७. साध्वी श्री ने निर्लेप भाव से तप जप आदि वहुत किया और संयम जीवन का अच्छा लाभ उठाया।[1]

८. साध्वी श्री मयाजी (१०६) सं० १८७६ में दीक्षित होने के वाद साध्वी श्री वरजूजी (३६) के सिंघाडे मे रही। ऐसा उल्लेख मया सती गुण वर्णन ढा० १ दो०२ गा०१ मे है।

सं० १८८८ मे साध्वी वरजूजी के स्वर्ग-गमन के वाद साध्वी मयाजी साध्वी चन्नूजी 'छोटा' के सिंघाडे मे वहुत वर्षों तक रही। स० १६०३ मे उनके साथ मे आचार्य श्री ऋषिराय ने साध्वी श्री मयाजी का सिंघाड़ा कर दिया —

पछै छोटा चन्नूजी कनै जी कांई, किया घणा चउमास।
उगणीसै तीये समै जी कांई, ऋषिराय टोलो कियो तास॥
(मया० गु० व० ढा० १ गा० ३)

इससे यह अनुमान किया जाता है कि स० १८८८ मे साध्वी श्री वरजूजी (३६) के स्वर्गवास होने पर साध्वी श्री चन्नूजी 'छोटा' का सिंघाड़ा हुआ और पहले वे उनके साथ मे रही।

६. स० १८६५ वोरावड़ में साध्वी श्री सदांजी (१५०) ने सलेखना, संथारा किया तव साध्वी चन्नूजी 'छोटा' ने उन्हे अच्छी सहायता दी एव उनके साथ पूर्ण प्रीति निभाई —

छोटा चन्नूजी साहज आछो दियो रे, व्यावच रूड़ी रीत।
विविध पणै परिणाम चढ़ाय नै रे, पूरण पाली प्रीति॥
(सदां० गु० व० ढा० १ गा० १०)

इससे यह तो स्पष्ट ही है कि साध्वी श्री सदाजी उस समय उनके सिंघाडे में थी और ऐसा भी प्रतीत होता है कि उनकी दीक्षा सं० १८६३ मे उनके हाथ से हुई।

१०. एक वार पाली (मारवाड) के श्रावको ने जयाचार्य के दर्शन कर अपने गांव मे साधुओ के ही चातुर्मास करवाने की विनति की। जयाचार्य ने सोचा— 'तेरापथ सघ में साधु या साध्वियो का ही चातुर्मास करवाएं' ऐसी प्रार्थना करने का रिवाज नही है, अत इस वर्ष पाली मे चातुर्मास ही न हो तो भविष्य मे सव सावधान रहेगे। जयाचार्य ने स० १६१२ का चातुर्मास पाली के पार्श्ववर्त्ती खेरवा ग्राम मे साध्वी श्री चन्नूजी का फरमा दिया पर पाली मे किसी का भी

---

१. तप जप तो अधिको कीधो, सती लाहो मनुष भव नो लीधो।
कुसग परिचय नही किणही को॥
(चन्नू० गु० व० ढ़ा० १ गा० ७)

नही फरमाया। पाली के कुछ श्रावको ने मिलकर सोचा—लगता है कि आचार्य-देव की हम पर दृष्टि कठोर है, इसलिए इस वर्ष का चातुर्मास न तो फरमाया है और न फरमायेंगे। खेरवा जैसे छोटे से ग्राम मे चातुर्मास और हमारा पाली जैसा क्षेत्र खाली रहे यह हमारे लिए शर्म की बात है। आषाढ महीना निकट आ गया है अत. किसी तरह पाली मे चातुर्मास हो जाए ऐसा रास्ता निकालना चाहिए।

सघ की रीति-रिवाज पर ध्यान न देते हुए उन्होने चातुर्मास लगने के एक दो दिन पहले एक जाली कागद खेरवा के प्रमुख श्रावको के नाम से दिया जिसमे लिखा कि साध्वी श्री को हमारी वदना मालूम कर निवेदन करे कि जयाचार्य ने आपका चातुर्मास पाली फरमा दिया है, अतः आप जल्दी से जल्दी चातुर्मास के लिए पधारें। खेरवा के श्रावको को परोसा हुआ भोजन चले जाने की तरह कष्ट तो बहुत हुआ पर गुरु आज्ञा के सम्मुख कुछ नही बोल सके। साध्वी श्री गुरु-आदेश को शिरोधार्य कर आषाढ़ शुक्ला १४ या १५ को चातुर्मास करने के लिए पाली पधार गई। पावस काल प्रारम्भ हो गया।

श्रावको ने विचारा—'हमने मनमाना काम तो कर लिया है पर यह बात छुपने वाली नही है इसलिए पहले ही हम साध्वी श्री को कह दे तो ठीक रहेगा।' उन्होने जब इस बात का जिक्र किया तो साध्वी श्री ने उन्हे कड़ा उलाहना देते हुए कहा-- 'आप लोगो ने शासन-मर्यादा व गुरु-दृष्टि के खिलाफ कार्य किया है जिसका आचार्यप्रवर द्वारा तो आपको उपालभ मिलेगा ही किन्तु हम भी यह ऐलान करती है कि गुरुदेव ने तो हमारा चातुर्मास यहा फरमाया नही है, आप छल-बल के द्वारा हमे यहा ले आये है, इसलिए हम चार महीने न तो आपके घरो की गोचरी करेगी और न व्याख्यान सुनायेगी।'

यह सुनते ही सब लोग घबराये और मन ही मन पश्चाताप करने लगे। अगर व्याख्यान तथा पात्रदान का लाभ ही न मिले तो चातुर्मास का आनन्द ही क्या!

सांप को बिल मे प्रवेश करते समय सीधा होना ही पडता है। आखिर सभी ने यही निर्णय किया कि हमे शीघ्र जयाचार्य के दर्शन कर अपनी गलती के लिए माफी मागनी चाहिए।

कुछ श्रावक घबराते व डरते हुए जयाचार्य के दर्शनार्थ उदयपुर पहुचे और जाते ही ऊचे स्वर से बोले—'हम गुनहगार आपके चरणो मे उपस्थित है, हमने बड़ी भारी भूल की है, हमे क्षमा प्रदान करे। आप मालिक है, हम आपके चरणो की रज है, दास है। पुत्र कुपुत्र हो जाता है पर मा-बाप, मां-बाप ही रहते है।' इत्यादि नम्र वचनो से भूरि-भूरि क्षमायाचना मागी।

जयाचार्य ने उन्हे कडे शब्दों मे कहा—'तुम लोग केवल नाम के श्रावक हो, तुम्हारे मे विवेक की बहुत बड़ी कमी है। तुमने शासन की मर्यादा एव गुरु आदेश का बिल्कुल ध्यान नही रखते हुए अपनी मनमानी की है ।' पांच-सात दिन इस प्रकार कठोर दृष्टि रख कर उपालभ देते गये। आखिर उनकी सहनशीलता, विनयशीलता एवं धैर्यता को देखकर जयाचार्य का दिल पिघल गया—'वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि' वाक्य को सार्थक करते हुए प्रसन्न मुद्रा में पाली मे स्थित साध्वियो को व्याख्यान, गोचरी आदि का निर्देश दिया तथा अपना स० १९१३ का अगला चातुर्मास पाली फरमा दिया। पाली के श्रावक बांसो उछलने लगे। गुरुदेव के गुणगान करते हुए फूले-फूले पाली आये और साध्वी श्री को सब समाचारो से अवगत कराया।

उक्त घटना हम बुजुर्गो द्वारा सुनते तो आ रहे थे पर यह किसी को ज्ञात नही था कि उस वर्ष पाली चातुर्मास किन साध्वियो का था। इसका अन्वेपण किया गया तब श्रावकों द्वारा लिखित स० १९१२ की चातुर्मास तालिका में मारवाड़ प्रदेश के चातुर्मासों की सूची मे साध्वी श्री चत्रूजी 'छोटा' (आपका) तथा साध्वी चन्नणांजी (११६) के नाम मिले पर उनके आगे चातुर्मास स्थान नही लिखा हुआ था। केवल इतना लिखा था कि 'गांव री याद नही ।'

फिर हमे 'आर्यादर्शन' ढा० ४ गा० २८ मे चन्नणांजी का चातुर्मास पादू, ईडवा,—'चंदणा हस्तु पादू ईडवै' का मिल गया, जिससे यह हल निकल गया कि स० १९१२ का पाली चातुर्मास इन्ही साध्वी श्री चत्रूजी का था।

११. साध्वी श्री सं० १९१३ के शेपकाल मे बिलाड़ा, पीपाड़, लोटोती, बलुंदा होती हुई आणंदपुर(कालू) पधारी। वहा जयाचार्य के दर्शन किये। सती ने आचार्य-देव के सम्मुख आत्मालोचन किया। गुरुदेव ने महाव्रतारोपन करवाया।[1]

वहां उन्होने वैशाख शुक्ला पूर्णिमा (द्वितीय) को निर्मल भावो से अनशन कर स्वर्ग मे प्रस्थान किया।[2] उनका साधनाकाल लगभग ४५ वर्षों का रहा। सभी

---

१. वीलाडे पीपाड ने लोटवती, वलूदे आणंदपुर दर्श करती।
तन कारण तो पिण साहसीको ॥
गणपति जय चित्त समभावै, आलोयण करावी व्रत उचरावै।
छैहडे वास कियो तन मन सधीको ॥
(चत्रू० गु० व० ढ़ा० १ गा० १५: १६)

२. समत उगणीसै तेरै बूजी, वैशाख सुक्ल पूनम दूजी।
पहुंता परलोग सुजश टीको ॥
(चत्रू० गु० व० ढ़ा० १ गा० १७)

ईप्सित भावनाओ को पूर्ण कर चतुर्विध संघ मे अच्छा सुयश प्राप्त किया।

१२. साध्वी श्री सिणगारांजी (१७६) आदि ने उनकी तनमन से परिचर्या की।[1] जयाचर्या ने साध्वी चनूजी के वाद सिणगारांजी का सिंघाड़ा वना दिया।

१३. जयाचार्य ने साध्वी श्री के दिवगत होने के ७ दिन वाद उनके गुणोत्कीर्त्तन की एक ढाल वनाकर उनके पवित्र जीवन का चित्र प्रस्तुत किया।[2]

---

१. सिणगारांजी आदि सत्यां सखरी, अति साज दियो हद सेव करी।
तन मन सूं पिण ना अलीको ॥
(चनू० गु० व० ढा० १ गा० १८)

उगणीसै तेरह आणंदपुर, वर अणसण पहुती पारी।
(शासन-विलास ढ़ा० ४ गा० १२)

ख्यात, शासनप्रभाकर ढ़ा० ५ गा० ३७, ३८ में भी यही उल्लेख है।

२. उगणीसै तरे जेठ मासो, विद आठम सतिय सुगुण रासो।
जयजश हरष सुजश टीको ॥
(चनू० गु० व० ढ़ा० १ गा० १६)

७१।२।१५ साध्वी श्री फत्तूजी (वोरावड़)

(दीक्षा सं० १८६८, स्वर्ग सं० १८७८ माघ वदि ८ के पूर्व)

दोहा

वोरावड़ की वासिनी, 'फत्तू' हुई सनाथ।
चन्नू श्रमणी साथ में, पाई संजम-क्वाथ[1] ॥१॥

रम रस में वैराग्य के, अधिक वढ़ाई आव।
की वहु चर्चा-धारणा, पढ़कर ज्ञान-किताव ॥२॥

साहस दिल में था वड़ा, भय का तनिक न काम।
किया सिंघाड़ा सुगुरु ने, विचरी पुर-पुर ग्राम ॥३॥

जन-जन को प्रतिवोध दे, किया वहुत उपगार[2]।
स्वर्ग गई कर भाव से, अनशन आखिरकार[3] ॥४॥

१. साध्वी श्री फत्तूजी वोरावड़ (मारवाड़) की वासिनी थी। उन्होंने पति वियोग के वाद साध्वी श्री चन्नूजी (७०) 'तोसीणा' के साथ दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

साध्वी श्री चन्नूजी का दीक्षा संवत् १८६८ होने से इनका दीक्षा सं० १८६८ स्वतः सिद्ध हो जाता है।

२. साध्वी श्री वड़ी साहसवती थी। उन्होंने चर्चादिक की अच्छी धारणा की। वैराग्य-वृद्धि से अपने संयमी जीवन को अधिक निखार लिया। सिघाड़वध होकर अनेक गांवों, नगरों में विचर कर वहुत उपकार किया।

(ख्यात)

३. उन्होंने आखिर मे संथारा कर समाधि-मरण प्राप्त किया :—

वोरावड़ ना सती फत्तूजी, उत्तम अणसण सुविचारी जी।
ए विहुं सतियां इक दिन दिख्या, लीधी अति हीमत धारी जी।।

(शासन विलास ढ़ा० ४ गा० १३)

ख्यात तथा शासनप्रभाकर ढ़ा०५ गा० ३९ मे भी यह उल्लेख है।

ख्यात आदि में उनका स्वर्गवास संवत् नही है पर संतगुणमाला-पडित मरण ढ़ा० २ गा० १५ मे भारीमालजी स्वामी के समय तक दिवगत साध्वियो में उनका नाम है :—

खुशालांजी फत्तूजी वोरावड़ वाली, संजम ले तप कर देह गाली।
दोन्यू संथारो कर सुरगति पहुंती, सुमरो मन हरखे मोटी सती।।

इससे यह प्रमाणित होता है कि वे सं० १८७८ माघ वदि ८ के पूर्व दिवंगत हो गई।

७२।२।१६ साध्वी जी रंभाजी (पीसांगण)

(संयम पर्याय सं० १८६८-१९१५)

गीतक छन्द

निवासी आनंदपुर के स्वजन जाति सरावगी।
विवाहित होकर सती ने देखली सब वानगी।
विरह पति का हो गया है धर्म की पकड़ी शरण।
साठ अड़सठ में लिया है पूज्य 'भारी' से चरण[१] ॥१॥

दोहा

'वरजू', 'झूमां' पास में, रहकर किया विकास।
मूलोत्तर गुण में बढ़ी, भर कर ज्ञान-प्रकाश[२] ॥२॥

अच्छा विनय विवेक था, कुशलाचार-विचार।
सुविनीता प्रज्ञावती, भद्र प्रकृति सुखकार ॥३॥

थी सम्मुख गण के बड़ी, गुरु-भक्ता सुविशेप।
चलती आज्ञा में अटल, रहती सजग हमेश[३] ॥४॥

किया सिंघाड़ा सुगुरु ने, दिया हृदय में स्थान।
विचर-विचर पुर ग्राम में, किया प्रचार महान् ॥५॥

जन-जन में अध्यात्म की, भरी भावना पीन।
दीक्षा अपने हाथ से, दी बहिनों को तीन[४] ॥६॥

नौ से पन्द्रह साल तक, मिलता कुछ वृत्तांत।
आर्यादर्शन नाम की, कृति में आद्योपान्त[५] ॥७॥

रामायण-छन्द

तप की लड़ी पक्ष तक की है रसनेन्द्रिय को ली है जीत।
शीतकाल में वहु वर्षो तक सहा भयंकर परिषह शीत।
सावन भाद्रव में एकांतर कर पाई है पन्द्रह वर्ष।
आत्म शुद्धि के लिए निरंतर रही वढाती भावोत्कर्ष[६] ॥८॥

दोहा

वृद्धावस्था क्षीण वल, होने से धृति धार।
'कांठा' में करती रही, शनैः शनैः सुविहार ॥९॥

भिक्षुनगर में आखिरी, करके वर्षावास।
ग्राम 'वाहला' आ गई, (जो) वसा खेरवा पास ॥१०॥

की चालू ऊनोदरी, देख देह में रोग।
थोड़े दिन के वाद में, आया अति वैराग ॥११॥

शुक्ल जेठ की प्रतिपदा, सवा प्रहर दिन शेष।
उच्चारण करने लगी, मंगल शरण विशेष ॥१२॥

जीभ थकी तव रुक गई, वोल न पाई शब्द।
सतियां वैठी पास मे, हुई देख स्थिति स्तब्ध ॥१३॥

सलिल पिलाने वे लगी, तव मुख पर रख हाथ।
की मनाह ध्यानस्थ हो, कर अनशन अज्ञात ॥१४॥

मध्य निशा के वाद मे, पहुंची है सुरधाम।
रमकर आत्म-समाधि मे, सिद्ध कर लिया काम ॥१५॥

चंपा आदिक साध्वियां, थी सेवा में तीन।
गुण वर्णन 'जय' ने किया, रच कर गीति नवीन[७] ॥१६॥

१. साध्वी श्री रंभाजी मारवाड में कालू कुडकी (आनंदपुर) के मोतीलालजी सरावगी (कासलीवाल) की पुत्री थीं। पीसांगण (मारवाड़) के खीवराजजी (गंगवाल) के पुत्र के साथ उनका विवाह हुआ। उन्होंने २४ वर्ष की अवस्था में पति वियोग के वाद सं० १८६८ में आचार्य श्री भारीमालजी के हाथ से चारित्र ग्रहण किया :—

रंभाजी रलियामणी, पीयर पुर आणंद।
कासलीवाल मोती-सुता, श्रावगी कुल सोहंद॥
सासरियो पीसांगणे, खींवराज गंगवाल।
सुतन वहू पति नो विरह, पाम्यो धर्म रसाल॥
वर्ष चौवीस रे आसरै, भारीमाल रै हाथ।
समत अठारै अडसठे, धरचो चरण वर आथ॥

(रभां० गु० व० ढा० १ दो० १ से ३)

रंभाजी कालू कुडकी ना, जाति श्रावगी जयकारी।

(शासन विलास ढा० ४ गा० १४)

शासन विलास के उक्त पद्य तथा ख्यात आदि में साध्वी श्री का ग्राम कालू कुडकी लिखा है परन्तु वहां उनका पीहर था। सभवत. पति वियोग के वाद वे अपने पीहर ही रहती हो और वहा पर ही दीक्षा हुई हो जिससे कालू कुडकी का उल्लेख कर दिया गया हो।

कालू कुडकी का दूसरा नाम आनंदपुर होने से उक्त गुण वर्णन ढ़ाल० १ दो० १ मे उसके स्थान पर आनदपुर लिखा है।

२. दीक्षा के पश्चात् आचार्य श्री ने उनको साध्वी वरजूजी (३६) और साध्वी श्री झमकूजी (५८) (झूमाजी) को सौप दिया। वे उनके सान्निध्य में अपना जीवन निर्माण करने लगी।[1]

३. साध्वी श्री साधुक्रिया मे सावधान, शासन के सम्मुख, गुरु-भक्ता, अनुशासन पालन में जागरूक, प्रकृति से भद्र, विनय, विवेक आदि गुणो से संपन्न हुई।[2]

---

१. वरजू झमकू नै गणी, सूपी सुगुरु सयांण।
सेव करै साचै मने, रभा गुण नी खाण॥

(रभा गु० व० ढ़ा० १ दो० ४)

२. सुमति गुप्त व्रत साचवै जी कांइ, सतगुरु नी सुवनीत।
विनय विवेक विचार मे काइ, रभा रूड़ी रीत जी कांइ।

४. साध्वीश्री पहले साध्वी वरजूजी (३६) के सिंघाड़े मे रही। फिर वरजूजी के साथ की साध्वी झूमाजी (५८) अग्रगण्या वनी तव वे उनके सिंघाड़े मे रही। सं० १८८२ मे साध्वी झूमाजी के दिवगत होने पर आचार्य श्री रायचन्दजी ने योग्य समझकर साध्वी रभाजी का सिंघाडा वनाया।[1]

उन्होने ग्रामानुग्राम विहार कर अच्छा उपकार किया[2]। जन जन मे अध्यात्म भावना भरी एव तीन वहनो को अपने हाथ से दीक्षित किया —

(१) साध्वी श्री सिरदाराजी (१४६) 'पादू' को स० १८६२ जेठि सुदि ५ को पादू मे दीक्षा दी।

(२) साध्वी श्री उमेदाजी (१६३) 'पीसांगण' को स० १८६६ माघ शुक्ला ६ को पीसागण मे दीक्षा दी।

(३) साध्वी श्री लिछमाजी (१८५) 'वगडी' को सं० १८६८ चैत्र (द्वितीय) शुक्ला ७ को वगड़ी मे दीक्षा दी।

(इन्ही साध्वियो की ख्यात से)

५. जयाचार्य विरचित 'आर्यादर्शन' ढालो के अनुसार उनके चातुर्मास आदि का वर्णन इस प्रकार है.—

(१) स० १६०६ मे वे ५ साध्वियो से थी। चातुर्मास स्थान नही मिलता। चातुर्मास के वाद उन्होंने गुरुदर्शन कर ६ दिन सेवा की।

(२) स० १६१० से उनका ४ साध्वियो से मारवाड (स्थान प्राप्त नही है) मे चातुर्मास था। चातुर्मास के वाद वृद्धावस्था के कारण गुरु-दर्शन नही कर सकी।

(३) स० १६११ मे उनका ४ साध्वियों से मारवाड (स्थान प्राप्त नही है) मे चातुर्मास था। चातुर्मास के वाद वृद्धावस्था के कारण गुरु-दर्शन नही कर सकी।

प्रकृति भद्र प्रज्ञा भली जी काइ, समणी गण सुखकार।
सील सिरोमण झूलती, तज परिचय नो त्याग।
सासण सू सन्मुख घणी जी काइ, सती ,गुर भगता गुणजान।
आण अखड आराधवा जी काइ, वारु रभा वखाण जी काइ॥

(रभा० गु० व० ढ़ा० १ गा० १, २, ८)

१. सवत् अठारै वयांसिये कांई, सती झमकू पहुती परलोग।
ऋपिराय सिंघाडो रभा तणो जी, कीधो जाणी जोग॥

(रभा० गु० व० ढ़ा० १ गा० ३)

२. गांमा नगरा विचरता, सुगुरु आण रस रग।

(रभां० गु० व० ढ़ा० १ गा० ६)

(४) सं० १९१२ मे उनका ४ साध्वियों से 'कंटालिया' चातुर्मास था। चातुर्मास के बाद चक्षु-वेदना से गुरु-दर्शन नही कर सकी।

इस वर्ष कटालिया चातुर्मास का 'आर्यादर्शन' में उल्लेख नही है पर स० १९१२ की प्राचीन चातुर्मास तालिका में है।

(५) स० १९१३ में उनका ४ साध्वियों से 'माढा' चातुर्मास था। चातुर्मास के बाद गुरु-दर्शन कर उन्होने २३ दिन सेवा की। चातुर्मास मे उनके साथ की साध्वी श्री उमेदाजी (१६३) ने ३१ दिन तथा लिछमाजी (१८५) ने १७ दिन का तप किया।

(६) स० १९१४ में उनका ४ साध्वियों से 'वगड़ी' चातुर्मास था। चातुर्मास के बाद चक्षु-व्यथा, वृद्धावस्था व अक्षम होने से गुरु-दर्शन नही कर सकी।

(७) सं० १९१५ में उनका ४ साध्वियो से 'ढूंधोड' (गुण वर्णन ढा० १ गा० १० मे कटालिया है) चातुर्मास था। चातुर्मास के वाद उपर्युक्त कारण से गुरु-दर्शन नही कर सकी।

६. साध्वी श्री बड़ी तपस्विनी हुई। उन्होने उपवास, वेले, तेले और चोले अनेक बार किये। शेष तप की तालिका इस प्रकार है:—

५	६,७,८	९,१०,११	१२	१३	१४	१५
१५	अनेक बार	अनेक बार	१	१	१	१

इस प्रकार उपवास से पन्द्रह दिन तक की लड़ी हो गई।

१५ वर्ष लगभग लगातार सावन और भाद्रव महीने में एकातर तप किया।

(रभा सती गुण० व० ढा० १ गा० ४ से ७)

शीतकाल मे वहुत वर्षो तक शीत परिषह सहन किया। तीन पछेवड़ी का परित्याग कर एक ही पछेवड़ी ओढ़ी।[1]

७. साध्वी श्री ने वृद्धावस्था में चक्षु-व्यथा तथा शारीरिक शक्ति क्षीण होने से मारवाड़ मे 'काठा की कोर' (कंटालियां, बगड़ी, माडा, सिरियारी आदि) के क्षेत्रो मे विहार किया।[2]

---

१. सीयाले वहु वर्षां लगै, तीन पछेवड़ी त्याग।

(रभा० गु० व० ढ़ा० १ गा० २)

२. शक्ति घटया वृद्ध वय पणै, सती विचरी काठा री कोर।
अधिक नीति आचार नी कांई, जबर वैराग सुजोड ॥

(रभा० गु० व० ढ़ा० १ गा० ९)

गुण वर्णन ढ़ा० गाथा १० के अनुसार उनका सं० १६१५ का अन्तिम चातुर्मास कंटालिया था (आर्यादर्शन ढाल ८ गा० ६ मे पयवर अर्थात् दूधोड़ लिखा है)। वहां से वे विहार करती हुई जेठ वदि ४ को खेरवा के निकटस्थ 'वाहला' गांव में पधारी। वहाँ उन्होने विशेष रूप से ऊनोदरी की। फिर अधिक अस्वस्थता देख कर जेठ सुदि १ को सवा प्रहर दिन वाकी रहा तव अत्यधिक वैराग्य भावना से चार शरणो का मुख से उच्चारण करने लगी। वोलते-वोलते जीभ थक गई तव मन को धर्म ध्यान मे स्थिर कर दिया। दिन थोड़ा देखकर साथ की साध्वियों ने उनको पानी पिलाना चाहा परन्तु उन्होने मुख के आगे हाथ रख दिया। इससे यह अनुमान लगता है कि उन्होने अपने मन मे चौविहार अनशन कर दिया था। (ख्यात आदि मे अनशन का उल्लेख है)। वे उसी रात्रि मे दिवगत हो गई।

इस प्रकार ४७ वर्ष सयम का पालन कर सं० १६१५ जेठ सुदि १ की रात्रि समाप्त होने मे सवा पहर समय वाकी रहा तव उन्होने 'वाहला' ग्राम मे पडित मरण प्राप्त किया। श्रावकों ने १३ खड की अर्थी वनाकर चरमोत्सव मनाया।

(रभा सती गु० व० ढा० १ गा० १० से १७)

'आर्यादर्शन' में स्वर्गवास तिथि ज्येष्ठ शुक्ला २ है—

रंभा 'कालू' नी जाण रे, जाति श्रावगी सोभती।
वीज जेठ सुदि मांण रे, परलोक पोहंती सती॥

(आर्यादर्शन ढा० ८ सो० ८)

साध्वी श्री चंपाजी (१६१), उमेदाजी (१६३) और लिछमाजी (१८५) ने उनकी अच्छी मेवा की।[1]

साध्वी श्री रभाजी के दिवंगत होने के पश्चात् उनके साथ की साध्वी चंपाजी (१६१) का ३ ठाणो से सं० १६१६ का चातुर्मास कालू मे हुआ—

रंभा काल कियां चंपा कालू, त्रिहुं ठांण चौमास।

(आर्यादर्शन ढा० ६ गा० ११)

जयाचार्य ने साध्वी श्री के गुणो की एक ढ़ाल वनाकर उनकी विशेपताओ का सम्यग् प्रतिपादन किया है।

---

१. चंपा उमेदां लिछमां अज्जा, सेव करी अधिकाय।
रंभा जन्म सुधारियो, उगणीसैं पनरे ताय॥
(रभा० गु० व० ढा० १ गा० १५)

१. साध्वी श्री पन्नांजी मारवाड़ मे 'खोड़' की वासिनी थी। उन्होंने पति वियोग के वाद दीक्षा ग्रहण की। (ख्यात)

ख्यात आदि में उनका दीक्षा संवत् नही है। उनके पहले की साध्वी श्री रंभाजी (७२) की दीक्षा सं० १८६८ मे हुई अतः उनकी दीक्षा भी सं० १८६८ में हुई, ऐसी सभावना की जाती है। दीक्षा कहां और किसके द्वारा हुई, यह प्राप्त नही है।

२. साध्वी श्री ने वहुत वर्षो तक चारित्र की आराधना कर अन्त मे अनशन पूर्वक समाधि-मरण प्राप्त किया। (ख्यात)

ख्यात आदि मे स्वर्गवास सवत् नही है। संतगुणमाला-पडित मरण ढाल २ मे भारीमालजी स्वामी के समय तक दिवगत साध्वियो मे उनका नाम नही है इससे यह निष्कर्ष निकलता है वे सं० १८७८ माघ वदि ८ तक विद्यमान थी। तत्पश्चात् आचार्य श्री रायचन्दजी के युग मे दिवगत हुई इसका प्रमाण यह है ऋपिराय के स्वर्गवास के समय विद्यमान साध्वियो मे उनका नाम नही है।

७४।२।१८ साध्वी श्री कल्लूजी (रोयट)

(संयम पर्याय सं० १८६९-१८८७)

लय—सखियां ! रह-रहकर……

संयम संयम की लेकर सरणी, कल्लू बन तारण-तरणी।
भर पाई नस-नस में दृढ़ भावना।
होकर पाई तप की उत्कट साधना ॥ध्रुव॥

मरुधरणी की मनस्विनी वह रत्न-कुक्षि की धरणी।
तीन-तीन तेजस्वी सुत की जननी जन-मन-हरणी।
पुत्रों २ को आज्ञा दी है, हिम्मत यह भारी की है।
धारी फिर खुद ने सद्गुरु-शासना[1]। हो कर पाई…॥१॥

सरल प्रकृति सौम्याकृति धृति की थी प्रतिमूर्ति निराली।
विनय-नम्रता वचन-मधुरता सुंदर कार्य-प्रणाली।
शोभा २ शासन में पाई, सद्गुण की छवि फैलाई।
करते मुक्त स्वर सभी सराहना[2]। हो……॥२॥

बन पाई वैराग्य-वाहिनी आत्मार्थिनी बड़ी वह।
तप की बलिवेदी पर चढ़कर सचमुच हुई खड़ी वह।
तप में २ ही जीवन झौका, खोला है विरति-झरोखा।
पूरी कर पाई मन की कामना। हो कर……॥३॥

दोहा

सक्षम पांचों इन्द्रियां, अवयव सभी दुरस्त।
फिर भी मन ऊंचा किया, भर कर भाव प्रशस्त॥४॥

सोलह वर्षो की वड़ी, वनी तालिका एक।
तपस्विनी इतिहास मे, अमिट लिख दिया लेख[3] ॥५॥

लय—सखियां रह रहकर……

खांसी की जव व्याधि हुई तब चिन्तन किया हृदय से।
संलेखन तप करूं अभी फिर अनशन-ग्रहण समय से।
आज्ञा २ गुरुवर से मांगी, स्फुरणा अंदर की जागी।
कर पाई अविचल विमल विचारणा। हो कर……॥६॥

सभी मनाह कर रहे उनको मुनि श्रमणी क्या श्रावक।
अभी शक्ति बहु, न करो जल्दी कहते है गणनायक।
बोली २ वह साहस धर के, तन मन में पौरुप भरके।
स्थायी बन पाई मेरी धारणा। हो कर……॥७॥

तीव्र तमन्ना मेरी प्रभुवर ! मनोभावना बढ़ती।
दृढ़ भावों की श्रेणी तप के लिए जा रही चढ़ती।
स्वामिन् ! २ वात्सल्य दिखाओ, स्वीकृति दे आश पुराओ।
सुनकर शिष्या की हार्दिक प्रार्थना। हो कर…… ॥८॥

सम्मति दी तव तपस्विनी मे तप में दौड़ लगाई।
व्रत बेले तेले इत्यादिक अधिकाधिक कर पाई।
भोजन २ को प्रायः भूली, ऊनोदरिका कर फूली।
साधिक संवत्सर तक की गर्जना। हो कर……॥९॥

दोहा

रोमांचितकारी बड़ा, श्रमणी का तप चित्र।
जन मानस को खींचता, त्याग-विराग विचित्र॥१०॥

लय—सखियां रह रहकर……

सूखी लकड़ी वत् तन सूखा पर वर्चस्व बढ़ा है।
चेहरे की छवि चमक रही है, पौरुष गगन चढ़ा है।

ध्याती २ है ध्यान शुभंकर, गाती गुरु-गान निरंतर।
करती है मंगल मंत्र-उपासना। हो कर……॥११॥

चरम समय में आ गुरुवर ने दर्शन उन्हें दिये हैं।
नंद स्वरूप-भीम-जय ने सब वांछित फलित किये हैं।
मेला-२ मुनि-साध्वीगण का, तांता आगन्तुक जन का।
भैक्षव-शासन की बढ़ी प्रभावना। हो कर……॥१२॥

दोहा

गुरुवर ने विहरण किया, रहकर के कुछ रोज।
फिर श्रमणी ने घोर तप, शुरू किया भर ओज ॥१३॥

लय—सखियां ! रह रहकर……

उठी असाता अन्तिम क्षण मे बोल न पाई मुख से।
सागारी अनशन करवाया तब सतियों ने सुख से।
स्वर्गों २ में शीघ्र सिधाई, मगलमय मिली बधाई।
फल पाई सम्यग् चरण आराधना। हो कर……॥१४॥

रामायण-छन्द

सत्यासी की साल श्रेष्ठतम सावन सित तेरस आई।
शहर खेरवा में चरमोत्सव की अभिनव महिमा छाई[१]।
जयाचार्य ने गूंथ दिये हैं गीतों में उनके गुण फूल।
अन्य स्थलों में भी कुछ-कुछ मिलता जीवन चित्रण मूल[२] ॥१५॥

१. साध्वी श्री कल्लूजी रोयट (मारवाड) निवासी आईदानजी गोलेछा (ओसवाल) की पत्नी और मुनि श्री सरूपचदजी (६२), भीमजी (६३) और जीतमलजी (जयाचार्य) की माता थी। मुनि सरूपचदजी का जन्म संवत् १८५०, भीमजी का १८५५ और जीतमलजी का १८६० मे हुआ था।

(स्वरूप नवरसा ढ़ा० १ दो० १ से ४)

आईदानजी की बहन एव कल्लूजी की ननद साध्वी श्री अजवूजी (४४) ने स० १८४४ मे स्वामीजी द्वारा दीक्षा ग्रहण की थी। उनके सपर्क व उपदेश से गोलेछा परिवार मे धार्मिक जागृति हुई।[1]

स० १८६२-६३ के लगभग एक बार साध्वी श्री अजवूजी रोयट पधारी। उस समय कल्लूजी साध्वी श्री की सेवा मे कम जाती थी। साध्वी श्री ने कम आने का कारण पूछा तब कल्लूजी ने कहा—'मेरा लघु पुत्र जीतमल बहुत अस्वस्थ है। उसके गले मे गाठ हो गई जिससे वह धान भी नही खाता, शरीर सूखा जा रहा है। इस चिता के कारण मै आपकी सेवा का लाभ नही ले सकती।'

(स्वरूप नवरसो ढा० १ गा० १ से ४)

साध्वी श्री ने कहा—'जीतमल बडा होने पर साधुव्रत ग्रहण करे तो उसे मनाह करने का त्याग ले लो।' कल्लूजी ने सहर्ष त्याग ले लिया। यह अभिग्रह करते ही जीतमल का कारण मिट गया और उन्होने धान खाना शुरू कर दिया। माता-पितादिक सभी को बडा हर्ष और आश्चर्य हुआ। लोगो ने कहा—'यह तो सतो के भाग्य से ही जीवित रह पाया है।[2]

---

१. भूआ त्रिण बधव तणी, अजवू समत अठार।
चमालीसे सजम लियो, आणी हरप अपार॥
तास प्रसगे धर्म रुचि, गोलेछां रे जाण।
अधिक-अधिक ही आसता, पूरण प्रीत पिछाण॥

(स्वरूप नवरसो ढा० १ दो० ८, ९)

२. दियो सती उपदेश सवायो, जो तुज सुत नै कारण मिट जायो।
जीवतो रहै दिक्षा लीये तायो, तो थे मत दीज्यो अतरायो।
तुम्हे करो वरजण रा त्यागो, तव त्याग किया धर रागो।
ए अभिग्रह किया तुरत ही जानो, कारण मिट्यो खावण लागो धानो।
हरण्या मात पिता सजन सवायो, मन इचरज अधिक सुपायो।
भली थइ जीवतो रह्यो एहो, ते तो संतां रा भाग्य करे हो।

(जय सुजश ढा० १ गा० १५ से १७)

सं० १८६३ मे 'मीरखा' डाकू ने रोयट को लूट लिया। उसी धक्के से आईदानजी की मृत्यु हो गई[1]।

पति वियोग होने पर कई वर्ष बाद कल्लूजी अपने तीनों पुत्रों को लेकर किसनगढ़ मे आकर रहने लगी।[2]

थोडे दिन वाद आचार्य श्री भारीमालजी एवं मुनि श्री हेमराजजी (३६) आदि किसनगढ पधारे। माता कल्लूजी अपने तीनो पुत्रो के साथ आचार्य श्री एव मुनि श्री की सेवा का लाभ लेने लगी।[3]

आचार्य श्री भारीमालजी कुछ दिन किसनगढ विराज कर जयपुर पधारे और वहा स० १८६६ का चातुर्मास किया। मुनि श्री हेमराजजी ने किसनगढ मे चातुर्मास किया। कुछ दिन मुनि श्री की सेवा कर माता कल्लूजी अपने तीनों पुत्रों को लेकर गुरुदेव की सेवा करने के लिए जयपुर आ गई। वहा वे लाला हरचदजी के मकान मे ठहरी। सभी आचार्यप्रवर की उपासना, व्याख्यान-श्रवण आदि का लाभ लेने लगे। सर्वप्रथम छोटे पुत्र जीतमलजी की दीक्षा लेने की भावना हुई।

(जय सुजश ढ़ा० ३ दो० १ से ४, गा० १ से ६)

चातुर्मास के पश्चात् आचार्य श्री भारीमालजी का अवस्थता के कारण फाल्गुन महीने तक वहा विराजना हुआ। मृगसर महीने में मुनि हेमराजजी, साध्वी हस्तूजी (४५), कस्तूजी (४७) तथा अजवूजी (३०) आदि सिंघाड़ों का गुरु-दर्शनार्थ वहां आगमन हुआ। उस समय साध्वी अजवूजी ने वड़े पुत्र सरूपचदजी को संयम लेने के लिए प्रेरक उपदेश दिया। साध्वी हस्तूजी ने उसका समर्थन करते हुए सरूपचंदजी ने कहा—'दीक्षा लेकर अपनी भुआ को यह सुयश

---

१. संवत् अठारै तेसठे, 'मीरखा' लूट्यो ग्राम।
घसका थी आईदानजी, परभव पहुता ताम॥
(जय सुजश ढा० २ दो० १)

२. विखो पड्यां थकां हिवै जोय, किता वर्ष पछै अवलोय।
सती कल्लूजी त्रिहुं सुत लेई तदा॥
रहया कृष्णगढ मे आय, विणज करै सरूप शशी ताय।
तिहा रहितां थका हिवै एकदा॥
(जय सुजश ढ़ा० २ गा० ५)

३. तिहा आया भारीमाल ऋषिराय, वलि हेम आदि सुखदाय।
च्यारू सेवा करै चित ऊमही॥
(जय सुजश ढ़ा० २ गा० ६)

दिलाओ।' समय की बात थी कि वे तत्क्षण दीक्षित होने के लिए तैयार हो गये और डेढ़ महीने से अधिक घर मे रहने का त्याग कर दिया।

तत्पश्चात् पोष शुक्ला ६ को आचार्य श्री भारीमालजी ने स्वरूपचन्दजी को दीक्षा प्रदान की। माघ वदि ७ को आचार्य श्री के आदेशानुसार मुनि रायचंदजी (ऋपिराय) ने जीतमलजी को दीक्षित किया।

(ऋपिराय सुजश ढा० ६ गा० १ से ८)

उनकी दीक्षा के बाद माता कल्लूजी और बीच के पुत्र भीमजी को वैराग्य भावना उत्पन्न हुई। तब दोनों—माता और पुत्र ने स० १८६६ फाल्गुन वदि ११ को जयपुर (मोहनवाड़ी) मे आचार्य श्री भारीमालजी के हाथ से दीक्षा स्वीकार की। दीक्षा के पश्चात् साध्वी श्री कल्लूजी को साध्वी अजबूजी (३०) को सौंप दिया :—

सरूप जीत संजम आदरयां पछै, भाई भीम तणा पिण हुआ परिणाम क।
फाल्गुन कृष्ण ग्यारस मां सहित ही, संजम दियो भारीमालजी स्वाम क।।
मोहनवाड़ी में चरण महोच्छव हुवो, धर्म उद्योत सु अधिक उदार क।
समणी अजबूजी नैं सूंपीया, सती कलूजी अति सुखकार क।।

(जय सुजश ढा० ४ गा० १८, १६)

सती कलूजी हो थया संजम नैं त्यार, तीन पुत्र नैं आज्ञा दीधी दीपती जी।
पोते लीधो हो संजम श्रीकार, कर जोड़ वांदू कलूजी मोटी सती।।

(जय रचित-कल्लू सती गु० व० ढा० ३ गा० १)

२. साध्वी श्री बड़ी गुणवती, चारित्र मे विशेष सजग, प्रकृति से स्वस्थ, आकृति से सौम्य, कार्य में कुशल और तत्पर, गंभीर, विनयवती, वैराग्यवती व तपस्विनी थी। स्व-पर मती लोग उनके दर्शन कर अत्यत प्रभावित होते थे।

(ख्यात)

३. साध्वी श्री ने प्रारभ से ही अपना जीवन तपस्या मे लगा दिया। प्रथम चातुर्मास मे उन्होंने १ पंचोला, दूसरे मे ८, तीसरे मे १५, चौथे मे १७, पाचवें में २०, छठे मे मासखमण, सातवें मे मासखमण, आठवे में २५ दिन, नौवें में मासखमण, दसवें में मासखमण, ११ वें मे मासखमण तप किया। इन पाचों मासखमणो मे प्रत्येक दिन सवा-डेढ़ सेर के लगभग पानी ही पिया।

उनके ११ वर्षो (सं० १८७० से १८८०) के तप की तालिका इस प्रकार है :—

५	८	१५	१७	२०	२५	३०
१	१	१	१	१	१	५

बाद के पांच (स० १८८१ से ८५) चातुर्मासो में उन्होने उपवास, वेले, तेले, चोले और पचोले अनेक वार किये।

(हेम रचित-कल्लू० गु० व० ढ़ा० १ गा० २ से ६)

४. १७ वे वर्ष (स० १८८६) मे उनके कुछ खांसी की शिकायत हो गई। पाचो इन्द्रिया परिपूर्ण एव आख की ज्योति ठीक थी। फिर भी उन्होने सलेखना करने का दृढ विचार कर लिया।[1]

स १८८६ के चातुर्मास के वाद साध्वी श्री कल्लूजी साध्वी श्री अजवूजी (३०) के साथ 'खेरवा' विराजती थी। अनुमानतः उस वर्ष उनका चातुर्मास खेरवा ही था। स० १८८६ के पाली चातुर्मास के पश्चात् मृगसर महीने मे आचार्य श्री रायचदजी ने खेरवा पधार कर साध्वी श्री को दर्शन दिये। आचार्य श्री के साथ तीनो पुत्र—मुनि सरूपचदजी, भीमजी और जीतमलजी भी थे। उन्होने मातु'श्री को सेवा का परम लाभ दिया एव स्वय जननी के उपकार से उऋण होकर कृत-कृत्य हुए। वहा उस समय ४३ साधु-साध्वियां एकत्रित हुए। पाली तथा जयपुर के वहुत श्रावक-श्राविका दर्शन करने के लिए आये। मृगसर महीने से वहा मेला-सा लग गया।[2]

साध्वी श्री कल्लूजी ने आचार्य श्री ऋषिराय से सलेखना करने की आज्ञा मांगी। गुरुदेव ने कहा—'अभी तुम्हारी शारीरिक शक्ति अच्छी है, फिर इतनी शीघ्रता क्यों कर रही हो।' सती ने कहा—'मेरा मन अव तपस्या के लिए उत्कठित हो गया है अतः आप आज्ञा प्रदान करे।' अन्य साधु-साध्वियो ने भी मना किया परन्तु उन्होने सविनय आग्रह पूर्वक सलेखना करने का आदेश प्राप्त कर लिया।[3]

---

१. पांचू इद्री सुध परवडी जी, आंख्या री जोत उदार।
कारण कायक खास नो जी, विध सू कियो ताम विचार॥

(जय कृत-कल्लू० गु० व० ढ़ा० १ गा० ६)

२. शहर खेरवे कलू भणी, दर्शन दिया ऋषिराय।
त्रिहु सुत पिण तिहा आविया, तयालीस ठाणा थया ताय॥

(जय सुजश ढ़ा० १३ दो० २)

श्रावक श्रावका दीपता, देखै सत दिदार।
पाली ने जैपुर तणा, बोहत मिल्या नर नार॥

(हेम कृत-कल्लू० गु० व० ढ़ा० २ दो० ४)

३. हिवै सलेखणा नी पूज्य पैं, आज्ञा लीयैं प्रसीध।
पूज कहै छती शक्ति मे, इती उतावली करो केम।

आचार्य श्री वहा २५ दिन विराजे। साध्वी श्री गुरु-दर्शन तथा सेवा से अत्यधिक हर्षित हुई। फिर गुरुदेव ने मुनि भीमजी को वहा रखकर तथा मुनि श्री स्वरूपचन्दजी और जीतमलजी को अपने साथ लेकर थली की तरफ विहार कर दिया[1]।

साध्वी श्री कल्लूजी ने ऋषिराय के पदार्पण के पहले से ही संलेखना तप चालू कर दिया था। उसका वर्णन इस प्रकार है :—सर्वप्रथम उन्होने एक महीने तक ऊनोदरी की। दिन भर मे एक फुलके से अधिक आहार नही लिया। वाद मे १५ दिन एकातर किये। फिर सात खुले उपवास किये। उसके वाद तेले-तेले तप चालू किया। लगभग ५० तेले किये। वीच मे ८ वेले किये। यह सारी तपस्या प्राय. चौविहार चली। पारणे मे ऊनोदरी भी वहुत की। वेले के पारणे मे एक फुलका तथा तेले के पारणे मे दो फुलको से अधिक भोजन नही किया। भोजन मे चार द्रव्य—रोटी, पानी, साग और पापड़ के अतिरिक्त कुछ नही लिया। जय सुजश ढा० १३ कलश १ मे उक्त सलेखना का वर्णन इस प्रकार है :—

'इक मास लग अवमोदरी दिन पनर एकंतर भला।
पछै अठम-अठम पारणे तप करण लागा गुणनिला।
सहु पचास तेला आसरै तप वीच अठ छठ जाणियै।
वलि पारणे अवमोदरी अति चौविहार के मांणियै॥'

मुनि हेमराजजी द्वारा रचित गीतिका १ गा० १५, १६ मे उल्लेख है कि साध्वी श्री ने तेले-तेले तप के पारणे में प्राय: एक रोटी अथवा एक रोटी प्रमाण जितना आहार 'तेलिया' (आधे पीले तिल), 'रई' (गेहू का मोटा आटा-सूजी)

सती कहै मुझ मन ऊठियो, मुझ तप करिवा अति प्रेम॥
अति हठ करि गणपति कनै, आज्ञा ले तिहवार।
हिवै इह विध करै सलेखणा, कहू सक्षेप विचार॥
(जय सुजश ढ़ा० १३ दो० ५ से ७)

१. गणी नित्य दर्शण दै धर चूप, सीख दियै अमृत रस कूप।
वलि जय आदि अमृत वरसावै, सती सुण अति हिय हुलसावै॥
दिवस पचीस रही गणिराय, विहार कियो थली दिशि ताय।
जय सरूप गणाधिप साथ, राख्या भीम नै तिहां विख्यात॥
(जय सुजश ढ़ा० १३ गा० ३, ४)

लिया एव विशेष ऊनोदरी की :—

'तेले तेले मांड्यो जद पारणो, जल नें एक रोटी जोय रे।
तरकारी ने पापड़ त्यां लियो, पूरो आहार न कीधो कोय रे।।
तेलियो रई वस्तू जाणज्यो, एक रोटी असाण रे।
पारणो कीधो ए रीत सूं एक दिन दोय रोटी जाण रे।।'

आचार्य श्री रायचदजी के विहार करने के पश्चात् साध्वी श्री ने जो सलेखना की वह इस प्रकार है :—पोष वदि ५ को उन्होने पंचोला करने का संकल्प किया फिर क्रमश. पाच मे दस, दस मे पन्द्रह, पन्द्रह मे मासखमण का नियम कर लिया। उसमे प्रतिदिन आधा सेर से ज्यादा पानी नही लिया। कभी पाव और कभी आधा पाव जल ही लेती। उसमे ७ दिन चौविहार भी किये। उसके बाद ११ और ८ दिन का तप किया। फिर एक तेला किया, उसमें थोड़ी सी 'आछ' ली। उसके बाद मे तीन महीने लगभग एकान्तर किये, फिर बहुत दिनों तक ऊनोदरी करके शरीर को सुखा लिया।

सलेखना के समय की गई तपस्या की सूची इस प्रकार है :—

उपवास	२	३	८	११	मासखमण
७	८	५०	१	१	१

इसके अतिरिक्त साढे तीन महीने एकांतर, आछ के आधार से एक तेला तथा अधिकाश अनोदरी तप किया।

स० १८८७ सावन सुदि १३ को पश्चिम प्रहर मे असाता उत्पन्न होने से उनकी जबान बद हो गई। तब साध्वी श्री अजबूजी ने उनको सागारी अनशन कराया जो एक प्रहर से सिद्ध हो गया।[1]

---

१. लारै पोह विद में सती सूर, पचख्या दिन पांच पंडूर।
पचख्या पाचा में दस दिन्न, दस मे पनरै किया दृढ मन्न।।
पनरा मे पचख्यो एक मास, जल आसरै अध सेर विमास।
कद ही पाव कदे अध पाव, तिण मे सात चोविहार सुभाव।।
कह्यो ए सहु तप श्रीकार, कियो उदक तणै आगार।
हिवै इग्यारै नो थोकडो एक, करी अठाई एक सुविसेख।।
वलि अठम भक्त इक ताहि, अल्प आछ लिवी तिण मांहि।
वलि त्रिण मास एकातर ताय, बहुदिन उणोदरी अधिकाय।।
दियो तप सू तन सूकाय, खखर थई तब काय।
पछै सावण शुक्ल तेरस नै दिन्न, पाछिल पोहर असाता उत्पन्न।।

अजबूजी के साथ की साध्वी श्री कंकूजी (११३) ने भी साध्वी श्री कल्लूजी की अच्छी सेवा की'।

५. जयाचार्य विरचित साध्वी श्री के गुण वर्णन की सात गीतिकाएं और मुनि श्री हेमराजजी द्वारा रचित दो गीतिकाएं है जिनकी समय-समय पर रचना की गई है। उनमे साध्वी श्री के जीवन की विविध विशेषताओ पर प्रकाश डाला गया है। उनके कुछ अश इस प्रकार है :—

(क) संयम साधिका एवं प्रेरिका

कलू हद कीधी करणी, वार कीर्ति जन वरणी।
अठम-अठम तप कीधो, लाहो मनुष जनम नो लीधो लाल।
सतियां महा सुखदाई ॥
संजम नो सहाज सुहायो, त्रिहु सुत नै दियो अधिकायो।
वर विनय भद्र लजवंती, सती शासण माहैं शोभंती।
मासखमण कियो षटवारो, तिण में अल्प उदक आगारो।
सती जिन शासण उजवाल्यो, वहु वर्ष चरण हद पाल्यो।
(जय कृत-कल्लू० गु० व० ढा० ८ गा० १ से ३)

(ख) गुण वनिका

सील सिरोमण हो समता सागर ताय, संत सत्यां नै घणी सुहावती।
सैणी सुगुणी हो गण में सुखदाय ॥

तिणे मुख सू वोल्यो नवि जायो, सत्या सागारी सथारो करायो।
अणसण आयो पोहर उनमान, सवत् अठारे सित्यासीये जान ॥
(जय सुजश ढ़ा० १३ गा० ५ से १०)
आयु अचिन्त्यो आवियो, सागारी सथार।
अजवूजी उचरावियो, आसरै पौहर उदार ॥
(स्वरूप विलास ढा० ४ दो० १०)
सरूप भीम जीत नी माता, वर्ष गुणतरे व्रत धारी जी काई।
समत अठार सत्यासीये अणसण, सती कलूजी तप भारी जी काई ॥
(शासन विलास ढा० ४ गा० १५)
सैहर खैरवे कार्य सारचा वड़ा सूरापणैं सू। (ख्यात)
२. सती कलूजी करी सलेखना, अजवूजी पँ आछी जी रे।
तन मन सेती सेव करी अति, सती ककूजी सांची जी रे ॥
(ककू० गु० व० ढ़ा० १ गा० ५)

गुण घणा हो सती कलूजी मांहि, मोसं पूरा गुण कह्या जाय नथी।
याद आयां हो हिवड़ो हुलसाय ॥
(जय कृत-कल्लू० गु० व० ढ़ा० ३ गा० ११, १२)

(ग) स्मृति के संदर्भ में

संजम पायो हो हूं पिण सती नै प्रशाद, ए उपगार सती नो भूलूं नथी।
सती शिरोमण कलूजी साख्यात ॥
(जय कृत-कल्लू० गु० व० ढा० ३ गा० ६)

याद आयां हरष अति आवै, सांप्रत तुझ वयण सुहावै।
प्रत्यक्ष ही म्है फल पायो, तुझ समरण महा सुखदायो ॥
(जय कृत-कल्लू गु० व० ढा० ८ गा० ४)

(घ) वैराग्य विभूति एवं तपोमूर्ति के रूप में

सूर चढ़ै संग्राम में, फिर पाछो नही जोवैं लिगार।
सती तप सग्राम सूरी घणी, धिन-धिन हो धिन सती अवतार ॥
(जय कृत-कल्लू० गु० व० ढा० २ गा० ४)

धिन-धिन-धिन सती नो सूरापणो, धिन धिन हो सती नो वैराग।
धिन-धिन-धिन सती रा परिणाम नैं, तपस्या ऊपर हो परिणाम अथाग ॥
पुन्य प्रवल पूज रायचंद ना, इधिको दीधो हो तपसा नो साज।
ओ तो भागवली पूज प्रगट्यो, तास प्रतापे हो कलूजी सारै काज ॥
सती तप कर तन सूकावियो, खंखर काया हो तप कर दीधी गाल।
देह ऊपर दीसै दूवली, भीतर दीपै हो 'तप लिखमी' विलास ॥
जिण रीते संजम लियो चूंप सूं, जैसा मिलिया हो गुर पूज दयाल।
जैसो ही जिनमार्ग दीपावियो, वारूं करणी हो कीधी उत्तम विसाल ॥
(जय कृत-कल्लू० गु० व० ढा० २ गा० ८ से १०, १३)

छती जोगवाइ भला भाव सूं, झाली तप रूपी समसेर रे।
मन वचन काया करी, लिया पाप कर्म नै घेर रे।
सुणी चौथा आरे धन्ना तणी, तपस्या अति धीर रे।
सती कलूजी आरे पांचमें, तोड़ै कर्म जंजीर रे।
(हेम कृत-कल्लू० गु० व० ढ़ा० १ गा० ११, १८)

चौथे आरे सांभल्यो, एहवो तप नें ऊणोदरी जाण कै।
पचम आरे पेखियो, कलूजी नी तपसा सुविहाण कै ॥
(जय कृत-कल्लू० गु० व० ढ़ा० ७ गा० ५)

७५।२।१६ साध्वी श्री वाल्हांजी (आउवा)

(दीक्षा सं० १८६६, स्वर्ग १८७८ माघ वदि ८ के पूर्व)

दोहा

ग्राम 'आउवा' वासिनी, 'वाल्हां' सती सुजान।
दीक्षित तज पति को हुई, भर कर विरति महान्[1] ॥१॥

तन्मयता से साधुता, पालन कर कुछ वर्ष।
पहुंची है सुर-सदन में, अनशन सहित सहर्ष[2] ॥२॥

१. साध्वी श्री वाल्हांजी मारवाड़ में आउवा (राणावास के पास) की रहने वाली थी। उन्होंने पति को छोड़कर बड़े वैराग्य से दीक्षा स्वीकार की[1]।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढ़ा० ५ गा० ६७)

ख्यात आदि मे उनके दीक्षा संवत् का उल्लेख नही मिलता किन्तु उनके पूर्व की साध्वी कल्लूजी (७४) एव वाद की साध्वी नगाजी (७६) की दीक्षा सं० १८६९ मे हुई, इससे उनका सवत् १८६९ प्रमाणित हो जाता है।

२. साध्वी श्री वड़ी वैराग्यवती थी। अन्त मे अनशन कर आराधक पद को प्राप्त हुई।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढ़ा० ५ गा० ६७)

ख्यात आदि मे उनका स्वर्गवास संवत् नही है परन्तु सतगुणमाला-पंडित-मरण ढाल २ मे भारीमालजी स्वामी के समय तक दिवगत साध्वियो मे उनका नाम है :—

कुसलांजी कुनणाजी संथारे सूरी, दोलांजी वालांजी संजम पूरी।
उमेदांजी संथारो कियो सतवंती सुमरो मन हरखे मोटी सती॥

(सतगुणमाला—पडितमरण ढ़ा० २ गा० १४)

इससे प्रमाणित होता है कि उनका स्वर्गवास स० १८७८ माघ वदि ८ के पूर्व हुआ।

---

१. वालाजी आउवा नी वासी, पीउ तज सजम हितकारी॥

(शासन विलास ढ़ा० ४ गा० १६)

७६।२।२० साध्वी श्री नगांजी (बोरावड़)

(संयम पर्याय सं० १८६६-१९०१)

रामायण-छन्द

चोरावड़ में था ससुरालय थे कुचेरिया परिजन-जन।
साल उनंतर मे पाया है आशूजी से संयम-धन[१]।
हस्तू सती साथ मे रहकर लिख पाई सद्गुण के लिख।
हृदय-सरलता प्रकृति-भद्रता और वढ़ाया विनय विवेक[२] ॥१॥

तपस्विनी बन सतरह वत्सर कर पाई तप एकांतर।
ग्यारह तक की लड़ी, किये दो तेरह और बीस धृति धर।
दो पछेवड़ी शीतकाल में रखी सती ने सतरह साल।
तेरह वर्ष एक ही ओढ़ी भरकर दिल में विरति विशाल[३] ॥२॥

दोहा

हस्तू सन्निधि में रही, हयन सात युत वीस।
सेवा भक्ति विशेप कर, सुयश चढ़ाया शीष[४] ॥३॥

अग्रगामिनी रूप में, विचरी वत्सर चार।
पुर-पुर में जिन धर्म का अच्छा किया प्रचार[५] ॥४॥

कारणवश मुनि जीवजी, दिन तो सत्ताईश।
एकाकी 'खालड' रहे भेटे फिर गण-ईश[६] ॥५॥

रामायण-छन्द

चलकर आई ग्राम सवलपुर किया वहां पर वर्षावास।
घोर वेदना प्रकटी तन मे फिर भी मन में समताभ्यास।

दोलां मूलां आदिक ने की परिचर्या देकर अति ध्यान।
भाव घृणा का नहीं रखा है देख सभी करते गुणगान ॥६॥

सागारी अनशन करवाया ग्रहण किया साञ्जलि झुककर।
उभय प्रहर में सिद्ध हो गया जय-जय ध्वनियां मुख-मुख पर।
शतोन्नीश पर एक साल की सावन सित पूनम आई।
संयम-यात्रा एक तीस वर्षों से सुफलित हो पाई[७] ॥७॥

१. साध्वी श्री नगांजी की ससुराल वोरावड़ (मारवाड़) मे थी। वे जाति से ओसवाल और गोत्र से कुचेरिया थी। उन्होने पति वियोग के पश्चात् साध्वी श्री आशूजी (५७) द्वारा स० १८६६ आषाढ़ शुक्ला ५ को 'वागोट' (वोरवड़ की तरफ) मे दीक्षा स्वीकार की।[1]

२. दीक्षित होने के पश्चात् वे साध्वी श्री हस्तूजी (४५) के सिंघाड़े मे रही। इसका शासन विलास ढा० ४ गा० १६ की वार्त्तिका तथा 'हस्तू-कस्तू 'पचढालिया' ढ़ा० ४ गा० १६ मे उल्लेख है।

साध्वी श्री हृदय से सरल, प्रकृति से भद्र, विनय एव विवेकशील थी।[2]

३. साध्वी श्री वडी तपस्विनी हुई। उन्होने सतरह चातुर्मासो मे एकातर तप किया। उपवास, वेले वहुत किये। तेले से लेकर ग्यारह तक लड़ी, दो वार तेरह और एक वार पानी के आगार से २० दिन का तप किया।

(नगां० गु० व० ढा० १ गा० १ से ३)

शीत ऋतु मे १७ वर्षो तक चार पछेवड़ी मे से दो पछेवडी और १३ वर्षो तक केवल एक पछेवड़ी ओढी।[3] इस प्रकार शीत परिषह सहन कर कर्मो की महान् निर्जरा की।

४. साध्वी श्री नगांजी साध्वी हस्तूजी (४५) के स्वर्गवास (स० १८९७) तक उनकी सेवा मे रही। अन्तिम समय उन्हे अच्छा सहयोग दिया जिसकी

---

१. निरमल नगांजी सती, सजम लीयो सार।
सरल भद्रीक सुहामणी, नाम जपो नर नार॥
सासरिया कुचेरिया, वोरावड़ मे जाण।
आसूजी सजम दियो, कीधो जन्म कल्यांण॥
समत अठारै गुणतरे, असाढ मास मझार।
सुदि पचम वागोट मे, लीधो सजम भार॥

(नगा० गु० व० ढा० १ दो० १ से ३)

२. सरल भद्रीक हिया तणी रे, हस्तूजी रे पास।
वारु विनय विवेक मे रे, हिवड़ै अधिक हुलास॥

(नगां० गु० व० ढा० १ गा० ५)

३. सतरै सीयाला मझै रे, दोय पछेवड़ी परिहार।
तेरै सीयाला मझै रे, एक पछेवड़ी आगार॥

(नगां० गु० व० ढा० १ गा० ४)

आचार्य श्री ऋषिराय ने सराहना की:—

करी चाकरी चूंप स्यूं रे, नगांजी चित्त ल्याय।
सतगुरु मुख सोभा लही रे, पंडित-मरण कराय॥

(हस्तू-कस्तू पंचढालिया ढ़ा० ४ गा० ६)

साध्वी श्री हस्तूजी की बहिन साध्वी श्री कस्तूजी (४७) के वर्णन में लिखा है कि उनके सवध की विशेप जानकारी साध्वी श्री नगांजी तथा दोलाजी (९६) से पूछकर करें :—

नगांजी दोलांजी नैं देख नैं, पूछी निरणो कीज्यो रे।
विविध वैराग नी वारता, सुण सुण नैं धार लीज्यो रे।

(हस्तू-कस्तू पंचढ़ालिया ढ़ा० ५ गा० १०)

५. सं० १८९७ मे साध्वी श्री हस्तूजी के स्वर्गवास के वाद संभवत साध्वी नगांजी का सिंघाड़ा हुआ। उन्होंने कुछ वर्ष विचर कर धर्म-प्रचार किया।

६. साध्वी श्री एक वार 'खालड' (मारवाड़) गांव मे विराज रही थी। उस समय मुनि जीवोजी (८६) ने मुनि ताराचदजी(११९) के साथ नागौर से विहार किया। रास्ते में ताराचदजी गण से अलग हो गये। मुनि जीवोजी अकेले खालड़ पहुचे। वहा साध्वी श्री विराज रही थी। ग्रीष्म ऋतु तथा शरीर अस्वस्थ व अशक्त होने से मुनि श्री वहां २७ दिन अकेले रहे। बाद मे आचार्य श्री रायचंदजी के दर्शन किये तव उन्होने फरमाया—'जीवोजी की विहार की शक्ति नही थी, ग्रीष्म ऋतु भी कड़ी थी तथा शरीर मे वीमारी भी थी, ऐसी स्थिति मे ये अकेले खालड़ मे सतियो के होते हुए भी रहे, इसमे इनका कोई दोप नही है। ऐसे कारण मे अकेला साधु-साध्वियो के होते हुए भी एक ग्राम मे अधिक दिनों तक रहे तो कोई आपत्ति नही।' (परम्परा के वोल २ संख्या २२४)

यह घटना स० १८९७ और १९०१ के वीच की होनी चाहिए क्योंकि साध्वी नगाजी साध्वी श्री हस्तूजी (४५) के स्वर्गगमन के वाद सं० १८९७ मे सिंघाडबध हुई और सं० १९०१ मे स्वर्ग पधार गई। ताराचदजी की दीक्षा सं० १८९५ की थी।

६. साध्वी श्री ग्रामानुग्राम विहार करती हुई सवलपुर पधारी। वहां उन्होने सं० १९०१ का चातुर्मास किया। चातुर्मास के प्रारंभ में ही वे अत्यधिक अस्वस्थ हो गई। समभावों से वेदना को सहती रही। उनके साथ की साध्वी दोलांजी[1]

---

१. साध्वी मूलाजी (१३७) की माता का नाम भी दोलांजी (क्रमांक १०८) था परन्तु उसका देहान्त सं० १८९८ में हो चुका था अत ये दोलांजी क्रमांक ९६ है।

(६६) और मूलाजी (१३७) ने दुर्गछा एवं ग्लानि को छोड़कर उनकी शुद्ध मन से परिचर्या की।[1]

साध्वी श्री की घोरतम वेदना को देखकर साथ की साध्वियो ने उन्हे सागारी संथारा करा दिया। उन्होने अरिहत आदि पाचो पदो को वद्धाञ्जलि नमस्कार कर उसे स्वीकार किया। लगभग दो प्रहर के अनशन के वाद वे दिवगत हो गई एवं अपने जीवन का सुधार कर लिया। उनकी घोर वेदना, कष्ट सहिष्णुता तथा अनशन के विपय मे जयाचार्य ने वड़े सतोले शब्दो में उल्लेख किया है। पढ़िये निम्नोक्त पद्य.—

कष्ट पडयां कायम रहै रे, ते साचेला सूर हो लाल।
सहै वेदना समभाव सूं रे, पौरस आंणी पूर हो लाल॥
उज्वल वेदन आकरी रे, कायर कंपै देख हो लाल।
धिन-धिन नगांजी सती रे, सहै निज सचित पेख हो लाल॥
सूर चढ़ै संग्राम में रे, पर दल दियै हटाय हो लाल।
तिम सती नो मन वैराग में रे, नही वेदन री परवाय हो लाल॥
वेदन अधिकी जांण नें रे,सत्यां करायो सागारी संथार हो लाल।
चित सुध पंच पदां भणी रे, कर जोड़ कियो अंगीकार हो लाल॥
दोय पौहर रै आसरै रे, अणसण आयो सार हो लाल।
जन्म सुधारयो आपरो रे, कर गया खेवो पार हो लाल॥
(नगा० गु० व० ढ़ा० १ गा० ८ से १२)

इस प्रकार साध्वी श्री नगांजी ने साधिक ३१ वर्ष की साधना सम्पन्न कर सं० १९०१ सावन सुदि १५ को सवलपुर मे दो प्रहरके सागारी अनशन से समाधि

---

१. विचरत-विचरत आविया रे, सवलपुरे सुखदाय।
कारण अधिको ऊपनो रे, सहै समभाव सुहाय॥
दोला मूलाजी सती रे, चित सुध सेवा कीध।
दिल नी दुगछा मेट नै रे, जग मांहै जश लीध॥
(नगां० गु० व० ढ़ा० १ गा० ६, ७)

मरण प्राप्त किया[१]।

जयाचार्य ने साध्वी श्री के गुणों की एक ढाल बनाई। उसमें साध्वी श्री के पुरुषार्थ एवं सहनशीलता की भूरि-भूरि सराहना की है। ख्यात, शासनप्रभाकर ढा० ५ गा० ६८ से ७४ मे भी साध्वी श्री से सम्बधित उपर्युक्त कुछ वर्णन है।

---

१. संवत् उगणीसै एके समै रे, श्रावण सुदि पूनम सार।
परलोके पहुती सती रे, वरत्या जै-जै कार॥
(नगा० गु० व० ढा० १ गा० १३)
नगां गुणतरे चरण सु अणसण, उगणीसै एके धारी जी।
(शासन विलास ढा० १ गा० १६)

७७।२।२१ साध्वी श्री उमेदांजी (पाली)

(दीक्षा सं० १८७०, स्वर्ग सं० १८७८ माघ वदि ८ के पूर्व)

दोहा

पाली शहर निवासिनी, सती 'उमेदां' स्वच्छ।
पाई उज्ज्वल भाव से, पच महाव्रत उच्च[1] ॥१॥

सरल-मना कर साधना, भर अनशन आलोक।
बीदासर की भूमि से, चली गई सुरलोक[2] ॥२॥

१. साध्वी श्री उमेदांजी पाली (मारवाड़) निवासिनी थी। उन्होंने पति वियोग के बाद दीक्षा स्वीकार की। (ख्यात)

ख्यात आदि में उनका दीक्षा-संवत् नही है। उनके पूर्व की साध्वी श्री नगांजी (७६) की दीक्षा सं० १८६९ आषाढ़ शुक्ला ५ को हुई और बाद की साध्वी श्री रतनांजी (७८) की दीक्षा सं० १८७० में हुई। अतः अनुमान किया जाता है कि उनकी दीक्षा सं० १८७० में हुई।

२. साध्वी श्री स्वभाव से बड़ी सरल थी। अन्त में उन्होंने अनशन कर बीदासर में अपना कल्याण किया[1]। (ख्यात)

साध्वी श्री का स्वर्गवास संवत् नही मिलता परन्तु संत गुणमाला-पंडित मरण ढ़ाल में भारीमालजी स्वामी के समय तक दिवंगत साध्वियों मे उनका नाम है[2]। इससे प्रमाणित होता है कि उनका स्वर्गवास सं० १८७८ माघ वदि ८ के पूर्व हो चुका था।

---

१. सैहर पाली नी सती उमेदां, बीदासर अणसण भारी।

(शासन-विलास ढ़ा० ४ गा० १७)

शासन प्रभाकर ढ़ा० ५ गा० ७५ में भी यही उल्लेख है।

२. उमेदां जी संथारो कियो सतवंती।

(संत गुणमाला-पंडित-मरण ढ़ा० ३ गा० १४)

७८।२।२२ साध्वी श्री रत्नांजी (डीडवाणा)

(संयम-पर्याय १८७०-१८८७)

गीतक-छन्द

डीडवाणा ग्राम गाया नाम 'रत्ना' मूलतः।
किया है चरितार्थ संयम-रत्न लेकर मुख्यतः।
साल सतरह तक किया श्रुत-साधना रसपान है।
शुद्ध भावों से सफलतम कर लिया अरमान है[1]।

---

१. साध्वी श्री रत्नांजी डीडवाणा (मारवाड़) की रहने वाली थी। उन्होने पति वियोग के बाद स० १८७० मे दीक्षा ग्रहण की।

उन्होंने सतरह साल लगभग साध्वी-जीवन बिताकर शुद्ध भावो से समाधि मरण प्राप्त किया[1]। (ख्यात)

---

१. चरण सत्तरे रत्नाजी फुन, सत्यासीये आयु धारी जी।

(शासन-विलास ढा० १ गा० १७)

शासन प्रभाकर ढ़ा० ५ गा० ७५ मे ऐसा ही उल्लेख है।

७६।२।२३ साध्वी श्री चन्दणाजी (माधोपुर)

(संयम-पर्याय सं० १८७०-१८८७)

दोहा

माधोपुर की वासिनी, सती चन्दना नाम।
पति वियोग के बाद में, साध्वी बनी निकाम ॥१॥

सकुशल सतरह साल तक, पालन कर चारित्र।
प्राप्त किया आनंद से, पंडित मरण पवित्र[1] ॥२॥

---

१. साध्वी श्री चन्दनाजी माधोपुर (ढूढाड) की वासिनी थी। उन्होने पति वियोग के बाद स० १८७० मे दीक्षा स्वीकार की।

उन्होने सतरह वर्ष लगभग चारित्र का पालन कर सं० १८८७ मे समाधि पूर्वक मरण प्राप्त किया।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढा० ५ गा० ७६)

चनणां चारित्र वर्ष सत्तरे, सत्यासीये पोंहता पारी जी।
पच्यासीये अणसण केशरजी, माधोपुर ना विहु धारी जी।

(शासन विलास ढ़ा० ४ गा० १८)

उक्त गाथा से ऐसा प्रतीत होता है कि चनणांजी और केशरजी दोनों ने एक साथ दीक्षा ग्रहण की थी। आचार्य श्री भारीमालजी का उस वर्ष चातुर्मास माधोपुर मे था इससे सभावना की जाती है कि दोनो दीक्षाए आचार्य श्री के हाथ से माधोपुर मे हुई।

८०।२।२४ साध्वी श्री केशरजी (माधोपुर)

(संयम-पर्याय सं० १८७०-१८८५)

दोहा

'केशर' केशर पा! गई, संयममय सानंद।
मिलो हवा अनुकूल फिर, फैली वड़ी सुगन्ध ॥१॥

पन्द्रह वत्सर साधना, कर मेटी सव व्याधि।
अनशन लेकर अन्त में, पाई मरण समाधि[1] ॥२॥

---

१. साध्वी श्री केशरजी माधोपुर (ढूंढाड) की वासिनी थी। उन्होंने पति वियोग के वाद स० १८७० मे चारित्र ग्रहण किया।

उन्होंने १५ वर्ष लगभग संयम-पर्याय का पालन कर स० १८८५ मे अनशन पूर्वक स्वर्ग-गमन किया।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढा० ५ गा० ७६)

चनणां चारित्र वर्ष सत्तरे, सत्यासीये पोंहता पारी जी।
पच्यासीये अणसण केशरजी, माधोपुर ना विहुं धारी जी।

(शासन विलास ढा० ४ गा० १८)

उक्त गाथा से ऐसा प्रतीत होता है कि चनणांजी और केशरजी दोनों ने एक साथ दीक्षा ग्रहण की। आचार्य श्री भारीमालजी का उस वर्ष चातुर्मास माधोपुर मे था इससे सभावना की जाती है कि दोनो दीक्षाएं आचार्य श्री के हाथ से माधोपुर मे हुई।

८१।२।२५ साध्वी श्री गेनांजी (ज्ञानांजी) (गोपालपुरा)

(संयम-पर्याय सं० १८७०-१८६४)

रामायण-छन्द

था 'गोपालपुरा' गेनां के ज्ञाति-जनों का वास स्थल।
पति को छोड़ बनी वे साध्वी भर भावों में विरति सबल[1]।
विविध तपस्या कर जीवन में चमक चौगुनी लाई है।
आराधक पद पा अनशन युत कीर्ति सौगुनी पाई है[2]।

१. साध्वी श्री गेनांजी (ज्ञानाजी) थली में 'गोपालपुरा' (लाडनूं, वीदासर के बीच) की निवासिनी (जाति से ओसवाल) थी। उन्होने पति को छोड़कर पूर्ण वैराग्य से दीक्षा ग्रहण की[1]। (ख्यात)

उनका दीक्षा-सवत् ख्यात आदि मे नही है परन्तु उनके पूर्व की साध्वी चन्नणांजी (८०) व केशरजी (८१) की दीक्षा स० १८७० मे और बाद मे साध्वी जतनाजी (८५) की दीक्षा स० १८७१ मे हुई, इससे प्रतीत होता है कि क्रमांक ८२ से ८४ तक की दीक्षा सं० १८७० मे हुई।

साध्वी गेनांजी की देवरानी साध्वी श्री वन्नाजी (८४) ने उनके वाद दीक्षा स्वीकार की, ऐसा वन्नांजी की ख्यात तथा शासन-विलास ढ़ा० ४ गा० २१ में उल्लेख है।

२. साध्वी श्री ने तपस्या वहुत की। स० १८९४ में अनशन ग्रहण कर आराधक पद प्राप्त किया। उनका साध्वी जीवन २४ वर्षों का रहा[2]।

(ख्यात)

१. गैनाजी गोपालपुरा ना, पीउ छोड सजम भारी जी।

(शासन विलास ढ़ा० ४ गा० १६)

२. तप वहु कीधो वर्ष चोराणुंअे, सथारो तसुं सुखकारी जी।

(शासन विलास ढा० ४ गा० १६)

शासन प्रभाकर ढा० ५ गा० ७७ में भी उक्त उल्लेख है।

८२।२।२६ साध्वी श्री गंगाजी

(संयम-पर्याय १८७०-१८७६)

दोहा

गंगा ने स्वेच्छा किया, गण-गंगा में स्नान।
धोकर दुष्कर मैल को, पावन बनी महान्' ॥१॥

---

१. साध्वी गंगाजी और नोजांजी (८३) आचार्य भिक्षु के समय सं० १८३७ मे गण से बहिर्भूत साध्वी फत्तूजी (१०) की शिष्याएं थी। वे आचार्य श्री भारीमालजी के युग मे भिक्षु शासन में दीक्षित हुई। उन्होंने ६ वर्ष चारित्र का पालन किया एवं सं० १८७९ सिरियारी में अनशन कर पंडित-मरण प्राप्त किया :—

गंगा नोजां ए दोनूंई, फत्तू तणी चेली धारी जी।
चरण लेई नें वर्ष गुण्यासीये,संथारो वर सिरियारी जी।

(शासन विलास ढा० ४ गा० २०)

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० ५ गा० ७८, ७९ मे भी उक्त वर्णन है।

८३।२।२७ साध्वी श्री नोजांजी

(संयम-पर्याय सं० १८७०-१८७९)

दोहा

नोजां ने खोजा सही, रास्ता करके यत्न।
चमकाया कर साधना, दुर्लभ नर-भव रत्न[1] ॥१॥

---

१. साध्वी श्री नोजाजी और गगाजी (८२) आचार्य भिक्षु के समय सं० १८३७ मे गण से वहिर्भूत साध्वी फत्तूजी (१०) की शिष्याएं थी। वे आचार्य श्री भारीमालजी के युग मे भिक्षु शासन मे दीक्षित हुई। उन्होने ९ वर्ष साधुत्व का पालन किया एव स० १८७९ सिरियारी मे अनशन कर पडित-मरण प्राप्त किया :—

गंगा नोजां ए दोनूंई, फत्तू तणी चेली धारी जी।
चरण लेई नै वर्स गुण्यासीये, संथारो वर सिरियारी जी।

(शासन विलास ढ़ा० ४ गा० २०)

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० ५ गा० ७८, ७९ मे भी उक्त वर्णन है।

८४।२।२८ साध्वी श्री वन्नांजी (गोपालपुरा)

(दीक्षा सं० १८७० या ७१, स्वर्ग सं० १८८७ के बाद ऋषिराय युग में)

रामायण-छन्द

'वनां' देवरानी 'गेनां' की थी 'गोपालपुरा' ससुराल।
बीदासर में पीहर उनका था सेखाणी गोत्र विशाल।
दीक्षित हो वैराग्य भाव से संयम-सुख में 'रम पाई'।
शहर कांकरोली में अनशन करके सुर पुर पहुंचाई।

१. साध्वी श्री वन्नाजी की ससुराल गोपालपुरा (स्थली) में थी। पीहर चीदासर के सेखाणी (ओसवाल) परिवार मे था। वे पूर्व दीक्षित साध्वी गेनांजी (८१) की देवरानी थी। उन्होने पति वियोग के बाद दीक्षा स्वीकार की[1]।

(ख्यात)

उनके पूर्व की दीक्षा स० १८७० और बाद की स० १८७१ मे हुई। साध्वी विवरणिका तथा सेठिया संग्रह मे दीक्षा सवत् १८७१ लिखा है अत. उनकी दीक्षा स० १८७० या ७१ मे हुई, ऐसा प्रतीत होता है।

२. साध्वी श्री ने सयम की आराधना कर काकरोली मे स्वर्ग-गमन किया[2]।

(ख्यात)

साध्वी विवरणिका तथा शासन प्रभाकर मे उनका सथारे मे स्वर्गवास लिखा है परन्तु अन्य ग्रन्थो से समर्थित न होने से वह प्रमाणित नही है।

उनका स्वर्गवास सवत् नही मिलता। संतगुणमाला-पडित-मरण ढ़ा० २ मे आचार्य श्री भारीमालजी के समय मे दिवगत साध्वियो मे उनका नाम नही है इससे उनका स्वर्गवास स० १८७८ माघ वदि ८ के बाद ठहरता है। साध्वी श्री वीजाजी (४०) की गुण वर्णन ढाल मे उल्लेख मिलता है कि सवत् १८८७ मे साध्वी वीजाजी ने अनशन किया तब जोताजी(४८), वन्नाजी(८४), नदूजी (९२) और नोजांजी (९८) उनकी सेवा मे थी[3]। इससे यह प्रमाणित होता है कि वे (वन्नांजी) स० १८८७ तक विद्यमान थी।

आचार्य श्री रायचंदजी के स्वर्गवास के समय वे विद्यमान नही थी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वे स० १८८७ के बाद और स० १९०८ माघ वदि १४ के पूर्व आचार्य श्री ऋषिराय के युग मे दिवगत हुई।

---

१. सती गेनांजी री देराणी, पियर विदासर सेखाणी जी।

(शासन-विलास ढा० ४ गा० २१)

२. कांकडोली में परभव पहुंती, सती वनाजी सुखदाणी जी।

(शासन विलास ढ़ा० ४ गा० २१)

१. जोतांजी वनांजी नंदूजी नोजांजी, सेवा कीधी कर जोडी।

(हेम मुनि रचित-वीजा सती गुण व० ढा० १ गा० १४)

८५।२।२६ साध्वी श्री जतनांजी (वाजोली)

(दीक्षा सं० १८७१, स्वर्ग सं० १८७८ माघ वदि ८ के बाद ऋषिराय युग में)

दोहा

'जतनां' के परिवार का, वाजोली में वास।
चरण इकहत्तर साल में, ले पाई सोल्लास ॥१॥

बोरावड में वीरता, दिखलाई साकार।
अनशन कर दृढ़ भाव से, जीवन लिया सुधार' ॥२॥

१. साध्वी श्री जतनांजी वाजोली (मारवाड) की निवासिनी थी। उन्होंने पति वियोग के वाद सं० १८७१ में संयम ग्रहण किया। अत मे वीरवृत्ति से संथारा कर अपनी आत्मा का उद्धार किया :—

> वाजोली ना चरण इकोतरे, सती जतनांजी सुखकारी जी।
> संथारो वोरावड़ सरवरो, निज आतम प्रति निस्तारी जी॥
>
> (शासन-विलास ढा० ४ गा० २२)

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढ़ा० ५ गा० ८१ मे भी उपर्युक्त वर्णन है।

ख्यात आदि मे उनका स्वर्ग सवत् नही मिलता, सत गुणमाला—पडित मरण ढाल २ मे आचार्य श्री भारीमालजी के समय में दिवंगत साध्वियो मे उनका नाम नही है, इससे प्रमाणित होता है कि वे स० १८७८ माघ वदि ८ तक विद्यमान थी।

आचार्य श्री रायचंदजी के स्वर्गवास के समय विद्यमान साध्वियो मे उनका नाम नही है इससे फलित होता है कि वे सवत् १८७८ माघ वदि ८ के पश्चात् आचार्य श्री ऋषिराय के युग मे दिवंगत हुई।

८६।२।३० साध्वी श्री मयाजी (देवगढ़)

(संयम-पर्याय सं० १८७२-१९०३)

गीतक-छन्द

'मया' का ससुराल 'सुरगढ़' गोत्र वर सहलोत था।
पिता गंगापुर निवासी खुला धार्मिक-श्रोत था।
स्वसा 'दीप' व 'जीव' की थी ननद 'चत्रू' की सही।
संग से मुनि साध्वियों के विरति की धारा वही॥१॥

सती 'जोतां' पास पाई 'मया' संयम-संपदा।
वहत्तर की साल मृगसर मास की विद प्रतिपदा।
युगल बांधव और भाभी हुए दीक्षित वाद में।
मोद चारों पा गये रम भिक्षु गण-प्रासाद में[1]॥२॥

प्रकृति से ऋजु विनयशीला विरति-रस विस्तारिणी।
आगमादिक ज्ञान करके वनी धर्म-प्रचारिणी।
कला थी व्याख्यान की स्मृति में हजारों पद्य थे।
मौन जप स्वाध्याय में क्षण जा रहे अनवद्य थे[2]॥३॥

दोहा

व्रत वेले आदिक वहुत, किये थोकड़े और।
ऊपर सतरह तक चढ़ी, आत्मिक शक्ति वटोर[3]॥४॥

अनशन पर मुनि दीप के, नवति तीन की साल।
'पुर' में दर्शन के लिए, पहुंची है खुशहाल[4]॥५॥

सप्त नवति की साल में, 'हस्तू' श्रमणी संग।
सेवा अन्तिम समय में, कर पाई सोमगं[५] ॥६॥

सोरठा

शतोन्नीस पर तीन, संवत् सुरपुर-गमन का।
चंदेरी में सीन, मृत्यु महोत्सव का खिला[६] ॥७॥

१. साध्वी श्री मयाजी की ससुराल देवगढ के सहलोत (ओसवाल) परिवार मे थी। उनके पिता का नाम हीरजी 'चावत' और माता का कुशाला जी था। ननिहाल बावेल गोत्र मे था। उनका पैत्रिक परिवार पहले आमेट मे रहता था)। (फिर गगापुर रहने लगा ऐसा दीपोजी, जीवोजी की ख्यात मे स्पष्ट उल्लेख है।

मयाजी ने पति वियोग के बाद स० १८७२ मृगसर वदि १ को आमेट में साध्वी श्री जोतांजी (४८) के हाथ से दीक्षा स्वीकार की।[1]

उनके दो भाई मुनि दीपोजी (८५), जीवोजी (८६) और भोजाई साध्वी चनूजी (१००) ने स० १८७७ मे दीक्षा ग्रहण की।

इस प्रकार एक परिवार के चार सदस्य भिक्षु-शासन मे दीक्षित हो गये।

२. साध्वी मयाजी प्रकृति से सरल, विनयवती और बड़ी वैराग्यवती थी। उन्होने सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ व्याख्यानादिक कला का विकास किया। अनेक थोकड़े, श्लोक, छन्द आदि सीखे। कथा, दृष्टान्त आदि की अच्छी जानकारी प्राप्त की।

उन्होने अग्रगण्या होकर मारवाड, मेवाड, मालवा, थली और ढुंढाड के क्षेत्रों मे विचर कर धर्म का प्रचार-प्रसार किया।

वे प्रतिदिन एक मुहूर्त्त मौन रखती। नमस्कार महामंत्र का जाप और भिक्षु स्वामी का स्मरण नियमित रूप से करती तथा स्वाध्याय ध्यान में रत होकर समय को सफल बनाती।

(जीव मुनि रचित मया गुण व० ढा० १ गा० ५, ६ तथा
(ढा० २ गा० १, ५ से ७ के आधार से)

३. साध्वी श्री ने उपवास, बेले आदि बहुत तप किया। अठाई आदि अनेक थोकड़े किये। ऊपर में १७ दिन का तप किया।

(मया गुण० व० ढ़ा० २ गा० ४)

---

१. पीहर सजम पाइयो रे, सैहर आमेट मझार।
सुरगढ पायो सासरो रे, जात सेलोत सुधार॥
जनक हीरजी जाणियै रे, चावत जात सुठांम।
बेटी बावेलां तणी रे, मात खुशाला जी नाम॥
चेली भीखू साम नी रे, जोताजी जसवंत।
स्वहत्थ सजम आपियो रे, मयाजी नै मतवत॥
समत अठारै बोहीतरे रे, आवियो 'आगण' मास।
वासर विद एकम तणो रे, पूर्ण पूरी आस॥
(मुनि जीवोजी रचित मया सती गुण० व० ढा० १ गा० २ से ५)

४. उनके भाई मुनि दीपजी (८५) सं० १८९३ फाल्गुन शुक्ला ३ को २२॥ प्रहर के अनशन से 'पुर' में समाधि-मरण प्राप्त हुए। उनके अनशन के समय साध्वी मयाजी अन्य साध्वियों को साथ लेकर मुनि श्री के दर्शनार्थ वहां पहुंचीं।[1]

५. साध्वी श्री हस्तूजी (४५) ने सं० १८९७ भाद्रव शुक्ला १२ को 'लावा' मे अनशन कर पडित मरण प्राप्त किया। उस समय साध्वी मयाजी उनके साथ मे थी। उन्होने अन्य साध्वियो—नगाजी (७६), दोलांजी (९६) और नंदूजी (९२) के साथ उनकी अच्छी सेवा की।

(हस्तू कस्तू पंचढ़ालिया ढ़ा० ४ गा० ६ से १०)

'हस्तू-कस्तू पंचढ़ालिया' के निम्नोक्त पद्य से ज्ञात होता है कि साध्वी मयाजी पहले से ही साध्वी हस्तूजी के सिंघाड़े मे थी और उन्हे व्याख्यान आदि का सहयोग करती रही:—

मयाजी मोटी सती रे, रही ज्ञान गुण पाय।
सूत्र सिद्धान्त वखांण स्यूं रे, हस्तूजी सुख पाय॥

(हस्तू कस्तू पं० ढ़ा० ४ गा० ७)

६. साध्वी श्री सं० १९०३ लाडनू में दिवंगत हुईं।[2]

(ख्यात)

---

१. लघु भाई सथारो पचखावियो, चित उज्जल हो दीयो धर्म नो साझ।
मया वाई आदि आरजीयां आवी मिली, विस्तरियो हो जग जश आवाज॥
(जयाचार्य रचित दीप मुनि गुण व० ढ़ा० १ गा० २०)

२. दीप जीव नी वहिन मयाजी, चरण वोहितरे सुविचारी जी।
उगणीसैं तीये वर्ष परभव, सैहर लाडणू सुखकारी जी॥
(शासन विलास ढ़ा० ४ गा० २३)

८७।२।३१ साध्वी श्री मघूजी (सणदरी)

(दीक्षा सं० १८७२, स्वर्ग सं० १६०८ जयाचार्य के समय)

दोहा

'मघू' 'सणदरी'-वासिनी, विरति युक्त निर्भीक ।
बनी महाव्रत-धारिणी, भावों से रमणीक[1] ॥१॥

किया सिंघाड़ा पूज्य ने, विनयादिक गुण देख ।
पावस मिलता आपका, गढ़ सुजान में एक[2] ॥२॥

संवत्सर छत्तीस तक, पाला चरण प्रशस्त ।
शतोन्नीस की आठ में, जय-युग में स्वर्गस्थ[3] ॥३॥

---

१. साध्वी श्री मघूजी मारवाड मे 'सणदरी' की रहने वाली थी। उन्होंने पति वियोग के बाद दीक्षा ग्रहण की। (ख्यात)

उनके दीक्षा-वर्ष का उल्लेख नही मिलता। उनके पूर्व की साध्वी मयाजी (८६) की दीक्षा स० १८७२ मृगसर वदि १ को हुई और बाद की साध्वी दीपांजी (९०) की दीक्षा स० १८७२ मे हुई, अत. बीच की क्रमाक ८७ से ८९ तक की साध्वियों का दीक्षा-सवत् १८७२ ठहरता है।

साध्वी मघूजी और बीजाजी एक गांव की थी तथा एक साल मे दीक्षित हुई[1] इससे लगता है कि दोनो की दीक्षा एक साथ हुई।

दीक्षा कहा और किसके द्वारा हुई यह प्राप्त नही है।

२. साध्वी श्री ने अग्रगण्या होकर विहार किया, इसका आधार 'सरदार सुजश' मे मिलता है। वहा उल्लेख है कि स० १८९७ मे सरदार सती जयाचार्य के पास दीक्षा लेने के लिए उदयपुर जा रही थी तब उन्होंने साध्वी श्री के सुजानगढ मे दर्शन किये :—

बीदासर चत्रू सती, दर्शण किया तिवार।
पछै सुजानगढ आवी किया, मघु सती ना सार॥

(सरदार सुजश ढ़ा० ८ गा० २३)

इससे प्रमाणित होता है कि स० १८९७ मे उनका चातुर्मास सुजानगढ था।

३. साध्वी श्री का स्वर्गवास आचार्य श्री रायचदजी के स्वर्गवास होने के पश्चात् अर्थात् सं० १९०८ माघ वदि १४ के पश्चात् स० १९०८ आषाढ शुक्ला १५ के पूर्व जयाचार्य के समय मे हुआ .—

पूज परभव पहुता पछै, आठे वर्ष मझार।
मुनि पोखर दिख्या ग्रही, समणी थई इग्यार॥
छोडयो एक हुकमा भणी, समणी मघू सोय।
गीगां वाजोली तणी, परभव पहुंती दोय॥

(आर्यादर्शन ढा० १ दो० ८, ९)

ख्यात मे लिखा है कि उन्होने अनेक वर्ष चारित्र का पालन कर स० १९०८ मे स्वर्ग प्रस्थान किया।

परभव उगणीसै आठे मघु, पछै विजा पोहती पारी जी।

(शासन-विलास ढा० ४ गा० २४)

शासन प्रभाकर ढ़ा० ५ गा० ८३ मे ऐसा ही उल्लेख है।

---

१. सती मघूजी सरल विजाजी, गांम सणदरी रा धारी जी।

(शासन-विलास ढा० ४ गा० २४)

८८।२।३२ साध्वी श्री बींजाजी (सणदरी)

(दीक्षा सं० १८७२, स्वर्ग सं० १९१६ के पश्चात्
जयाचार्य के समय में)

दोहा

वास 'सणदरी' ग्राम में, 'बींजा' का विख्यात ।
व्रतिनी बन वैराग्य से, लाई नया प्रभात[1] ॥१॥

भद्र प्रकृति अति नम्रता, स्फूर्ति काम में खूब ।
डरती पल-पल पाप से, फलती ज्यों वन-दूब[2] ॥२॥

बींजा अमृतां (अमृतां बीजां) नाम से, हुआ सिंघाड़ा युक्त ।
'आर्या दर्शन' नाम की, कृति में विवरण उक्त ॥३॥

बहु वर्षो तक विचर कर, किया धर्म-उद्योत ।
अध्यात्मिक निर्झरण का, खोल दिया है श्रोत[3] ॥४॥

मघू सती के बाद में, गई बिंजा सुर-स्थान ।
संवत् सोलह लांघ दी, लम्बा आयुष्मान[4] ॥५॥

१. साध्वी श्री बीजाजी मारवाड़ में सणदरी की वासिनी थी। उन्होने पति वियोग के बाद दीक्षा ग्रहण की। (ख्यात)

दीक्षा स० १८७२ मे हुई। (देखे प्रकरण ८७)

साध्वी बीजाजी तथा मघूजी (८७) एक गांव की थी तथा एक साल मे दीक्षित हुई[1] इससे लगता है कि दोनों की दीक्षा एक साथ हुई।

२. साध्वी श्री प्रकृति से भद्र, नीति निपुण, विनयवती और बड़ी पापभीरु थी। कार्य करने मे वडी स्फूत थी। (ख्यात)

३. 'आर्यादर्शन' कृति की ढालों मे साध्वी बीजाजी तथा साध्वी अमृतांजी (१०९) का संयुक्त सिंघाड़ा मिलता है

च्यार ठांणा अमृतां विजांजी, आप वृद्ध अधिकेरा।

(आर्या दर्शन ढा० १ गा० १७)

उस समय दूसरी साध्वी बीजाजी (१६२) 'पाली' थी, जिनकी दीक्षा स० १८८५ में हुई थी पर वे वृद्ध नही थी अत अमृताजी के साथ इन बीजाजी का ही सिंघाडा था।

सं० १९०९ से १९१६ तक 'आर्या दर्शन' ढालो मे अमृताजी, बीजाजी के चातुर्मास आदि का विवरण इस प्रकार मिलता है :—

(१-२) स० १९०९ तथा १० मे वे ४ ठाणो से थी। चातुर्मास स्थानो का वहां उल्लेख नही है। चातुर्मास के बाद वृद्ध होते हुए भी उन्होंने गुरु-दर्शन कर तीन महीने सेवा की।

मुनि जीवोजी कृत साध्वी नवलाजी (२८५) की गुण वर्णन ढ़ाल १ गा० ३ के अनुसार सं० १९१० मे उनका चातुर्मास 'रेलमगरा' था।

(३) स० १९११ में उन्होने ४ ठाणो से 'कानोड' चातुर्मास किया। चातुर्मास के पश्चात् गुरु दर्शन कर तीन महीने लगभग सेवा की। चातुर्मास में साथ की साध्वी ऊमाजी (१७६) ने १७ दिन का तप किया।

(४) सं० १९१२ मे उन्होने ४ ठाणो से 'कोठारिया' चातुर्मास किया। चातुर्मास के बाद गुरु दर्शन कर तीन महीने लगभग सेवा की। चातुर्मास मे साथ की साध्वी श्री ऊमांजी ने ३० तथा नवलाजी (२८५) ने १५ दिन का तप किया। साध्वी श्री नवलाजी इसी चातुर्मास मे दिवंगत हो गई।

(५) सं० १९१३ मे उन्होने ३ ठाणो से 'रावलिया' मे चातुर्मास किया। चातुर्मास के बाद गुरु-दर्शन कर १० दिन सेवा की। चातुर्मास में साथ की साध्वी श्री ऊमाजी ने १५ दिन का तप किया।

---

१. सती मघूजी सरल विजांजी, गांम सणधरी रा धारी जी।

(शासन-विलास ढ़ा० ४ गा० २४)

(६) सं० १९१४ में उन्होंने ४ ठाणो से 'लाछूड़ा' चातुर्मास किया। चातुर्मास के वाद अस्वस्थता के कारण गुरु-दर्शन नही कर सकी। चातुर्मास मे साथ की साध्वी ऊमांजी ने १४ तथा राजांजी (३०८) ने १५ दिन का तप किया।

(७) सं० १९१५ मे उन्होंने ४ ठाणों से 'गंगापुर' चातुर्मास किया। चातुर्मास के वाद अस्वस्थता के कारण गुरु दर्शन नही कर सकी। चातुर्मास में साथ की साध्वी श्री ऊमाजी ने १० और राजांजी ने १८ दिन का तप किया।

(८) सं० १९१६ में उन्होने ५ ठाणो से राजनगर चातुर्मास किया। चातुर्मास के वाद गुरु-दर्शन कर दो महीने सेवा की। चातुर्मास मे साथ की साध्वी श्री ऊमाजी ने ३० और राजांजी ने १५ दिन का तप किया।

मुनि श्री जीवोजी (८६) कृत साध्वी श्री नवलांजी (२८५) का गुण वर्णन ढाल १ गा० ३, ४, ७ मे उल्लेख है कि उन्होने स० १९१० मे चोला, १९११ में पचोला और १९१२ मे १५ दिन का तप किया तथा इसी चातुर्मास मे सावन शुक्ला ३ को पंडित मरण प्राप्त किया।

सं० १९०९ मे साध्वी श्री लघु नंदूजी (११७) द्वारा दीक्षित होने के वाद नवलांजी साध्वी अमृतांजी, वीजाजी के पास में रही, ऐसा निम्नोक्त पद्यो मे उल्लेख है :—

अमृतांजी नैं आगले, सीखी विनय विचार।
वजांजी नैं वाल्ही घणी, तप जप, खप चित्त धार॥
रेलमगरे कानोड में, कोठारये गुणकार।
ए तीन चौमासा तैं किया, कहुं तप नो विस्तार॥
च्यार पांच पनरैं किया, तीन थोकड़ा तंत।
एक रात नैं ऊपनी, उलटी दस्त अतंत॥
देश प्रदेसां तूं फिरी, सावण चानणी तीज।
कोठारये चलती रही, साहज संता रो चीन[1]॥

(जीव मुनि कृत-नवल सती गुण व० ढा० गा० १, ३, ४, ७)

४. साध्वी श्री का स्वर्गवास स० १९१६ के पश्चात् जयाचार्य के युग मे हुआ।

---

१. मुनि स्वरूपचंदजी (६२) आदि ने चातुर्मास मे नाथद्वारा से कोठारिया पधार कर साध्वी नवलांजी को सहयोग दिया था, ऐसा उक्त ढाल मे वर्णन है।

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० ५ गा० ८२ मे उनका स्वर्गवास संवत् १६०८ लिखा है। शासन विलास ढा० ४ गा० २४ से ऐसा आभाषित होता है कि सं० १६०८ मे साध्वी मघूजी (८७) के दिवंगत होने के वाद साध्वी बीजाजी का स्वर्गवास हुआ :—

परभव उगणीसैं आठे मघू, पछै विंजा पोहती पारी जी।

(शासन-विलास ढा० ४ गा० २४)

परन्तु 'आर्या दर्शन' की ढालो के अनुसार साध्वी श्री बीजाजी सं० १६१६ तक विद्यमान थी। यदि वे मघूजी के वाद ही दिवगत हो गई होती तो सं० १६०६ से स० १६१६ तक की गीतिकाओ मे अन्य दिवगत साधु-साध्वियो में उनका भी नामोल्लेख हो जाता।

इससे फलित होता है कि उनका सं० १६१६ के वाद जयाचार्य के युग में स्वर्गवास हुआ। जयाचार्य के स्वर्गवास के समय विद्यमान साध्वियो मे उनका नाम नही है।

ख्यात आदि में जो उनका स्वर्गवास सवत् १६०८ है वह भूल से लिखा गया लगता है।

८९।२।३३ श्री अमियांजी 'पश्चिम थली'
(जसोल बालोतरा की तरफ की)

(दीक्षा सं० १८७२-१८७८ के पूर्व—भारी युग में गण बाहर)

रामायण-छन्द

पश्चिम थली देश की 'अमियां' 'अजबू' से पाई दीक्षा[1]।
पर दलबंदी की 'गीगां' से ग्रहण न की समुचित शिक्षा।
अलग-अलग रहने की आज्ञा दी गुरुवर ने उन्हे अमंद।
नहीं मान्य की तब दोनों का तोड़ दिया गण से सम्बन्ध ॥१॥

दोहा

अमियां तो गृहिणी हुई, गीगां लेकर दंड।
वापस गण में आ गई, प्रण में रही अखंड[2] ॥२॥

१. अमियांजी मारवाड मे पश्चिम थली (जसोल, वालोतरा के तरफ की) की थी। उन्होंने पति वियोग के वाद साध्वी श्री अजवू जी (३०) द्वारा दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

उनकी दीक्षा सं० १८७२ मे हुई। (देखें प्रकरण ८७)

२. दीक्षित होने के वाद उन्होने साध्वी गीगांजी (६८) के साथ दलवन्दी कर ली। इसका पता चलने पर आचार्य श्री भारीमालजी ने दोनो को अलग-अलग सिंघाडो मे रहने का आदेश दिया किन्तु उन्होने आज्ञा का पालन नही किया तव दोनो को गण से पृथक् कर दिया।

अमियांजी वाद मे गृहस्थ-वास मे चली गई। गीगाजी प्रायश्चित लेकर वापस सघ मे सम्मिलित हो गई एव चेलावास मे अनशन कर अपना कल्याण किया।

(अमियांजी की ख्यात)

अमियांजी को गण से वहिष्कृत करने का संवत् नही मिलता परन्तु यह निश्चित है कि उक्त घटना सं० १८७२ और सवत् १८७८ के वीच की एव भारीमालजी स्वामी के समय की है।

शासन-विलास ढा० ४ सोरठा २५ में लिखा है :—

> पछिम थली नी पेख रे, अमियां जी व्रत आदरघा।
> काली कर्म कुरेख रे, तिण स्यूं अपछंदी थई॥

उक्त गाथा की वार्त्तिका तथा शासन-प्रभाकर ढ़ा० ५ गा० ८४, ८५ में ख्यात की तरह ही वर्णन है।

९०।२।३४ साध्वी श्री दीपांजी (जोरावर)

(संयम पर्याय सं० १८७२-१९१८)

लय—बाजरे की रोटी······

दिव्यात्मा दीपां श्रमणी की दीप-शिखाएं दिखलाता।
पुण्य प्रभावशालिनी की कुछ गौरव-गाथाएं गाता॥

माणक मुनि की दीर्घ स्वसा थी जोजावर ससुराल जी।
बचपन में सम्बन्ध जुड़ा पर बिछुड़ गया तत्काल जी।
नश्वर काया नश्वर माया नश्वर परिकर का नाता १॥

योग मिला 'आशू' श्रमणी का खिला भाग्य गुलजार जी।
समझी उनके द्वारा 'दीपा' वही विरति रस-धार जी।
उनसे ही सयम ले फूली योग मिला है मनभाता' ॥२॥

भारी गुरु के दर्शन करके पाई परमोल्लास जी।
साधु-क्रिया में सावधान हो करती विद्याभ्यास जी।
कंठ-कला व्याख्यान-कला आकर्षक उनकी बतलाता ॥३॥

पढ़े सूत्र बत्तीस, किया है गहन-गहनतम ज्ञान जी।
चर्चा करने की थी पटुता देती हेतु महान् जी।
स्व-पर मती जन में यश उनका विजयी झंडा फहराता ॥४॥

श्रद्धाचारादिक ढालों के पद्य हजारों सीख लिये।
कठिन 'गमा' गांगेयादिक के विविध थोकड़े याद किये।
श्रम बूंदो से ज्ञान बगीचा प्रतिदिन खिलता ही जाता ॥५॥

शारीरिक संस्थान-संपदा हथिनी तुल्य विशाल जी।
थी प्रचंड आवाज धाक से झुकते नृप-गोपाल जी।
था प्रभाव जन-जन में अच्छा रस पौरुषमय टपकाता[२] ॥६॥

संघ संघपति के प्रति निष्ठा रखती अन्तर इकतारी।
करती निज कर्तृत्व-शक्ति से विकसित गण-केशर-क्यारी।
था उनका व्यक्तित्व और वर्चस्व व्यक्ति को वल-दाता ॥७॥

रायचन्द गुरु के सम्मुख वह मुखिया वनी प्रवीण जी।
की सद्‌गुरु की महर नजर से उन्नति सर्वांगीण जी।
तोल वढ़ा है मोल वढ़ा है गुण से नर आदर पाता[३] ॥८॥

आठ साल में राय-ऋषिश्वर पहुचे जव सुरलोक जी।
जय ने वहु सम्मान दिया रख कृपा भाव अस्तोक जी।
धन्या मन्या भाग्यवती का भाग्य सितारा चमकाता[४] ॥९॥

धर्म-प्रचार किया है भरसक श्रावक वहुत वनाये हैं।
सुलभवोधि नर कर-कर सच्चे श्रद्धांकुर पनपाये हैं।
दस वहिनों को दीक्षा देकर जोड़ा सयम से ताता[५] ॥१०॥

महासती साध्वी-समाज में निखरी दिव्य ज्योति वनके।
ज्ञानार्जन करवाती रहती निकट साध्वियां जो उनके।
वनी अग्रणी कितनी सतियां नाम सामने वे लाता[६] ॥११॥

दोहा

तप त्यागादिक प्रेरणा, देती थी वलवान।
अलख शक्ति भर व्यक्ति का उधर खीचती ध्यान[७] ॥१२॥

सती चन्दना अंग में, हुआ रोग उत्पन्न।
बनी आप सहयोगिनी, पहुची है आसन्न[८] ॥१३॥

चंदेरी पावस किया, सप्त नवति की साल।
दर्शन कर सरदार ने, लाभ लिया सुविशाल[९] ॥१४॥

पावस श्री ऋषिराय के साथ सात की साल।
पन्द्रह सतियों से किया, दीपां ने खुशहाल[१०] ॥१५॥

अधिकाधिक सतियां रही, दीपां सह तेवीस।
तपस्विनी वैरागिनी, गगन लगाती शीश ॥१६॥

'आर्या दर्शन' ग्रंथ में, आठ वर्ष का लेख।
चतुर्मास, तप आदि का, लो नजरों से देख[११] ॥१७॥

लय—बाजरे की रोटी······

नानाविध तप विगय-विवर्जन वहुतर दश पचखाण जी।
वर्ष अनेकों शीत सहा है किया स्व-पर-कल्याण[१२] जी।
उनके रोचक संस्मरणों से मधुर-मधुर रस बरसाता ॥१८॥

अम्बापुर (आमेट) में एक भक्त ने, खुलकर घृत वहराया है।
खीच अदि में मिला उसे सतियों को सभी खिलाया है।
दे उपदेश सामयिक तप का खोला है नूतन खाता ॥१९॥

दोहा

पांच साध्वियों को बडा, छहमासी तप साथ।
करवाया संकल्प युत, खूब बढ़ाया हाथ[१३] ॥२०॥

लय बाजरे की रोटी······

गढ़ में गई लिए चर्चा के बैठी पट्ट बिछा करके।
रहे देखते इतर साधुजी दिल में आशंका धर के।
तात्कालिक चातुर्य-उपज ये शीश 'राव' का डोलाता[१४] ॥२१॥

गढ़ चितोड़ शहर में पावस बोलो कौन बितायेगी ?
बोली दीपां चिन्तन पूर्वक हम आज्ञा अपनायेंगी।
साहस युत प्रत्युत्तर सुनकर जय गुरु का दिल फूलाता ॥२२॥

दोहा

करवाया दस साल का, चातुर्मास चित्तोड़।
ग्यारह सतियों से किया, सुयश लिया बेजोड़[१५] ॥२३॥

लय—बाजरे की रोटी......

चौर आदमी मिले पंथ में कष्ट दिये भरपूर जी।
धैर्यवती की मजबूती से किये प्रकृति ने दूर जी।
महामंत्र का स्मरण सहायक हुआ इष्ट-जप फल-दाता[१६] ॥२४॥

जोड़-कला के लिए जीत को दिया प्रेरणा-मंत्र जी।
थी निर्भीक कथन में रखती हितकर दृष्टि स्वतंत्र जी।
साधु-साध्वियोंको देतीथी समुचित शिक्षा ज्यों माता[१७] ॥२५॥

दोहा

पांच साध्वियों को अधिक, डाइन करती क्लान्त।
दीपां के आगमन से, हुआ उपद्रव शांत[१८] ॥२६॥

बुला लिया फिर भेज के, दिया न पहले ध्यान।
कहने वाली है अभी, जननी कल्लू स्थान[१९] ॥२७॥

चोर एक आ रात्रि में, लगा दबाने पैर।
महासती की धाक से, लगी न भगते देर[२०] ॥२८॥

लय—बाजरे की रोटी......

शेष समय में हुई वेदना, सही बड़ी धृति धार जी।
दर्शन शीघ्र उन्हें देने का जय ने किया विचार जी।
पर पहले ही आराधक-पद का संदेशा मिल जाता ॥२९॥

भाद्रव कृष्ण पंचमी के दिन कर अनशन स्वीकार जी।
बीस प्रहर के बाद सप्तमी को पहुंची सुर-द्वार जी।
धन्य-धन्य ध्वनि प्रसरी जन में गौरव मुख-मुख गूंजाता[२१] ॥३०॥

जयाचार्य ने रची गीतिका भाव भरी गुण युक्त जी।
ख्यात आदि में रोचक विवरण मिलता है उपयुक्त जी।
पढ़ने सुनने से रस आता पाता तन मन सुखसाता[२२] ॥३१॥

१. साध्वी श्री दीपांजी का जन्म मेवाड़ प्रदेश के 'ताल' ग्राम में मांडोत (ओसवाल, लोहड़ा साजन) गोत्र में स० १८५६ मे हुआ। जोजावर (मारवाड़) निवासी सोमासाह 'वम्ब' की पहली पत्नी की मृत्यु के बाद उनके साथ दीपांजी का विवाह हुआ। कुछ समय पश्चात् उनका भी वियोग हो गया।

उस समय आचार्य श्री भारीमालजी की शिष्या साध्वी श्री आणूजी (५७) ग्रामानुग्राम विहार करती हुई 'जोजावर' पधारी। उनके प्रेरणादायी उपदेश से पौद्गलिक सयोगो की क्षण-भगुरता को समझकर दीपांजी दीक्षा के लिए उद्यत हो गई। तात्त्विकज्ञान सीखकर उन्होने सभी तरह से तैयारी करली। फिर कौटुम्बिक जन की आज्ञा लेकर पूर्ण वैराग्य से १६ वर्ष की अवस्था (नावालिग) मे साध्वी श्री आशूजी के हाथ से सं० १८७२ जोजावर मे दीक्षा स्वीकार की[1]। (ख्यात)

उनके छोटे भाई मुनि श्री माणकचन्दजी (६६) ने उनके बाद स० १८८५ में सयम ग्रहण किया। वे प्रकृति से भद्र और बड़े तपस्वी हुए[2]।

२. साध्वी श्री दीपांजी ने दीक्षित होने के बाद साध्वी श्री आशूजी के साथ आचार्य श्री भारीमालजी के दर्शन कर परम आनंद का अनुभव किया। फिर दो साल लगभग उन्हे साध्वी श्री आशूजी के सान्निध्य मे रहने का अवसर मिला। साध्वी दीपांजी ने साधुक्रिया मे कुशल बनकर विनय-पूर्वक विद्याध्ययन करना प्रारंभ किया। उनकी बुद्धि तीक्ष्ण थी। क्रमशः उन्होंने ३२ सूत्रो का वाचन किया। सूक्ष्म-सूक्ष्म रहस्यो की चर्चाओ तथा बोल-थोकड़ों की अच्छी धारणा की। श्रद्धा-आचार आदि की हजारों गाथाएं कठस्थ की। कठकला, वचन-मधुरता, बुलन्द

---

१. पीहरिया मांडोत वर, ताल तणा वसिवांन।
ल्हौड़े साजन जांणज्यो, हिवै सासरिया कहुं जांण ॥
जोजावर मांहे वसै, सोमोसाह पिछांण।
स्त्री पहिली परणी तिणे, हिव दूजी तणो मंडाण ॥
दूजी दीपाजी वरी, अल्प काल रै मांय।
पड्यो विजोग प्रीतम तणो, हिवै मिलै जोग सुखदाय ॥
इम उपगार करता थका रे, आया जोजावपर मांय रे।
उत्तम आमू आर्य्या रे लाल, दीपांजी नै दिया समझाय रे ॥
वैरागे मन वालियो रे, जांण्यो अथिर संसार रे।
समत अठारै वोहितरे रे लाल, लीधो संजम भार रे ॥
(जय कृत—दीपां सती गुण वर्णन ढा० १ दो० ३ से ५, गा० ५, ६)

२. लघु बधव सजम लियो रे, माणक मुनिवर जांण रे।
प्रकृति भद्र तपस्वी भलो रे लाल, वारु सुगुण वखांण रे ॥
(दीपां० गु० व० ढ़ा० १ गा० १३)

आवाज, आत्मिक पौरुष होने से वे वडा सुंदर व आकर्षक व्याख्यान देती। हेतु, दृष्टान्त देने की अच्छी युक्ति थी। कुछ वर्ष बाद ही वे सिंघाडवध होकर विहार करने लगी। उनका व्याख्यान सुनने के लिए अनेक गावो के ठाकुर, मुसद्दी, हाकिम आदि आते। अन्यमती लोगो मे उनकी वड़ी धाक पड़ती थी। पुर-पुर मे उनकी वहुत ख्याति फैली जिससे जन-जन के मुखपर उनकी सुयश-गाथा गूजने लगी। उनका शारीरिक संस्थान एवं वहुमुखी व्यक्तित्व वड़ा प्रभावशाली था[१]। (ख्यात)

३ साध्वी श्री दीपाजी शासन एव शासनपति के प्रति पूर्ण समर्पित थी। उन्होने अपने कर्त्तृत्व और व्यक्तित्व से गण मे अच्छा स्थान प्राप्त किया। आचार्य श्री रायचदजी का उन पर विशेष अनुग्रह रहा।

तेरापथ धर्म सघ मे वे एक उच्चकोटि की साध्वी हुई। आचार्य श्री रायचदजी ने मुनि जीतमलजी को युवाचार्य पद प्रदान विषयक पत्र लिखा उसमे दीपांजी का नामाङ्कन किया था :—

सरूप ऊपर म्हांरी मुरजी घणी जी कांइ, सती दीपांजी नो जान।
थां सू मन राजी छै घणो जी कांइ, थांरी वनणां लीज्यो मान ॥

(जय सुजश ढा० २३ गा० २५)

आचार्य भिक्षु से लेकर आचार्य श्री रायचंदजी तक 'साध्वी प्रमुखा' नियुक्ति की प्रणाली नही थी। आचार्यो द्वारा विशेष सम्मानित साध्वी सघ में प्रमुख रूप मे मानी जाती थी। स्वामीजी के समय साध्वी श्री वरजूजी (३९), भारीमालजी स्वामी के समय साध्वी हीरांजी (२८) और आचार्य श्री रायचदजी के समय साध्वी श्री दीपाजी (आप) मुखिया कहलाती थी।

'नौ पाटो का लेखा' मे उक्त तीनो साध्वियो का नाम मुखिया के रूप मे लिखा हुआ है।

साध्वी वरजूजी और हीराजी का वर्णन उनके प्रकरण में दे दिया गया है।

---

१. पछै विहार करी नै आविया रे, भारीमाल रे पास रे।
दर्शन देखी दयाल ना रे लाल, पांमी परम हुलास रे॥
अनुक्रमे दीपा सती रे, हुई सूत्र सिद्धांत नी जाण रे।
कंठ कला आछी घणी रे लाल, वारु वाचै वखांण रे॥
सूत्र वतीसूंइ वांचिया रे, झीणी रहिसां नी जाण रे।
स्वमति ने अन्यमति मझै रे लाल, प्रसिद्ध दीपांजी पिछांण रे॥
चरचा करण नी चातुरी रे, देवै हद दिष्टत रे।
पुन्य प्रवल पोतै घणा रे लाल, वाण मृदु वरसत रे॥
(दीपां० गु० व० ढ़ा० १ गा० ७, ८, १०, ११)

साध्वी दीपांजी की विशेषताओं से सम्बन्धित कुछ पद्य इस प्रकार हैं :—

ऋषिराय तणै वरतार में, अधिक कियो उपगार।
स्वाम तणी मुरजी सखर, सुजश वध्यो संसार॥
ऋषिराय तणै मुख आगले, हुई ओजागर आप।
पूर्ण मुरजी पूज्य नीं, थिर बुधि निर्मल थाप॥
(जय कृत-दीपा गु० व० ढा १ दो० २ गा०६)

दीपांजी तो दीप रही छै, च्यार तीर्थ रै मांहि।
सती सिरोमणी सोभ रही छै, कसर नहीं छै कांई॥
(सेवक कृत-दीपा गु० व० ढा० १ गा० १)

४. सं० १९०८ मे आचार्य पद पर आसीन होने के पश्चात् जयाचार्य ने साध्वी दीपाजी का बहुत सम्मान रखा :—

संमत उगणीसै आठे समै, ऋषिराय पोंहता परलोग।
जयगणि दीपांजी तणों, राख्यो कुरब सुजोग॥
(दीपा० गु० व० ढ़ा० १ गा०१५)

५. साध्वी श्री ने आचार्य श्री ऋषिराय के तथा जयाचार्य के शासनकाल मे बहुत वर्षो तक ग्रामानुग्राम विचर कर बड़ा उपकार किया। अनेक व्यक्तियो को बोधिज्ञान देकर सुलभबोधि बनाया तथा श्रावक के व्रत धारण करवाये एवं १० बहनो को सयम प्रदान किया।

साध्वी श्री द्वारा दीक्षित साध्वियो की तालिका इस प्रकार है:—

१. सवत् १८८७ द्वितीय वैसाख सुदी ११ को मोतांजी (१२५) 'बीकानेर' को बीदासर मे दीक्षा दी।
२. सवत् १९०२ पोष सुदि २ को रामूजी (२२४) 'सूरवाल' को सूरवाल मे दीक्षा दी।
३. संवत् १९०२ पोष सुदि १० को ज्ञानांजी(२२५) 'भगवतगढ़' को भगवतगढ मे दीक्षा दी।
४. सवत् १९०७ आषाढ सुदि १ को सुन्दरजी (२६४) 'नाथद्वारा' को नाथद्वारा मे दीक्षा दी।
५. सवत् १९०८ जेठ सुदि ३ को जोतांजी (२७७) 'चितामा' को चितामा मे दीक्षा दी।
६. संवत् १९०८ जेठ सुदि ३ को जोताजी की पुत्री नाथाजी (२७८) 'चितामा' को चितामा मे दीक्षा दी।
७. संवत् १९०८ जेठ सुदि ५ को झूमांजी (२७९) 'सिरेवड़ी' को सिरेवड़ी मे दीक्षा दी।

८. संवत् १९१६ आषाढ़ सुदि ९ को वखतावरजी (३२६) 'गंगापुर' को दीक्षा दी।

९. संवत् १९१७ चत्र सुदि ८ को चपाजी (३३१) 'पोटला' (गगापुर के पास) को दीक्षा दी।

१०. संवत् १९१७ चैत सुदि ८ को चंपाजी की पुत्री किस्तूरांजी (३३२) 'पोटला' को दीक्षा दी। (उक्त साध्वियों की ख्यात के आधार से)

ऐमा भी सुना जाता है कि साध्वी श्री के उपदेश से लगभग ४०-५० भाई-चहन दीक्षा के लिए तैयार हुए।

समीक्षा—साध्वी पन्नांजी (१२६) :—

(क) सं० १८८७ मे (द्वितीय वैशाख सुदि १३ को) साध्वी पन्नाजी 'चूरू' को चीदासर मे मुनि कोदरजी (८९) ने दीक्षा दी, ऐसा पन्नांजी की ख्यात मे लिखा है। पर मुनि श्री द्वारा दीक्षा देने की संभावना कुछ कम लगती है क्योकि वे उस समय मुनि श्री जीतमलजी (जयाचार्य) के साथ विचरते थे। सेठिया संग्रह मे साध्वी पन्नाजी की दीक्षा साध्वी श्री दीपांजी के हाथ से लिखी है जिसकी सभावना अधिक लगती है।

(ख) स० १८८७ के शेषकाल मे मुनि श्री जीतमलजी ने स० १८८८ का चीकानेर मे चातुर्मास करना अत्यावश्यक समझकर उसकी आचार्य श्री से अनुमति प्राप्त करने के लिए मुनि कोदरजी को एक पत्र देकर भेजा था। वे उस समय चीदासर होते हुए मारवाड की तरफ गये हो और वहां साध्वी श्री पन्नांजी को उन्होंने दीक्षा देकर साध्वी श्री दीपांजी को सौंप दिया हो और उन्होंने उनका केश-लुंचन किया हो, ऐसा भी सभव हो सकता है।

६. साध्वी श्री ने अपने साथ मे रहने वाली अनेक साध्वियों को पढ़ा-लिखा कर तैयार किया। उनमे पांच साध्वियां अग्रगण्या वनी :—

१. साध्वी श्री जोताजी (१११)
२. साध्वी श्री मगनांजी (१८१)
३. साध्वी श्री रगूजी (२१४)
४. साध्वी श्री किस्तूराजी (२२७)
५. साध्वी श्री नाथांजी (२२८)

(साध्वी दीपांजी की ख्यात)

७. साध्वीश्री का तेरापथ धर्म-सघ में अनुपम स्थान रहा है। उन्होने तेरापंथ धर्म-संघ की नीव को त्याग, तपस्यादिक की प्रेरणा से जैसा सुदृढ किया वह चिर-स्मरणीय रहेगा। उनमे प्रेरणा देने की अद्भुत शक्ति थी। तेरापथ मे छहमासी जैसी दीर्घ तपस्या स० १८८३ मे प्रारंभ हुई। पर साध्वी-समाज मे सर्वप्रथम १३० दिन की तपस्या (आछ के आधार से) साध्वी श्री हस्तूजी (२०९) 'चीवरा' ने सं० १९०९ पुर मे साध्वी दीपांजी के पास की थी। इन्ही साध्वी हस्तूजी ने

संवत् १६१२ 'पुर' ग्राम मे उनके ही सान्निध्य में १६३ दिन का तप (आछ के आधार से) किया, जिसका साध्वी-समाज मे ६६ वर्ष तक कीर्तिमान रहा[1]।

८. साध्वी श्री चन्नणाजी (६४) ने स० १८६६ का सिरियारी चातुर्मास किया। वहां कार्त्तिक महीने मे वे अधिक अस्वस्थ हो गई तब साध्वी श्री दीपांजी उनके दर्शन के लिए पधारी। बड़े आत्मीय भाव से मिलजुल कर उन्हे सयम का सहयोग दिया :—

काती मास में कारण ऊपनो, दीपांजी आया दर्शन काज।
हिलमिल हेत जूक्त करी, भलो दियो संजम नो स्हाज॥

(हेम मुनिकृत-चन्नणां० गु० व० ढा० १ गा० ११)

इससे यह जाना जाता है कि स० १८६६ मे उनका चातुर्मास मारवाड़ मे सिरियारी के आसपास हुआ हो।

९. स० १८६७ मे उनका चातुर्मास लाडनू था। वहां सरदारसती ने दीक्षा लेने के लिए जाते समय उनके दर्शन किये :—

दीपांजी ना लाडणूं हो, करै दर्शण सुविमास।
वोरावड़ आवी सती हो, स्वाम सरूप रे पास॥

(सरदार सुजश ढ़ा० ८ गा० १४)

१० स० १६०७ मे साध्वी श्री ने १५ साध्वियों से आचार्य श्री रायचदजी की सेवा मे चातुर्मास किया :—

दश संतां सूं स्वामजी रे, उगणीसै साते जैपुर तांम।
सत्यां पनरै दीपांजी आदि दे, च्यारुं तीर्थ करै गुण ग्राम॥

(ऋषिराय पंचढालियो ढा० ४ गा० १७)

दीपांजी आदि चोमासे था भेला, ते पिण रह्या चेत लग ताहि।

(जय सुजश ढ़ा० ३० गा० ७)

११. साध्वी श्री आचार्यो की आज्ञा का अखड पालन करती एवं सघ-वृद्धि के लिए अथक प्रयास करती।

आचार्यो ने भी अनुकूल क्षेत्र, पुस्तक तथा अधिकाधिक साध्वियो को पास मे रख कर साध्वी श्री को वहु सम्मान दिया। ऊपर मे २३ तक सतियां उनके सान्निध्य मे रही।

---

१. उसके वाद अष्टमाचार्य कालूगणी के शासनकाल में साध्वी श्री मुखांजी (७४३) 'सुजानगढ' ने सवत् १६७८ राजनगर मे २६७ दिन का तप करके नया कीर्तिमान स्थापित किया। तदनन्तर नवमाचार्य तुलसीगणी के युग मे साध्वी श्री भूरांजी (७७६) 'मंदारिया' ने संवत् २०१६ में ३३६ दिन का तप कर आश्चर्य-जनक कीर्तिमान स्थापित कर दिया।

सं० १९०९ से १९१६ तक के उनके चातुर्मास और तपस्यादिक का विवरण 'आर्यादर्शन' कृति में इस प्रकार मिलता है :—

यंत्र

साध्वियो के नाम और क्रम संख्या	वर्ष स्थान	१९०९ पुर	१९१० चित्तौड	१९११ भीलवाड़ा	१९१२ पुर	१९१३ गंगापुर	१९१४ आमेट	१९१५ देवगढ	१९१६ नाथद्वारा
	ठाणा	२३	१७	१६	१६	१४	१४	१४	१४
दीपांजी (९०)	तप	९	...	...	...	...	...	...	...
मलूकांजी (१२२)	दिन	५८,३२	३०	३०	३०,२१	१५	छहमासी	११६	...
गेनांजी (१२४)		११८	३१	...	१७७ छहमासी	१५	छहमासी	छहमासी	५
हस्तूजी (२०९)		१३०	३०	३७	१९३ छहमासी	...	...	...	..
जेताजी[1] (२७७) 'चितामा'		३१	६३	३०	१५२	३२	छहमासी	छहमासी	५
झूमांजी (२७९)		३०	...	...	१२५	१५	छहमासी	छहमासी	...
रोडाजी (११०)		३०	...	...	...	...	...	...	...
जेताजी[2] (१११) 'वडा' 'रावलिया'		१५	...	...	३२	...	...	...	...
मगनाजी (१८१) 'लाडनू'		१५	...	...	३०	...	...	१९	...
सेवूजी (२१४)		३०	१०	...	...	...	...	...	...
रामूजी (२२४)		३१	१५	११	४४	१६	३०	...	...
मगनाजी (२३८) 'पाली'		३०	...	...	...	...	.	...	...
सुन्दरजी (२६४)		३०,१२	१५	१४	६०	१५	छहमासी	छहमासी	...
मूलाजी (२१३)		३०	३०	---	...	...	३०	३१	३०
नन्दूजी (२५४)		३१,१०	...	...	...	...	...	...	...
चूनांजी (२१०)		...	...	...	१५,७,९	८	१५	...	१४
साकरजी (२६७)		११,८	...	...	...	...	२१	...	५
दोलांजी (९६)		१३	...	...	...	...	...	...	...
जेताजी[3] (१५६) 'छोटा' 'श्रीजीद्वारा'		९,६	...	...	...	...	...	...	...
रगूजी (२१५)		९	...	...	...	...	---	...	...
किस्तूराजी (२२५)		१०	...	...	...	...	...	...	...
वगतूजी[4] (२३०)		१०,९	...	...	...	...	...	...	...

१. साधना-काल :—१९०९-१९५२ (नाथांजी २७८ की माता)। २. साधना-काल :—१८८२-१९३२। ३. साधना-काल :—१८९५-१९१२। ४. हरखगसांजी (२९४) की माता।

१. सं० १६०६ के चातुर्मास के वाद उन्होंने गुरुदर्शन कर डेढ़ महीने सेवा की।
२. सं० १६१० के चातुर्मास के वाद उन्होंने साथ की चार साध्वियो को गुरु दर्शन के लिए भेजा। उन्होने ५ दिन सेवा की।
३. सं० १६११ के चातुर्मास के वाद उन्होने गुरु दर्शन कर ४ दिन सेवा की।
४. सं० १६१२ के चातुर्मास के वाद उन्होने गुरु दर्शन कर १४ दिन सेवा की।
५. स० १६१३ के चातुर्मास के वाद उन्होने गुरु दर्शन कर २५ दिन सेवा की।
६. सं० १६१४ के चातुर्मास के वाद उन्होने साथ की चार साध्वियो को गुरु-दर्शन के लिए भेजा। उन्होने १५ दिन गुरु सेवा की।
७. स० १६१५ के चातुर्मास के वाद वे अस्वस्थ होने से न स्वय गुरु दर्शन कर सकी और न साध्वियो को भेज सकी।
८. सं० १६१६ के चातुर्मास के वाद उन्होने साथ की साध्वी श्री मगनांजी (१८१) आदि को गुरु-दर्शन के लिए भेजकर अपना सिंघाड़ा सरदार-सती को समर्पित करवाया। मगनाजी ने २२ दिन गुरु सेवा का लाभ लिया :—

दीपांजी मगना नें मेली, वहु हठ कर सुजगीस।
नेश्राय थइ सिरदारांजी री, दर्शण दिन वावीस॥

(आर्यादर्शन ढ़ा० ६ गा० ७)

सती दीपांजी म्हेली सतियां, दर्शण करवा ताह्यो।
मगनां आदि वहु हठ कर थइ, सतिय तणी नेश्रायो॥

(सरदार सुजश ढ़ा० ११ गा० २१)

समीक्षा—१

उपर्युक्त यंत्र में साध्वी दीपांजी का सं० १६१० का १७ ठाणों से चित्तौड़ चातुर्मास लिखा है पर उन्होंने उस वर्ष ११ ठाणो से चित्तौड़ चातुर्मास किया एवं साथ की साध्वी श्री जेतांजी (१११) आदि ६ ठाणों का चातुर्मास हमीरगढ़ करवाया था :—

दीपांजी ग्यारै ठाणां सूं, चीतोड़ में चोमासं।
हमीरगढ़ जेतां षट् ठाणै वरणवियै तप रासं॥

(आर्यादर्शन ढ़ा० २ गा० ७)

समीक्षा—२

उपर्युक्त यंत्र के अनुसार साध्वी दीपांजी के स० १९१२ के पुर चातुर्मास में साध्वी श्री ज्ञानाजी (१२४) ने १७७ दिन (छह्मासी) का, साध्वी श्री हस्तूजी (२०६) ने १९३ (छह्मासी) दिन का तथा साध्वी श्री जोतांजी (२७७) (नाथाजी की माता) ने १५२ दिन का तप किया :—

लघु जेतांजी इक सौ वावन, नाथांजी री माता रे।
वर इक सौ ऊपर सतंतर, गैनांजी (ज्ञानाजी) तप गाजै रे ॥
.... हस्तू षट् मास विराजै रे।
(आर्यादर्शन ढा० ४ गा० १२, १३)

परन्तु जय सुजश ढा० ४३ गा० २० से २९ मे उल्लेख है कि सं० १९१२ में जयाचार्य ने ६ छह्मासियो का तथा एक सवा-सातमासी का अपने हाथ से पारणा करवाया।

१. साध्वी श्री रंभाजी (२२०) को छह्मासी का
२. ,, हस्तूजी (२०६) को १९३ दिन का
३. ,, ज्ञानाजी (१२४) को छह्मासी का
४. ,, जेताजी (२७७) को छह्मासी का
५. मुनि श्री मोडजी (८७) को छह्मासी का
६. ,, खूमजी (१४५) को १९३ दिन का
७. ,, अनोपचदजी (११४) को सवा सातमासी का।

मघवा-सुजश ढ़ा० ५ तथा गुलाव-सुजश ढ'० ५ मे भी यही वर्णन है।

परन्तु जयाचार्य कृत सवसे प्राचीन कृति 'आर्यादर्शन' में साध्वी श्री जेतांजी (२७७) का तप १५२ दिन का लिखा है जो पांचमासी ही होती है अत उस वर्ष छह्मासियां वास्तव मे पाच ही हुई।

जयाचार्य कृत आर्यादर्शन कृति के अनुसार उपर्युक्त यत्र मे ८ वर्ष की उनके साथ की साध्वियो की तपस्याओं का वर्णन है। दीपाजी जैसी प्रवल मनोवल वाली साहसिका साध्वी थी वैसी ही उनके साथ की साध्वियो ने रोमाचकारी तप किया।

उक्त आठ वर्षों की तरह यदि 'आर्या दर्शन' कृति मे अगले वर्षों का विवरण लिखा हुआ होता तो ऐतिहासिक दृष्टि से वहुत महत्त्व पूर्ण और अत्यत उपयोगी सामग्री एकत्रित हो जाती।

१२. साध्वी श्री ने तप के अनेक थोकड़े किये। विगयादिक का परित्याग किया एवं दशपचखाण भी वहुत वार किये। सर्दी मे वहुत वर्षो तक शीत सहन

किया ।[1] (ख्यात)

१३. स० १९१३ के ज्येष्ठ महीने मे साध्वी श्री दीपांजी १४ साध्वियों से आमेट में विराज रही थी। एक दिन अन्य गांव का एक श्रावक घृत लेकर वहा आया। रास्ते में साध्वी श्री के दर्शन हो गये तव उसने घृत वहरने (लेने) के लिए उनसे भावभरी प्रार्थना की। उन्होंने थोडा-सा घी लेने के लिए ज्यों ही पात्र रखा कि उसने वडे तीव्र भावो से समूचा घी (३, ४ सेर लगभग) पात्र मे उडेल दिया एव साध्वी श्री को वंदना कर अपने गाव चला गया। साध्वी श्री ने हिम्मत कर उस घृत को रोटियों तथा खीच आदि में मिलाकर साथ की साध्वियो को खिला दिया। सायकाल होते ही उन्होंने साध्वियों से पूछा—'वोलो! अव क्या तपस्या करोगी?' साध्वियो ने कहा—'उपवास कर लेंगी।'

साध्वी दीपाजी ने ओजभरी वुलद आवाज मे कहा—'इतना घी खाया है फिर क्या उपवास ही?' स्वामीजी ने तो पाली के वाजार में घी विकता देखा था और हमे खाने के लिए इतना घृत मिला है इसलिए उसके अनुरूप ही तप करना चाहिए। क्रमशः वेले, तेले आदि की सख्या से वढ़ते-वढते आखिर वही खडे-खड़े साध्वी श्री ने पाच साध्वियो को एक साथ आछ के आधार से छहमासी तप करने का सकल्प करवा दिया। उनके नाम इस प्रकार है :—१. साध्वी श्री मलूकांजी (१२२), २. गेनांजी (१२४), ३. सुन्दरजी (२६४), ४. जेतांजी (२७७), ५. झूमाजी (२७९)।

इस प्रकार एक साथ पाच छहमासियां करवा कर उन्होने भिक्षु-शासन मे नया कीर्तिमान स्थापित किया। जयाचार्य ने इस सदर्भ में लिखा है :—

चवद ठांणा स्यूं दीपांजी रे, वर आमेटज मास-मास तप रामूं मूलांजी।
दिवस इकवीस साकर वरणी रे, चूनांजी दिन पनर किया पिण आतम वस करणी॥

मलूकां गैनां गुण रासी रे, जेतां सुंदर झूमां पांचूं तप षट षट मासी।
चोमासो उतरियां म्हेली रे, समणी चार एक पख दर्शण गुरु सेवा झेली॥
आण आराध्यां अघ हरणा रे॥
(आर्यदर्शन ढा० ६ गा० ५)

सं० १९१४ मे गदर के समय काले गोरों की फौजें भारत में लूट-खसोट मचा रही थी। देवगढ की तरफ उनके आने की सूचना से आमेट के लोगो मे भी काफी हलचल मच गई। उस समय ठाकुर चतर्रासहजी थे। उन्होने जनता

---

१. शीतकाले वहु सी सह्यो रे, वलि तप विविध प्रकार रे।
(दीपां० गु० व० ढ़ा० १ गा० १४)

को आह्वान करते हुए कहा—'हमे भयभीत नही होना चाहिए क्योकि हमारे गाव मे पाच-पांच छह्मासी तप करने वाली सतिया विराजमान हैं, उनके प्रौढ़ प्रभाव से किसी प्रकार के उपद्रव होने की सभावना नही है। आशा ही नही दृढ़ विश्वास है कि पूर्णत. क्षेम-कुशल रहेगा।' यह सुनकर सभी भाई-बहन आश्वस्त हो गये। वे फौजे दूसरे रास्ते से निकल गईं, आमेट की तरफ आई ही नही।

वास्तव मे तपोबल का अमोघ प्रभाव होता है, जिससे विघ्न सहजतया स्वयं विलीन हो जाते है।

(आमेट के श्रावक कजोडीमलजी बोहरा के कथनानुसार)

१४. एक बार साध्वी श्री दीपाजी लावा सरदारगढ (मेवाड़) मे विराजती थी। वहां स्थानकवासी सम्प्रदाय के साधु मानमलजी भी थे। उस समय परस्पर चर्चा कर एक दूसरे को पराजित करने का वातावरण जोरो से चल रहा था। साधु मानमलजी ने भी वहा पर यही आवाज उठाई। स्थिति ऐसी बनी कि साध्वी श्री दीपाजी को उनकी चुनौती स्वीकार करनी पडी। गढ मे ठाकुर साहब मनोहरसिंहजी (जो मेवाड़ के प्रसिद्ध १६ उमरावों मे से थे) की मध्यस्थता मे चर्चा करने का निश्चय हुआ। यथासमय दोनो पक्ष के लोग वहा पहुच गये। साधु मानमलजी वहा जाकर बैठने के लिए इधर उधर घूमकर उपयुक्त स्थान देख रहे थे कि साध्वी श्री दीपाजी वहा पहुची और तत्काल ठाकुर साहब की आज्ञा लेकर साध्वियो द्वारा चोकी (पट्ट) बिछवा कर बड़े ठाट से बैठ गईं। ठाकुर साहब ने साध्वी की यह दक्षता देखकर मुनिजी को कहा—'महाराज! चर्चा समाप्त हो गई। ये स्त्री की जाति होकर भी कितनी कुशल और साहसिका है। आप पुरुष होकर भी इतने सुस्त! स्थान की व्यवस्था ही नही कर सके। बस! और क्या चर्चा होगी, पधारिये! पधारिये!'

ठाकुर साहब साध्वी श्री की समयज्ञता की भूरि-भूरि प्रशसा करते हुए दूर तक पहुंचाने के लिए आये।

(अनुश्रुति के आधार से)

१५. ऐसी अनुश्रुति है कि एक बार जयाचार्य ने साधु-साध्वियो से पूछा—'चितौड़ मे चातुर्मास करने के लिए कौन तैयार है?' पर किसी ने भी जबाब नही दिया क्योकि उस समय चित्तोड मे श्रद्धालु भाइयो के दो ही घर थे। एक ताराचन्दजी ढीलीवाल का तथा एक और। जयाचार्य ने कुछ क्षण ठहर कर फिर पूछा तब साध्वी श्री दीपाजी ने अपने साथ की साध्वियो से परामर्श कर निवेदन किया—'गुरुदेव! मुझे आदेश दीजिए, मैं वहां चातुर्मास करने के लिए तैयार हू।' आचार्य देव ने फरमाया—'तुम्हारे सिंघाड़े मे साध्विया अधिक हैं और वहां की स्थिति तुम्हारे से अज्ञात नही है फिर वहा वर्षावास कैसे करोगी?

साध्वी श्री ने चिन्तन पूर्वक उत्तर दिया—'हम कम से कम बारह साध्वियां वहा रहेंगी। शेष साध्विया आसपास के क्षेत्रों मे चातुर्मास कर देंगी। उन बारह साध्वियों मे चार सतियां चातुर्मासिक तप और चार सतियां दो मासी तप करने के लिए तैयार है। अवशिष्ट चार साध्वियों में से दो एक दिन और दो दूसरे दिन यो टेढे रूप में एकान्तर तप कर लेंगी। सिर्फ दो साध्वियों के लिए प्रतिदिन भोजन की आवश्यकता होगी, उसकी आपकी कृपा से कोई कमी नहीं रहेगी। भाद्रव महीने के बाद वर्षा बंद होने पर आसपास के गावों की भी गोचरी हो सकेगी।'

साध्वी श्री की हिम्मत से सभी साधु-साध्वी चकित हो गये। जयाचार्य ने उस समय चातुर्मास नही फरमाया, केवल साहस की परीक्षा के लिए पूछताछ की थी।

इस घटना से आमतौर में यह धारणा बन गई कि जयाचार्य ने साध्वी दीपांजी का चित्तौड चातुर्मास करवाया नही केवल परीक्षा के लिए पूछा था। किन्तु निम्नोक्त प्रमाण से उक्त धारणा संगत नही है।

आर्यादर्शन ढ़ा० १ गा० ४ में लिखा है कि स० १९०९ मे जयपुर चातुर्मास के बाद जयाचार्य मेवाड पधारे। तब साध्वी श्री दीपांजी ने आचार्य श्री के दर्शन कर डेढ़ महीने सेवा की। फिर सं० १९१० का ११ ठाणों से चितौड़ चातुर्मास किया तथा उनके साथ की जेतांजी (१११) आदि छह साध्वियों ने हमीरगढ़ चातुर्मास किया :—

दीपांजी ग्यारै ठाणां सूं चीतोड में चोमास।
हमीरगढ़ जेतां षट् ठाणै, वरणवियै तप रासं॥

(आर्यादर्शन ढा० २ गा० ७)

इससे यह तात्पर्य निकलता है कि जयाचार्य ने पहले चातुर्मास नही फरमाया, केवल साधु-साध्वियों के साहस की परीक्षा के लिए प्रश्न किया था। फिर कुछ समय पश्चात् साध्वी श्री दीपाजी का सं० १९१० का चातुर्मास चितौड़ फरमाया और उन्होने चित्तौड़ चातुर्मास किया जो उपर्युक्त पद्य से प्रमाणित है।

१६. (क) एक बार साध्वी श्री दीपांजी विहार कर रही थी। जंगल मे कुछ डाकू मिले जिन्होने साध्वियो को लूटना चाहा। साध्वी श्री ने कहा—'हमारे हाथ मत लगाना, हम अपना सारा सामान अलग रख देती हैं।' यह कह कर उन्होने सारा सामान अलग रख दिया। चोरों के सरदार ने अपनी तलवार रख कर साध्वियों के सामान की तरफ कदम बढ़ाये कि साध्वी श्री ने तुरत तलवार को उठाकर चोरों को ललकारते हुए कहा—'खबरदार ! हमारे सामान के हाथ लगाया तो ! तुम्हें साध्वियो को लूटते शर्म नही आती।' साध्वी

श्री की फटकार को सुनकर चोरों ने घवराते हुए कहा—'माईजी ! हमारी तलवार तो हमे दे दे, हम आपके हाथ नही लगायेंगे ।'

साध्वी श्री ने साथ की साध्वियों को आगे कर दिया और स्वय तलवार को कधे पर रखकर उनके पीछे चलती गई। जव सामने गांव आ गया एव लोग दिखाई देने लगे तव तलवार को जमीन पर रख दी । चोर उनके पीछे-पीछे आ रहे थे, वे अपनी तलवार को लेकर वहां से वापस चले गये । (अनुश्रुति के आधार से)

(ख) एक वार ऐसे ही कुछ डाकू साध्वी श्री दीपाजी को विहार करते समय जंगल मे मिले । उन्होने साध्वियो को लूटना चाहा । साध्वी श्री ने कहा—'हमे मत छुओ, हम सव सामान दूर रख देती है ।' इस तरह कहती हुई तत्काल सामान का ढेर लगाकर साध्वियों को चारो ओर विठलाकर वे वीच मे वैठ गई और ऊंचे स्वर से नमस्कार महामत्र का जाप करने लगी । लुटेरे गुनगुनाहट की ध्वनि सुनकर घवराये और मन मे सोचने लगे कि ये कोई देवी की आराधना कर रही हैं इससे न जाने हमारी क्या दुर्दशा होगी, इस प्रकार भयभीत होकर भाग गये ।

(अनुश्रुति तथा सेठिया संग्रह से)

वास्तव मे भय और संकट के समय साध्वी श्री की क्षमता व उपज सराहनीय थी।

(ग) स० १८९६ मे खेरवा ग्राम के पास रास्ते मे चौदह साध्वियो (सभवतः दीपांजी आदि) को दो अयोग्य पुरुपो ने वहुत कष्ट दिया । वे ऐसे कुपात्र थे कि कुकृत्य करने के लिए उन्होने सतियो को दो मुहूर्त्त लगभग कुवचन तथा मारपीट द्वारा त्रासित किया । साध्वियो ने भयकर विकट वेला मे भी वडी दृढता का परिचय दिया एव प्राणाहुति करने के लिए उद्यत हो गई तव वे भाग खडे हुए ।

(वड़ी मर्यादा वोल सख्या ३६ के आधार से)

१७. एक वार (सवत् १८७७-७८) वाल मुनि जीतमलजी एक काष्ठ की पात्री वहुत सुदर रग कर लाये। पात्री के रग अच्छा खिलने से मुनि श्री को हर्प होना स्वाभाविक था । जव आचार्य ऋपिराय के दर्शन किये तव उन्होने वह पात्री श्री दीपाजी को दिखाई । साध्वी श्री ने मुनि श्री को आह्वान करते हुए कहा—'यह हाडी कुडो का काम तो हम ही करने के लिए वहुत है । आप तो कोई सूत्रो की पद्य मय जोड (रचना) करके लाते तो सवके पढने की उपयुक्त सामग्री वनती।' समय की वात थी कि साध्वी श्री के ये शब्द जिस अभिप्राय से निकले थे वे मुनि श्री के हृदय को वेध गये। उसी प्रेरणा से प्रेरित होकर उन्होने (जयाचार्य ने) स० १८७८ मे अपनी १८ वर्ष की आयु मे एव ९ ही वर्पों की दीक्षा-पर्याय मे 'पन्नवणा' सूत्र को राजस्थानी भाषा मे पद्यमय वना दिया और उत्तरोत्तर इस कार्य मे सलग्न हो कर भगवती आदि अनेक आगमों की राजस्थानी भाषा मे पद्यमय रचना की।

(अनुश्रुति के आधार से)

१८. जयाचार्य पदासीन होने के पश्चात् स० १९०९ में मेवाड़ पधारे। वहां साध्वी दीपांजी ने आचार्यप्रवर के दर्शन कर अनुनय किया—'आप मोखणदा मत पधारना, साध्वियो को साथ मत रखना और वहां साध्वियो का चातुर्मास मत करवाना क्योकि वहां डाकिनियों का उपद्रव है।'

साध्वी दीपांजी का आचार्य श्री के पास से अन्य क्षेत्रों मे विहार हो गया। पीछे मोखणदा के लोगो की अधिक प्रार्थना पर जयाचार्य वहां पधार गये। साथ मे ५ साध्विया भी थी। संयोगवश उन सभी साध्वियो को डायन (डाकनियां) लग गई अर्थात् शरीर मे प्रविष्ट हो गई जिससे वे वहां से विहार नही कर सकी।

जयाचार्य वहां से विहार कर गये। कुछ ही दिनो वाद साध्वी श्री दीपांजी नें पुन: दर्शन किये तव जयाचार्य ने फरमाया—'दीपांजी ! तुमने तो मोखणदा जाने के लिए मनाह किया था किन्तु हम लोगो के आग्रह से वहा चले गये और ऐसी स्थिति हो गई।' साध्वी दीपाजी ने कहा—'मैंने तो पहले ही निवेदन किया था पर आपने ध्यान नही दिया। खैर ! अव भी आप मुझे आदेश दे और मैं वहां जाकर साध्वियो को विहार करवाऊ।' जयाचार्य का आदेश मिलते ही साध्वी दीपाजी मोखणदा पहुची। उनका नाम सुनते ही सवके दिलो मे ऐसी धाक पडी कि पांचो साध्वियो की डाइने हवा की तरह दौड गई।

पाचो साध्वियां दीपाजी के चरणो मे गिर पड़ी। दीपांजी ने जयाचार्य के दर्शन कर पाचो साध्वियो को गुरु-चरणों मे उपस्थित कर दिया। जयाचार्य ने दीपाजी के साहस की भूरि-भूरि प्रशसा की।

(अनुश्रुति के आधार से)

१९ एक वार जयाचार्य ने साध्वी श्री दीपाजी को किसी कार्य विशेष से एक गाव मे जाने का आदेश दिया। साध्वी श्री ने निवेदन किया—'गुरुदेव ! आप जिस उद्देश्य से वहा भेज रहे है उनकी पूर्ति अभी सभव नही लगती।' फिर भी जयाचार्य ने उन्हे वहां जाने का आदेश दिया। साध्वी श्री गुरु-आज्ञा के अनुसार वहा के लिए विदा हो गई। कुछ ही दिनो वाद ऐसे समाचार मिले कि अभी वहां पर जाने की कोई अपेक्षा नही है। तव जयाचार्य ने साध्वी श्री को रास्ते मे से वापस लौटने का आदेश दिया। साध्वी श्री ने गुरु-दर्शन कर विनोद भरे शव्दो में कहा—'हम औरते तो पश्चात् बुद्धि वाली कहलाती है परन्तु कभी-कभी आप जैसे महापुरुष भी वाद मे ध्यान देते है। मैने तो पहले ही आपसे प्रार्थना की थी पर मुझे आपके आदेश का पालन करना पडा।' जयाचार्य ने उनके कथन को गभीरता पूर्वक ग्रहण किया और वे मुस्कराते हुए बोले—'आज मैं समझता हूं कि मुझे कहने वाली माता कल्लूजी है तो सही, अन्यथा इतने खुले शव्दो मे मुझे कौन कहती।'

(अनुश्रुति के आधार से)

२०. एक बार साध्वी श्री दीपांजी गगापुर विराज रही थी। दिन के समय एक चोर ने साध्वियो के वस्त्रादिक देखे। उन्हे चुराने के लिए वह रात्रि मे आया। उस समय कुछ साध्वियां साध्वी श्री दीपांजी के पैर दबा रही थीं। जब वे सो गईं और उन्हे नीद आ गई तब चोर आकर दीपाजी के पैर दबाने लगा। साध्वी श्री ने सोचा—'ये हाथ तो पुरुष के लगते है।' साध्वी श्री ने तत्काल उठकर उसके दोनो हाथ पकड़ लिए और कौन है ? ऐसे ललकार लगाती हुई 'मिच्छामि दुक्कड़' कह कर उसके हाथ छोड दिये। चोर तुरत भाग गया।

(अनुश्रुति के आधार से)

२१. अन्तिम समय मे साध्वी दीपांजी अस्वस्थ हो गई, फिर भी उन्होने समभाव से वेदना को सहन किया। जयाचार्य का उस वर्ष (स० १९१८) लाडनू मे चातुर्मास था। उन्होने ऋषभदासजी तलेसरा (सेवा मे समागत) से साध्वी श्री की अस्वस्थता के समाचार सुनकर विचार किया कि चातुर्मास के बाद बहुत साधु-साध्वियों के समूह से दीपांजी को दर्शन देना है। महासती सरदारांजी ने भी कहा—'यह कार्य शीघ्र करना है।' जयाचार्य ने यह भी फरमाया—'सरूपचदजी स्वामी यहां स्थली प्रदेश मे विचरते है अत दीपाजी को दर्शन देकर वापस उनके लिए जल्दी आना पड़ेगा।'

इस प्रकार विचार-विमर्ष चल रहा था कि थोड़े दिन बाद ही आमेट से एक पत्र आया। उसमे लिखा था—'साध्वी दीपाजी ने भाद्रव वदि ५ को एक मुहूर्त दिन चढने के बाद आजीवन अनशन स्वीकार किया और वह भादवा वदि ७ को ऊर्ध्व भावो से सानद सपन्न हो गया।' यह सुनकर जयाचार्य आदि सभी साधु-साध्वियो ने चार 'लोगस्स' (२४ तीर्थंकरो की स्तुति) का ध्यान किया एव उनके आराधक पद प्राप्त करने की मुक्त स्वरों से सराहना की[1]।

---

१. छेहडै कारण ऊपनो रे, सती मन सम परिणाम रे।
जयगणि लाड़णू सैहर मे रे, सांभलिया समाचार रे।
ऋषभदासजी तलेसरा कनै रे लाल, जब कियो मन मे विचार रे॥
चौमासो उत्तरियां थका रे, घणा सत सत्या रै सघात रे।
दर्शण देणा दीपाजी भणी रे लाल, हिवडै अति हुलसात रे॥
मनसोभो एहवो कियो रे, जय गणपति तिणवार रे।
सिरदारा महासती पिण इम कह्यो रे लाल, सिघ्र कार्य करणो सार रे॥
सरूपचदजी स्वामी थली मझै रे, त्यांरै अर्थे सुविचार रे।
दर्शण देई दीपांजी भणी रे लाल, पाछो आणो थली मझार रे॥
अल्प दिवस मे आविया रे, आमेट हुति समाचार रे।
कागद मे लिखियो इसो रे लाल, सांभलजो विस्तार रे॥

२२. सं० १९१८ आसोज सुदि ६ बुधवार को जयाचार्य ने साध्वी श्री के गुणों की एक ढ़ाल बनाई जिसमे ५ दोहे और २९ गाथाएं है। उसमे उनकी अन्यान्य विशेषताओं के साथ गुरु-आज्ञा पर दृष्टि, सघ निष्ठा व निर्मल नीति को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है :—

अधिक सासण री आसता रे, दृष्टि आण ऊपर अभिराम ॥
जेह हलुकर्मी जीवड़ा रे, निर्मल जेहनी नीत रे।
प्राण खंडै पिण नवि छंडै रे लाल, उत्तम गण सुप्रतीत रे॥
भिक्खू स्वाम तणो भलो रे, उत्तम मग अवलोय रे।
रूड़ी आसता राखियां रे, सकल कार्य सिद्ध होय रे॥
(दीपां० गु० व० ढ़ा० १ गा० १६, २७, २८)

ख्यात, शासन विलास ढ़ा० ४ गा० २६ की वार्तिका तथा शासन प्रभाकर ढा० ५ गा० ८६ से १०४ मे भी साध्वीश्री से सम्वन्धित वड़े सतोले और भाव भरे शब्दों मे विवेचन किया गया है।

भाद्रवा विद पचम दिने रे, दिन दोय घणी चढचा जांण रे।
संथारो दीपांजी कियो रे लाल, हरख हीये अति आंण रे॥
भाद्रवा विद सातम निशा रे सीज्यो सखर संथार रे।
परिणांम चढता रह्या घणा रे लाल, कागद मे समाचार रे॥
जय गणि प्रमुख साधु साध्वी रे, चिउं लोगस्स काउसग ठाय रे।
याद किया अरिहंत सिद्धां भणी रे लाल, जिन वच हियडै वसाय रे॥
(दीपां गु० व० ढा० १ गा० १६, १७ से २४)

वर्स बोहितरे चरण दीपांजी, ऋषिराय तणी मुरजी भारी जी कांई।
उगणीसै अष्टादश अणसण, पढी भणी वहु जशधारी जी कांई॥
(शासन विलास ढ़ा० ४ गा० २६)

६१।२।३५ श्री पेमांजी (लावा)

(दीक्षा सं० १८७३, १८७८ के पूर्व—भारी युग में गणवाहर)

दोहा

पेमां पति के साथ में, साध्वी बनी अवाध।
पर गण से बाहर हुई, अल्प समय के बाद[1] ॥१॥

मुनि श्रमणी-समुपासना, कर गाती गुणगान।
उसी वेष में मांग के, लाती भोजन पान[2] ॥२॥

१. पेमांजी की ससुराल मेवाड़ मे लावा (सरदारगढ़) ग्राम मे एव गोत्र ववलिया (ओसवाल) था। उन्होने स० १८७३ मृगसर वदि ६ को मुनि श्री हेमराजजी (३६) से अपने पति मुनि श्री रत्नजी (७४) के साथ लावा मे दीक्षा ली। साथ मे मुनि श्री अमीचंदजी (७५) की भी दीक्षा हुई।

(ख्यात, शासन-विलास ढा० ४ गा० २७ तथा वार्त्तिका)।

प्रिया सहित रत्न दीख्या लीधी रे।

(हेम नवरसो ढा० ५ गा० १०)।

२. उन्होने कुछ दिन तो सयम का पालन किया। फिर न निभा सकने के कारण कर्मयोग से स० १८७८ के पूर्व भारीमालजी स्वामी के युग मे ही संघ से अलग हो गई।[1] गण से पृथक् होने के वाद वे साधु-साध्वियो की सेवा करती, गुण गाती एवं साध्वी के वेष मे रोटी मागकर लाती।

(ख्यात)।

---

१. लाहवा ना वसवान रे, रत्न त्रिया साथे दिख्या।
वर्ष तिहोतरे जान रे, पाछै पेमां नीकली।।

(शासन-विलास ढ़ा० ४ गा० २८)

शासन प्रभाकर ढा० ५ गा० १०५ मे भी यही वर्णन है।

९२।३।३६ साध्वी श्री नन्दूजी (लावा)

(सयम पर्याय सं० १८७३—१९४१)

छप्पय

'नंदू' श्रमणी ने नया खोल दिया आयाम।
कन्याओं की पंक्ति में प्रथम लिखाया नाम।
प्रथम लिखाया नाम ग्राम 'लावा' कहलाया।
फतहचन्दजी तात गोत्र बंवलिया गाया।
स्वजन धर्म में अग्रणी फैला बडा सुनाम।
नंदू श्रमणी ने नया खोल दिया आयाम॥१॥

दीक्षित युग में भिक्षु के 'जोतां' चाची ज्ञात।
चाचा कुछ दिन पूर्व ही हुए 'रत्न' मुनि ख्यात।
हुए रत्न मुनि ख्यात हुई नंदू फिर सज्जित।
संयम के संस्कार जगे है जो पूर्वार्जित।
परिजन सहयोगी बने बना सभी प्रोग्राम।
नंदू श्रमणी ने नया खोल दिया आयाम॥२॥

सत 'हेम' 'जोतां' सती पहुंचे गढ सरदार।
दीक्षा दिन निश्चित किया दीक्षोत्सव साकार।
दीक्षोत्सव साकार हुई सव ही तैयारी।
दीक्षा-स्थल पर भीड़ लगी जनता की भारी।
ग्रामाधिप ने हुक्म दे दी दीक्षा को थाम।
नन्दू श्रमणी ने नया खोल दिया आयाम॥३॥

अभिभावक दीक्षार्थिनी दीक्षा-दाता आदि।
पहुचे चारण-गांव में फिर भी मिटी न व्याधि।

फिर भी मिटी न व्याधि कदम कुछ और बढ़ाये।
राणा की नजदीक सीम में चलकर आये।
कुछ ही दूरी पर बसा 'खारा' नामक ग्राम।
नंदू श्रमणी ने नया खोल दिया आयाम ॥४॥

वहां महामुनि हेम ने वस्त्राभूषण युक्त।
नंदू को संयम दिया देख समय उपयुक्त।
देख समय उपयुक्त प्रथम वह अकनकुमारी।
कन्या धन्या एक संघ की बनी सितारी।
साल तिहोत्तर श्रेष्ठतर शीतकाल अभिराम।
नंदू श्रमणी ने नया खोल दिया आयाम ॥५॥

'जोतां' को सौंपा उन्हें करने हित सभाल।
प्रथम केशलुंचन किया जोतां ने तत्काल।
जोतां ने तत्काल वेष पहनाया नूतन।
दिया पिता को सौंप वेष नंदू का प्राक्तन।
जंगल में मंगल हुआ सफल हुआ सब काम'।
नंदू श्रमणी ने नया खोल दिया आयाम ॥६॥

दोहा

बीजा जोतां का मिला, शांत सुखद सहवास।
शिक्षा रस भरती गई, करती गई विकास ॥७॥

छप्पय

संयम में रम के किया अच्छा आगम-ज्ञान।
कला सरस व्याख्यान की सीखी देकर ध्यान।
सीखी देकर ध्यान बड़ी विदुषी कहलाई।
बीजां जोतां बाद अग्रणी पद पर आई।
गुरु-आज्ञा को मानती जीवन-धन विश्राम।
नंदू श्रमणी ने नया खोल दिया आयाम ॥८॥

विचर-विचर पुर नगर में बहुत किया उपकार।
सत्य धर्म के भर दिये जन-जन में संस्कार।

जन-जन में संस्कार वनाये वहुतर श्रावक।
दीक्षा दी है पांच वोध दे विरति-विधायक।
सबल स्व-पर-कल्याण हित श्रम करती हरयाम[3]।
नंदू श्रमणी ने नया खोल दिया आयाम ॥९॥

नौ से सौलह साल तक आठ वर्ष का कथ्य।
चतुर्मास तप आदि का विवरण मिलता सत्य।
विवरण मिलता सत्य ग्रथ में 'आर्यदर्शन'[4]।
करने से फिर खोज प्राप्त होता कुछ वर्णन[5]।
शीत सहा वहुतर किया तप का भी व्यायाम[6]।
नंदू श्रमणी ने नया खोल दिया आयाम ॥१०॥

अन्तिम वर्षो में हुई ग्रन्थि वेदना घोर।
आई फिर वार्धक्य वय जिससे तन कमजोर।
जिससे तन कमजोर किंतु समता वल भरसक।
पचपदरा स्थिरवास किया है कुछ वर्षो तक।
आत्मालोचन कर सही चली गई सुरधाम।
नंदू श्रमणी ने नया खोल दिया आयाम ॥११॥

पालन कर अडसठ हयन संयम की पर्याय।
भाव-क्रिया से सुकृत की वहुत वड़ी की आय।
वहुत वड़ी की आय परम चरमोत्सव छाया।
सवत् इकतालीस गांव पचपदरा गाया।
धन्य धन्य ध्वनि उठ रही गाते कीर्ति तमाम[7]।
नंदू श्रमणी ने नया खोल दिया आयाम ॥१२॥

दीक्षित भारीमाल के युग में कन्या एक।
शुभ मुहूर्त ऐसा हुआ फिर तो हुई अनेक।
फिर तो हुई अनेक वड़ी हरियाली छाई।
गण-वनिका गुलजार निराली लाली लाई।

वेलड़ियां बढ़ती गई फले आम पर आम[८]।
नंदू श्रमणी ने नया खोल दिया आयाम ॥१३॥

दोहा

दर्शन-वंदन-स्मरण का, गाया बड़ा महत्त्व।
दिखलाया गुण-गीति, में महासती का सत्त्व[९] ॥१४॥

१. साध्वी श्री नदूजी का जन्म मेवाड़ के लावा (सरदारगढ) ग्राम में हुआ। उनके पिता का नाम फतहचन्दजी और गोत्र बवलिया (ओसवाल) था। फतहचन्दजी गांव के प्रमुख, जिम्मेदार, पंच-पचायती मे अग्रणी और श्रद्धा-निष्ठ श्रावक थे।[1] नदूजी जब अकनकुमारी कन्या (जो बालिका ब्रह्मचारिणी हो और जिसकी सगाई भी न की गई हो वह अकनकुमारी कहलाती है) थी तब साधु-साध्वियो के सम्पर्क से उनके दिल मे वैराग्य भावना उत्पन्न हो गई। उनके पिता फतहचन्दजी ने हर्ष से दीक्षा की आज्ञा प्रदान की और बड़े ठाटबाट से उनका दीक्षामहोत्सव किया।[2]

मुनि श्री हेमराजजी (३६) साधुओ सहित नंदूजी को दीक्षा देने के लिए लावा पधारे। साध्वी श्री जोताजी (४८) आदि भी वहां पहुंच गई। दीक्षा के निर्णीत दिन और समय पर मुनि श्री एव साध्वी श्री दीक्षा-स्थल पर पधार गये। कुमारी कन्या दीक्षार्थिनी बहिन नदूजी को लेकर उनके अभिभावक आदि भी जुलूस सहित वहां पहुंच गये। उस समय कुछ विरोधी लोगो ने रावला मे जाकर ठाकुर साहब[3] को शिकायत करते हुए कहा—'यह अबोध कुमारी कन्या आपकी

---

१. लावा गढ मेवाड़ ना वासी, मात-पिता सुखकार जी।
ओसवश श्रावक व्रत पालै, सती लियो अवतार जी॥
(श्रावक लिछमणजी मथेरण कृत- नदू० गु० व० ढा० १ गा० २)

२. नन्दू कुंवारी कन्यका, दिक्षा नै थया त्यारी जी।
पिता फतैचंदजी लावा में अग्रेसरी, तिण दीक्षा महोत्सव करी भारी जी॥
(शासनप्रभाकर ढा० ५ गा० १०६)

३. उदयपुर महाराणा द्वारा डोढ़िया ठाकुर सरदारसिहजी को तीन लाख की जागीर का 'सरदारगढ' नामक ग्राम मिला था। उन्होने सं० १७९५ मे वहां विशाल किला बनाना शुरू किया जो ५ साल के पश्चात् सं० १८०० मे संपन्न हुआ जिसके निर्माण मे उस समय २२ लाख रुपये लगे।

इन्ही ठाकुर साहब के ७ पुत्र और एक गुलाबकवरी नाम की पुत्री थी। पुत्री गुलाबकवरी का विवाह तत्कालीन जोधपुर दरबार विजयसिहजी के साथ हुआ। सात पुत्रो मे पाटवी पुत्र सावतसिहजी थे, जो सरदारसिह के उत्तराधिकारी हुए। परन्तु भाइयों मे पारस्परिक फूट होने के कारण ठाकुर सरदारसिहजी के स्वर्गवास के चार साल बाद ही सं० १८४० में 'बान्सी' के शक्तावत संग्रामसिहजी ने सरदारगढ़ पर हमला कर उसे अपने कब्जे मे कर लिया। उदयपुर महाराणा भी उस समय शक्तावतो का मुकाबला करने मे समर्थ नही थे जिससे उन्होंने अपना अधिकार जमा

सीमा (गांव के बाहर) मे दीक्षा ले रही है। इससे आपको भारी मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा। ठाकुर साहब ने विना सोचे समझे अपने हलकारे (चपरासी) को भेजकर साधुओं से कहला दिया कि आप मेरी सीमा में दीक्षा न दें। ऐसा आदेश सुनकर मुनि श्री हेमराजजी, साध्वी श्री जोतांजी, दीक्षार्थिनी वहिन तथा उसके परिजन आदि वहां से रवाना होकर डेढ़ कोस की दूरी पर 'डीगरोल' गाव मे चारणो की सीमा मे दीक्षा देने के लिए पहुचे। किन्तु विपक्षी व्यक्तियो के वहकाव मे आकर चारणो ने भी अपनी सीमा मे दीक्षा देने की मनाह कर दी। तव मुनि श्री आदि निकटवर्ती महाराणा की सीमा मे गये। इस प्रकार विलम्व होने से दीक्षा का मुहूर्त टलता जानकर मुनि श्री ने तत्काल वहां—खारा नामक ग्राम की सीमा मे पिता की आज्ञा लेकर नदूजी को गृहस्थ के गहनो और कपडों सहित (प्रातिहारिक कहकर अर्थात् वापस सभलाने की भावना से) संयम प्रदान कर दिया।

बाप आज्ञा देवा साथे आयो रे, ग्राम खारा तणी सीम मांहयो रे।
हेम साधपणो पचखायो॥
गृहस्थ रा वस्त्र सहित पाडिहारो, त्यां सहित सजम दियो सारो रे।
तिण में दोप न जाण्यो लिगारो॥
(हेम नवरसो ढा० ५ गा० २२, २३)

लिया। सावतसिहजी को गुजारे के लिए सागुवा आदिकी मामूली जागीर दे दी

सग्रामसिह के वाद क्रमश. अभयसिहजी, जयसिह जी और चतरसिह जी उत्तराधिकारी हुए। स० १९०४ मे महाराणा स्वरूपसिहजी ने फौज भेजकर चतरसिहजी से सरदारगढ़ ले लिया और वापस डोढ़िया ठाकुर सरदारसिहजी के वशज ठाकुर जोरावरसिहजी को सौंप दिया। डोढ़िया खानदान सदा से ही भिक्षु-शासन के प्रति श्रद्धावान् रहा है।

साध्वी श्री नदूजी की दीक्षा सं० १८७३ मे हुई तव वहा डोढ़िया सरदारसिहजी की वशावली का राज्य नही था। उस समय शक्तावत जयसिहजी विद्यमान थे और इन्ही के द्वारा सरदारगढ़ की सीमा मे दीक्षा देने की रुकावट हुई थी। उसके थोड़े दिन वाद ही जयसिह के पुत्र चतरसिहजी के अधिकार से ठिकाना चला गया था।

वर्तमान मे सरदारसिहजी के वशीय ठाकुर अमरसिहजी तथा कंवर मानसिहजी हैं जो वड़े धर्म प्रिय एवं तेरापथ धर्म-संघ के प्रति पूर्ण आस्थावान हैं। साधु-साध्वियों की सेवा का समय-समय पर वडी रुचि से लाभ उठाते हैं।

(सरदारगढवासी नाथूलालजी नवलखा के पत्र के आधार से)

संवत् अठारै वर्ष तिहोतरे, हेम हाथ चारित्र धारी जी।
नंदू अकनकुमारी किन्या, भणी वखाण कला भारी जी।।

(शासन-विलास ढ़ा० ४ गा० २८)

साध्वी श्री नदूजी की दीक्षा स० १८७३ मे हुई पर महीना और तिथि प्राप्त नही है। हेम नवरसा ढा० ५ मे लिखा है कि मुनि रत्नजी (७४) 'लावा' तथा मुनि अमीचन्दजी (७५) 'गलूड' को मुनि श्री हेमराजजी ने स० १८७३ मृगसर वदि ६ को दीक्षा दी। उसके थोडे दिन वाद नदूजी को दीक्षित किया.—

थोड़ा दिवस पछै वली जांणी, नंदू कुंवारी किन्या पिछांणी।
तिण पिण चारित री चित्त आंणी।।

(हेम नवरसा ढा० ५ गा० २१)

इससे यह अभिव्यक्त होता है कि नदूजी की दीक्षा मृगसर अथवा पोष महीने मे हुई।

मुनि श्री ने साध्वी नदूजी को दीक्षित कर साध्वी जोताजी के सुपुर्द कर दिया। उन्होने साध्वी नदूजी का केशलुचन किया तथा उन्हे साध्वी के कपड़े पहनाकर गृहस्थ के प्रातिहारिक वस्त्राभरण वापस उनके पिता फतहचन्दजी को सभला दिये।

सरदारगढ के श्रावको के कथनानुसार साध्वी श्री जोतांजी साध्वी नदूजी की ससार पक्षीया चाची थी, जिन्होने स० १८५८ मे आचार्य भिक्षु द्वारा चारित्र ग्रहण किया था। मुनि रत्नजी साध्वी नदूजी के ससार पक्षीय चाचा थे, जिन्होने अपनी पत्नी पेमांजी (८६) सहित नदूजी से कुछ दिन पहले दीक्षा स्वीकार की थी।

तेरापथ धर्म-संघ का शुभारभ होने के लगभग ५३ वर्ष वाद कुमारी कन्या की यह सर्वप्रथम दीक्षा हुई।

ठाकुर साहव के ऐसे व्यवहार से फतहचदजी ने 'लावा' ग्राम मे निवास करना छोड़ दिया तथा आगे के लिए पूरा वंदोवस्त किये विना गावो मे जाने का त्याग कर दिया। चारण लोगो के व्यवहार से खिन्न होकर गाव-गाव मे श्रद्धालु भाइयो को सूचित कर दिया कि 'डीगरोल' के चारणो के साथ किसी प्रकार का लेन-देन, वाणिज्य आदि नही करना है। वे नगद पैसे देकर भी कोई वस्तु खरीदना चाहें तो मत देना।

इस प्रकार प्रतिक्रिया होने से चारण लोगो ने महाजनो के पास आकर अपनी गलती स्वीकार करते हुए कहा—'भविष्य मे हम पूरा ध्यान रखेंगे, ऐसा वर्ताव कभी नही करेंगे।' तव महाजनो ने उनके साथ व्यवहार करना खोल दिया।

ठाकुर साहव ने भी महाजनों ने जितनी शर्तें रखी उन्हे मजूर कर उनको

प्रसन्न कर लिया। उसके बाद फतहचंदजी आदि वापस लावा में आकर रहने लगे।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढ़ा० ५ गा० १०६ से ११६ के आधार से)

२. साध्वी श्री जोताजी स्वय साध्वी श्री बीजाजी (४०) के सिघाड़े मे थी। दीक्षा के समय वे लावा आई। दीक्षा के पश्चात् साध्वी श्री नदूजी को अपने साथ ले गई। नदूजी साध्वी श्री बीजाजी (४०) तथा उनकी सहयोगिनी साध्वी श्री जोतांजी (४८) के साथ रही। अन्य साध्वियां वन्नाजी (८४) तथा नोजांजी (९८) थी।

साध्वी श्री बीजाजी के सिंघाड़े मे एक साध्वी लच्छूजी (१०१) और थी, जिनको स० १८७८ मे आचार्य श्री ऋषिराय ने दीक्षित कर साध्वी श्री बीजाजी, जोतांजी और नन्दूजी को सौपा था :—

वड़ी विजां वृद्धिकारिणी हो, जोतां गुण नी जिहाज।
नंदू कुंवारी किन्यका हो, सखर मिल्यो तसु स्हाज॥
विजा जोतां नंदू भणी हो, सूपी पूज ऋषराय।
विनय व्यावच करती थकी हो, दिन दिन हरष सवाय॥

(लच्छू सती गु० व० ढ़ा० १ गा० २, ३)

बीजा सती गुण वर्णन ढ़ाल के अनुसार स० १८८७ मे उनके स्वर्गवास तक साध्वी नदूजी अन्य उपर्युक्त साध्वियों सहित उनकी सेवा मे रही : —

सिरियारी कंटाल्ये कार्य सारचा, तपस्या कर देही तोड़ी रे।
जोतांजी वनांजी नंदुजी नोजांजी, सेवा कीधी कर जोड़ी रे॥

(हेम रचित-बीजां० गु० व० ढा० १ गा० १४)

उसके बाद साध्वी श्री जोतांजी का सिंघाड़ा हुआ तब स० १८८७ से १९०८ तक (उनके स्वर्ग तक) साध्वी श्री नदूजी उनके साथ रही :—

नंदूजी आदि समणी, सुहांणी मनमानी सेवा सुखदांणी।
प्रबल पुण्य जोतां ना पिछाणी।

(जोता० गु० व० ढा० १ गा० १७)

साध्वी नदूजी ने साध्वी श्री बीजांजी और जोताजी के सान्निध्य मे रह कर शास्त्रो का अध्ययन किया एव व्याख्यानादिक कला मे निपुणता प्राप्त की। वे वड़ी साहसिका और विदुषी साध्वी हुई।[1] (ख्यात)

---

१. सूत्र सिधात तणी बहु पाठक, गुण रतनां री खाण जी।
पंडित-चतुर विचक्षण महासती, नव तत्व न्याय पिछाण जी॥

साध्वी श्री साधु-क्रिया में तन्मय होकर गुरु-आज्ञा का बड़ी जागरूकता से पालन करती[१]।

साध्वी श्री जोतांजी के स्वर्गवास के पश्चात् जब साध्वी नंदूजी ने जयाचार्य के दर्शन कर जोतांजी के निश्राय की साध्वियां व पुस्तकें समर्पित की तब जयाचार्य ने सं० १९०८ जेठ सुदि ४ के दिन साध्वी नंदूजी को प्रातिहारिक रूप मे साध्वियां व पुस्तके देकर उनका विधिवत् सिंघाड़ा कर दिया।

(पुस्तकादि समर्पण के पत्रो के आधार से)

३. साध्वी श्री ने आचार्यप्रवर की आज्ञानुसार बहुत वर्षो तक मारवाड़, मेवाड, मालवा, थली और हरियाणा के क्षेत्रो मे विचर कर धर्म की अलख जगाई। अनेक व्यक्तियों को समझाकर तेरापथ के अनुयायी तथा श्रावक बनाये। जैन शासन एवं तेरापंथ की महती गरिमा बढ़ाई।

पांच बहनों को प्रतिबोध देकर उन्होने अपने हाथ से दीक्षा प्रदान की। वे इस प्रकार हैं :—

१. साध्वी श्री सुवटांजी (३०९) 'पचपदरा' को स० १९१३ आषाढ़ शुक्ला ३ को दीक्षा दी।

सं० १९१४ में उनका चातुर्मास पचपदरा था इससे लगता है कि दीक्षा पचपदरा में दी।

२. साध्वी श्री नानूजी (३६९) 'जसोल' को सं० १९२३ कार्त्तिक शुक्ला १५ को दीक्षा दी।

इस वर्ष उनका चातुर्मास पचपदरा मे होने से दीक्षा पचपदरा मे दी ऐसा प्रतीत होता है।

३. साध्वी श्री गंगाजी (४४४) 'मांढा' को स० १९३३ पोष सुदि ९ को 'मांढा' मे दीक्षा दी।

४. साध्वी श्री नानूजी (४९६) 'पचपदरा' को सं० १९३८ फाल्गुन सुदि १२ को पचपदरा में दीक्षा दी। (तिथि का उल्लेख पचपदरा की दीक्षा तालिका मे है।)

हेतु कथा दृष्टांत चौपई, वाचै न्याय लगाय जी।
आछो अधिको अखर उचरै तो, केवल्यां नै देवै भुलाय जी॥
(श्रावक लिछमणजी मथेरण कृत-गु० व० ढा० १ गा० ४, ६)

१. तहत वचनगुरु आग्या पालै, संजम सतरै प्रकार जी।
द्वादश विध तप किरिया साधै, टालै सर्व अणाचार जी॥
(श्रावक लिछमणजी मथेराग कृत-गु० व० ढा० १ गा० ५)

५. साध्वी श्री कुसुवांजी (४९७) 'पचपदरा' को सं० १९३८ फाल्गुन सुदि १२ को पचपदरा मे दीक्षा दी। (तिथि का उल्लेख पचपदरा की तालिका में है।)

(इन्ही साध्वियो की ख्यात से)

४. सं० १९०९ से १९१६ तक साध्वी श्री के चातुर्मास तथा तप आदि का विवरण आर्यादर्शन कृति में इस प्रकार मिलता है :—

यंत्र

साध्वियों के नाम और क्रम संख्या	थ ान	१९०९[1] ...	१९१० भील-वाडा	१९११ ...	१९१२ लावा सरदार गढ़	१९१३ देवगढ	१९१४ पचदरा	१९१५ चूरू	१९१६ पाली
	ठाणा	१०	१०	१०	९	९	१०	७	७
नन्दूजी (९२)	तप	...	...	...	...	...	...	...	...
सरूपांजी (२२८)	दिन	...	१२	१५	१७	...	...	...	७
सीताजी (२२९)		...	३०	३०	३५	३०	२९	९	१३
दोलांजी (२४९)		...	३०	३०	३७	३०	३०	...	१२
महेकाजी (१४४)		...	३०	२१	३५	३०	१६	...	७
मूलांजी (२३१)		...	३०	२१	३५	३०	२२	...	...
पन्नाजी (१३४)		...	...	१५	२२	१३	१३	...	...
लच्छूजी (१०१)		...	...	७	७	...	...	...	...
सोनांजी (२०८)		...	...	७	९	१५	१६	...	...
सुरतांजी (२३३)		...	...	...	...	...	११	...	...
सुवटांजी (३०९)		...	...	...	...	...	...	...	११

समीक्षा—१

सं० १९१३ मे साध्वी श्री ककूजी (११३) के साथ की साध्वी सुरताजी (२३३) अनुमानत साध्वी नंदूजी के सिंघाड़े में रही, क्योकि कंकूजी के साथ इस वर्ष एक साध्वी कम हुई ऐसा 'आर्यादर्शन' कृति मे उल्लेख है और साथ की

---

१. सं० १९०९ के चातुर्मास मे साध्वियों ने १५-१६-१२-११-८-१० दिन का तप किया परन्तु उनके अलग-अलग नाम मूल प्रति में उल्लिखित नही है।

साध्वी श्री स्वरूपाजी (२२८) जयाचार्य की सेवा मे रही। ऐसा उल्लेख भी उक्त कृति मे है।

सं० १९१४ मे साध्वी श्री सुवटांजी (३०९) की दीक्षा होने से १० ठाणें हो गये।

स० १९१५ और १९१६ मे तीन साध्वियां कम हुई—साध्वी श्री लच्छूजी (१०१) और सुरतांजी (२३३) जयाचार्य की सेवा मे तथा साध्वी श्री मूलाजी (२३१) साध्वी श्री मगदूजी (१०२) छोटा के सिंघाडे मे रही। (देखें तीनों साध्वियों के प्रकरण मे)

समीक्षा-२

साध्वी श्री नोजाजी (९८) स० १९१० पुर में दिवगत हुई, ऐसा 'आर्या-दर्शन' ढाल २ सोरठा १७ मे उल्लेख है। पहले वे साध्वी श्री वीजाजी (४०) के तथा फिर साध्वी श्री जोतांजी (४८) के सिंघाड़े मे रही, उनके स्वर्ग के पश्चात् सभवत: नदूजी के साथ रही हो और उनके साथ स० १९१० मे स्वर्गस्थ हुई हो, ऐसा मालूम देता है। उस वर्ष नदूजी का चातुर्मास भी भीलवाड़ा मे था जो 'पुर' के नजदीक है।

समीक्षा-३

उपर्युक्त यत्रानुसार साध्वी श्री लच्छूजी (१०१) सं० १९११ से १९१४ तक साध्वी नदूजी के साथ थी। लच्छू सती गुण वर्णन ढाल तथा आर्यादर्शन ढाल ८, ९ के अनुसार सं० १९१५ और १९१६ मे वे जयाचार्य के साथ थी। अतः संभव है कि साध्वी लच्छूजी स० १८७८ में दीक्षित होने के वाद साध्वी श्री वीजांजी (३०) के सिंघाडे मे सं० १८८७ तक, वाद मे साध्वी श्री जोतांजी (४८) के सिंघाड़े मे स० १९०८ तक और उसके पश्चात् स० १९१४ तक नदूजी के सिंघाड़े मे रही।

सेवा :

सं० १९०९ के चातुर्मास के पश्चात् चैत्र महीने मे साध्वी श्री ने गुरुदर्शन कर २२ दिन, १९१० मे ५ दिन, १९११ मे २० दिन, १९१२ मे सवा महीना, १९१३ मे एक महीना, १९१४ मे साधिक चार महीने और १९१५ मे ११६ दिन सेवा की। स० १९१६ मे कितने दिन सेवा की, इसका उल्लेख ढ़ाल मे नही है।

समर्पण :

सं० १९१४ वैशाख सुदि ८ को साध्वी नंदूजी ने आठ साध्वियों से अपना सिंघाडा सरदारसती को समर्पित किया :—

वैशाख सुदि आठम सारं, बड़ी नंदू सेरां सिणगारं।
ए पिण हठ कर नै अधिकायो, थया सिरदारांजी री नेश्रायो ॥

(आर्यादर्शन ढ़ा० ७ गा० ६)

शुक्ल वैशाख अष्टमी पुण्य दिन, वड नंदू अठ ठाण ।

(सरदार सुजश ढ़ा० ११ गा० १२)

सं० १९१४ मे सरदार सती की निश्राय में समर्पित होने वाली सिंघाड़बध साध्वियो के लेखपत्र पर नदूजी के हस्ताक्षर है। स० १९२७ फाल्गुन सुदि १४ सोमवार को किये गये साध्वियों के सिंघाड़ो के लेखपत्र पर भी उनके हस्ताक्षर है।

५. पचपदरा के श्रावक धनराजजी तातेड़ द्वारा संगृहीत चातुर्मास तालिका में उनके पचपदरा के चातुर्मास इस प्रकार हैं :—

१. स० १९१७ मे ७ ठाणों से किसनचदजी तातेड़ के मकान में चातुर्मास किया। साथ मे साध्वी श्री पन्नाजी (१३४), म्हेकाजी (१४४), सोनांजी (२०८) दोलाजी (१४९), सुवटांजी (३०९) और सीताजी (२२९) थी।
२. स० १९२१ मे उपर्युक्त ७ ठाणो से उसी मकान मे चातुर्मास किया। भादवा वदि ३ को साध्वी श्री सीतांजी (२२९) ने आयुष्य पूर्ण कर दिया।
३. स० १९२३ मे उपर्युक्त ६ ठाणो से उसी मकान मे चातुर्मास किया। इस चातुर्मास मे कार्त्तिक शुक्ला १५ को साध्वी श्री ने जसोल की साध्वी श्री नानूजी (३६९) को दीक्षा दी।
४. स० १९२६ मे ८ ठाणो से उसी मकान मे चातुर्मास किया। उपर्युक्त ७ साध्वियां एव आठवी साध्वी श्री सेरांजी (१७७) बीदासर की थी, जो कार्त्तिक वदि १५ को दिवगत हो गई। साध्वी श्री नानूजी (३६९) का नाम तालिका मे भूल से छूट गया लगता है।
५. स० १९२५ मे ६ ठाणों से वृद्धिचन्दजी, सेजरामजी के मकान मे चातुर्मास किया। साथ की साध्वियों के नाम—म्हेकांजी (१४४), सोनाजी (२०८), दोलाजी (२४९), सुवटांजी (३०९), नानूजी (३६९) हैं।

सं० १६३५ से सं० १६४१ तक साध्वी श्री पचपदरा मे स्थिर-वास रही ।

६. सं० १६३६, ३७ में उपर्युक्त ६ ठाणे थे । पचपदरा की तालिका मे साध्वी श्री दोलांजी (२४६) का नाम छूट गया मालूम देता है । पच-पदरा के एक प्राचीन पत्र मे सं० १६३५ मे साध्वी नदूजी (६२) के सिघाड़े मे साध्वी श्री दोलांजी के नाम का उल्लेख होने से सं० १६३६, ३७ में भी वे उनके साथ अवश्य होनी चाहिए ।

७. स० १६३७ मे साध्वी श्री सोनाजी स्वर्ग पधार गई, ऐसा उनकी ख्यात मे लिखा है । पचपदरा मे स्वर्गस्थ साधु-साध्वियो की सूची मे उनका नाम नही है ।

८. स० १६३८ मे ६ ठाणे थे । उपर्युक्त ५ और छठी साध्वी श्री गवरांजी (४६१) पचपदरा की थी, जिन्हे स० १६३७ मे मुनि भवानजी बड़ा (१२०) ने दीक्षित कर साध्वी श्री नदूजी को सौपा था ।

तालिका मे साध्वी सोनाजी का नाम है वहा दोलाजी का होना चाहिए ।

९. स० १६३६ मे ८ ठाणे थे । उपर्युक्त ६ और सातवी नानूजी (४६६) 'पचपदरा' तथा आठवी कसुबाजी (४६७) थी ।

तालिका मे साध्वी सोनांजी का नाम है, वहा दोलाजी का होना चाहिए ।

१०, स० १६४० मे ७ ठाणे थे । अनुमानत साध्वी श्री दोलाजी (२४६) [स]० १६३६ मे स्वर्ग पधार गई । पचपदरा मे दिवगत साधु-साध्वियो की सूची मे उनका नाम नही है । ख्यात मे दोलाजी का स्वर्ग वर्ष नही है ।

११. स० १६४१ में उपर्युक्त ७ ठाणे थे । इस वर्ष मुनि माणकलालजी (माणकगणी) का ४ ठाणो से चातुर्मास पचपदरा मे ही था । चातुर्मास मे साध्वी श्री नदूजी का स्वर्गवास होने से तालिका मे महेकाजी आदि ६ साध्वियो के नाम है ।

अन्य आधारों से अन्य क्षेत्रो मे प्राप्त चातुर्मास इस प्रकार है —

(१) स० १६२० मे साध्वी श्री का चातुर्मास भिवानी मे था । इसका उल्लेख श्रावक लिछमणदासजी मथेरण द्वारा रचित साध्वी श्री की गुण वर्णन ढाल १ गा० १२ मे मिलता है :—

'उगणीसै बीसे सावण में, भियाणी शहर चोमास जी ।
सती तणा गुण गावै लिछमण, आणंदलाल विलास जी ।।'

(२) स० १६२८ मे साध्वी श्री का ७ ठाणों से रतलाम चातुर्मास था। चातुर्मास के पश्चात् जयपुर में जयाचार्य के दर्शन किये :—

'हिवै सात ठाणा संग आई मोटी महासती रे।
रतनपुरी (रतलाम) थी नंद्रू वड़ निहाल रे।।'
(लघु छोगजी कृत-जय छोग विलास ढ़ा० ६ गा० ८)

(३) स० १६२६ मे उपर्युक्त जो साध्वियां साथ थी, वे ही इस वर्ष में मालूम देती है।

स० १६३४ मे ६ ठाणों से वालोतरा चातुर्मास था।
(श्रावकों द्वारा लिखित चातुर्मासिक तालिका से)

स० १६३५ में जो साध्वियां साथ थीं वे ही इस वर्ष में प्रतीत होती हैं।

उपर्युक्त १६३५, १६३७, १६३८ के पचपदरा चातुर्मासों का श्रावको द्वारा लिखित चातुर्मास तालिका मे भी उल्लेख है।

साध्वी श्री स० १६३५ से १६४१ तक ग्रन्थि वेदना के कारण पचपदरा मे स्थिरवास रही। इसका उल्लेख पहले कर दिया गया है। ख्यात मे भी लिखा है कि उन्होंने अतिम वर्षो मे वहुत वर्ष स्थिरवास किया।

उपर्युक्त चातुर्मासो की क्रमश: सूची इस प्रकार है :—

सं० १६१०	भीलवाड़ा	
सं० १६१२	लावा (सरदारगढ़)	
स० १६१३	देवगढ	
स० १६१४	पचपदरा	
सं० १६१५	चूरू	
स० १६१६	पाली	
स० १६१७	पचपदरा	
स० १६२०	भिवानी	
सं० १६२१	पचपदरा	
सं० १६२३	,,	
सं० १६२६	,,	
सं० १६२८	रतलाम	
स० १६३४	वालोतरा	
सं० १६३५	पचपदरा	स्थिरवास
सं० १६३७	,,	,,
सं० १६३८	,,	,,

सं० १९३९	पचपदरा	स्थिरवास
सं० १९४०	,,	,,
स० १९४१	,,	,,

६. साध्वी श्री ने तपस्या वहुत की तथा शीतकाल मे शीत सहन किया।

(ख्यात)

७. साध्वी श्री के अन्तिम वर्षों में उदर-ग्रन्थि की वेदना हो गई तथा वृद्धा-वस्था के कारण शरीर दुर्वल हो गया। इसलिए पचपदरा मे सात साल स्थिरवास करना पड़ा। साध्वी श्री ने वेदना को वड़े समभाव से सहन किया। आखिर सं० १९४१ के पचपदरा चातुर्मास मे समाधि पूर्वक पडित मरण प्राप्त किया।

(पचपदरा की तालिका से)

सेठिया सग्रह मे भी उनका स्वर्गवास सवत् १९४१ लिखा है जो उक्त आधार से सही है पर वहा उनकी सयम पर्याय ६६ वर्ष की लिखी है जवकि दीक्षा-सवत् १८७३ से स्वर्गवास सवत् १९४१ तक ६८ वर्ष की होती है।

ख्यात मे स्वर्गवास सवत् १९४ करके छोड दिया गया है। शासनप्रभाकर ढा० ५ गा० १२० मे स्वर्गवास सवत् १९०४ लिखा है जो उपर्युक्त प्रमाणो से गलत है।

८. आचार्य श्री भारीमालजी के युग मे कुमारी कन्या की एक दीक्षा केवल साध्वी नंदूजी की ही हुई। परन्तु उन्होने ऐसा शुभारभ किया कि उत्तरोत्तर अवाध गति से अभिवृद्धि होती चली गई। क्रमश· आचार्य श्री रायचदजी के समय मे कुमारी कन्याओ की १० और जयाचार्य के शासनकाल मे २८ मघवा, माणक एवं डालगणी के समय मे १६ (८+१+७) दीक्षाए हुई। फिर तो ऐसा प्रवाह चला कि आचार्य श्री कालूगणी के शासन काल मे ८५ एव तुलसीगणी के समय मे (जयाचार्य निर्वाण शताब्दी स० २०३८ भाद्रव कृष्णा १२ तक) ३६२ कुमारी कन्याओं की दीक्षाएं हुई। कुल संख्या ५०२ हुई।

९. श्रावक लिछमणजी मथेरण ने साध्वी श्री के गुणानुवाद की एक गीतिका वनाई। उसमे उन्होने उनकी विविध गुण गरिमा का प्रतिपादन करते हुए उनके दर्शन, वदन और स्मरण का जो महत्त्व वतलाया है वह मूल पद्यो मे इस प्रकार है :—

नित्य प्रभाते दरसन करतां, चरण कमल चित्त ल्याय जी।
दुख दोहग विष लहर न व्यापै, चिन्त्या रहै न कांय जी॥
चरण कमल रज तन फरसंतां, तप तेजरो जाय जी।
वात पित्त कफ रोग न ठहरै, आरत दूर पुलाय जी॥

वाटे घाटे नाम जपंता, अरि केहरी टल ज्याय जी।
चोर चकोर जख प्रेत न दरसै, शीले सुर सुसहाय जी॥
सन्मुख हो चित्त ध्यान धरंता, कमी रहै नहीं कांय जी।
उत्कृष्टा परिणामां स्मरतां, जनम मरण दुख जाय जी॥

(गु० व० ढा० १ गा० ८ से ११)

९३।२।३७ साध्वी श्री नवलांजी (कटार)

(दीक्षा सं० १८७३ या ७४, स्वर्ग सं० १९१६ के पश्चात्—जयाचार्य के समय)

दोहा

'नवलां' का मेवाड में, गाया ग्राम 'कटार'।
हो विरक्त संसार से, श्रमणी बनी उदार[१] ॥१॥

सती कुन्दना पास में, कर पाई सुख वास[२]।
बहुत साल कर साधना, चली गई सुरवास[३] ॥२॥

१. साध्वी श्री नवलांजी की ससुराल मेवाड़ के 'कटार' ग्राम में और पीहर कांकरोली मे था[1]। उन्होंने पति वियोग के वाद दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

ख्यात आदि मे उनके दीक्षा-वर्ष का उल्लेख नही मिलता। उनसे पूर्व की साध्वी श्री नदूजी (६२) की दीक्षा स० १८७३ मे और वाद की साध्वी श्री कमलूजी (६४) की दीक्षा सं० १८७४ मे हुई, अतः उनकी दीक्षा सं० १८७३ या १८७४ मे हुई।

२. 'आर्यादर्शन' ढाल ८ गा० १६ ढ़ा० ६, गा० १६ के उल्लेखानुसार वे स० १९१५ और १६ मे साध्वी श्री कुन्नणांजी (११३) के सिंघाडे मे थी। वहां उन्होने क्रमशः ८ और ४ दिन का तप किया था।

३. साध्वी श्री ने वहुत वर्षो तक चारित्र का पालन कर अपना कल्याण किया।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढ़ा० ५ गा० १२१)

ख्यात आदि मे उनका स्वर्गवास सवत् नही मिलता परन्तु 'आर्यादर्शन' कृति के अनुसार वे स० १९१६ तक विद्यमान थी और जयाचार्य के स्वर्गवास के समय विद्यमान साध्वियो मे उनका नाम नही है, इससे फलित होता है कि वे स० १९१६ के वाद जयाचार्य के युग मे दिवगत हुई।

---

१. कटार ना नवलाजी कहियै, पीयर काकडोली धारी जी।

(शासन विलास ढ़ा० ४ गा० २९)

९४।२।३८ साध्वी श्री कमलूजी (चंगेरी)

(संयम पर्याय सं० १८७४-१९०२)

लय—ओम् शांति जिनेश्वर……

कुलवंती 'कमलूजी' श्रमणी, संयम की लेकर के सरणी।
कर पाई कठिन-कठिन करणी।

ससुरालय 'चंगेरी' पुर में, कोठारी कुल धार्मिक घर में।
थी हीर श्रमण की वह रमणी ॥१॥

भर यौवन में संयम-जीवन, अपनाया पाया भैक्षव-गण।
वन गई कांत की सहचरणी[1] ॥२॥

वरजू श्रमणी से ली दीक्षा, वरजू श्रमणी से ली शिक्षा।
विनयादिक गुण की आभरणी ॥३॥

कठस्थित आगम तीन किये, फिर श्लोक हजारों सीख लिये।
उद्यम-उपवन में संचरणी ॥४॥

सूत्रों का वाचन वहुत किया, तप में भी जीवन झौक दिया।
थी सरल प्रकृति जन-मन हरणी ॥५॥

मधु वाणी बहु व्याख्यान कला, थी तत्त्व-धारणा भी सबला।
चर्चा वार्ता में चतुर मणी ॥६॥

उपकार किया है जन-जन का, विस्तार किया जिन प्रवचन का।
विचरी बनकर तारण-तरणी ॥७॥

यश पाई यशस्विनी जग में, निधि पुण्यवान के पग-पग में।
झरती पल-पल रस की झरणी ॥८॥

बहु लोगों को समझाये हैं, श्रावक व्रत ग्रहण कराये है।
दीक्षा कुछ आत्मोद्धरणी[२] ॥९॥

सह साध्वी रायकुमारी थी, रखती सच्ची इकतारी थी।
सेवा की मानो संस्मरणी[३] ॥१०॥

अस्वस्थ हुई अन्तिम क्षण में, लेकिन समता क्षमता मन में।
आई 'पुर' में साहस-धरणी ॥११॥

संथारा करके निज मुख से, आराधक पद पाई सुख से।
सत् सुकृत सुधा की संग्रहणी ॥१२॥

शुभ संवत् दो चरमोत्सव का, आ गया महीना भाद्रव का।
जय ध्वनि से गूंजित नभ धरणी[४] ॥१३॥

१. साध्वी श्री कमलूजी चगेरी (मेवाड़) की वासिनी जाति से ओसवाल और गोत्र से कोठारी (रणधीरोत) थी। उनके पति का नाम हीरजी था[1]। उन्होंने अपने पति मुनि श्री हीरजी (७६) के साथ स० १८७४ मे आचार्य श्री भारीमालजी से दीक्षा स्वीकार की :—

समत अठारै चौमंतरे, भारीमाल अणगार।
सनमुख चरण समाचरचो, भामण नें भरतार॥
(जीव मुनि रचित-हीर मुनि गुण व० ढा० १ दो०६)

कमलूजी हद कीधी करणी, धीर पणै व्रत धारी।
पिउ हीर संघाते सजम लेई, आत्म कार्य सारी॥
(जयाचार्य रचित-कमलू सती गुण व० ढा० १ गा० १)

शासन विलास गा० ३० की वार्त्तिका मे साध्वी श्री कमलूजी की दीक्षा साध्वी श्री वरजूजी (३९) के हाथ से लिखी है।

'भिक्षु शिष्यणी वरजूजी तिण कनै कमलूजी दीक्षा लीधी सवत् १८७४ स्त्री भरतार साथे।'

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढ़ा० ५ गा० १२२ मे भी यही उल्लेख मिलता है। उक्त उद्धरणो से एक विकल्प तो यह हो सकता है कि भारीमाल जी स्वामी ने दोनों को दीक्षा प्रदान की और साध्वी वरजूजी ने कमलूजी का केश-लुचन किया। दूसरा विकल्प यह भी हो सकता है कि आचार्य श्री भारीमालजी ने अपने सम्मुख साध्वी वरजूजी को दीक्षा देने की विशेष आज्ञा प्रदान की और उन्होने दीक्षा दी।

२. साध्वी श्री कमलूजी ने साध्वी श्री वरजूजी के सान्निध्य मे रहकर शिक्षा प्राप्त की। आवश्यक, दशवैकालिक तथा उत्तराध्ययन इन तीन सूत्रों को कठस्थ किया। ज्ञान-ध्यान के साथ-साथ विनय विवेक आदि गुणो का वहुमुखी विकास किया :—

वरजूजी पास भणी वुद्धिवंती, सतवंती सिरदारी।
धुर आवसग अरु दशवैकालिक उत्तराध्येन सुधारी।
विविध विनय विवेक विचार, संतोष सुधारस सील सु धारी।
समता दमता खमता नमता, जिन वचनां में रमतारी॥
(कमलू सती गुण व० ढ़ा० १ गा० २,३)

---

१. जनक नान जी जस धरू, वाई नाथा रो नंद (हीरजी)।
जात कोठारी जाणियै, रिणधीरोत अमद॥
चंगेरी घर छोडियो सजोड़े सुध रीत।
कमलू कमला सारखी, नार निभाई प्रीत॥
(मुनि जीवोजी रचित-हीर मुनि गु० ढ़ा० १ दो०४, ५)

ख्यात, शासन विलास ढा० ४ गा० ३० की वार्त्तिका तथा शासन प्रभाकर ढ़ा० ५ गा० १२३, १२४ मे उनकी विशेषताओं का वर्णन इस प्रकार है :—

'वे प्रकृति से शांत, सरल, भद्र और विवेकशील साध्वी थी। उन्होंने अनेक आगमों का वाचन किया, हजारों पद्य सीखे, तात्त्विक धारणा तथा चर्चाओं की विविध जानकारी की। व्याख्यानादिक कला मे अच्छी-निपुणता प्राप्त की। सिंघाडवंध होकर वहुत क्षेत्रो मे विचरण कर सुयश प्राप्त किया। अनेक व्यक्तियों को प्रतिवोध देकर तथा तत्त्व ज्ञान सिखा कर सुलभ वोधि और श्रावक वनाये। कई वहनो को दीक्षा दी।'

उपर्युक्त वर्णन के अनुसार उन्होंने कुछ दीक्षाए दी थी, लेकिन उनके हाथ की दीक्षा का स्पष्ट उल्लेख कही नही मिलता। एक दीक्षा साध्वी श्री गगाजी (१९७) की ख्यात मे साध्वी श्री 'कवलूजी' के हाथ से मिलती है। सभवतः वहां 'कवलूजी की जगह 'कमलूजी' होना चाहिए।

३. साध्वी श्री रायकवरजी (११८) के गुणों की ढ़ाल मे उल्लेख है कि उन्होने साध्वी श्री वरजूजी (३९) की १६ महीने, साध्वीश्री नाथाजी (५१) की १२ वर्ष लगभग और साध्वी वरजूजी और साध्वी श्री कमलूजी की साधिक पन्द्रह वर्ष सेवा की :—

> मास सोलै रे आसरै, व्रजूजीनी करी सेव।
> भक्ति करी भली भांत सूं, अलगो करी अहमेव॥
>
> वर्ष वारै रे आसरै जी, नाथांजी री सेव तन मन्न।
> जाझा पनरै वर्सां लगै जी, कमलूजी नै किया प्रसन्न॥
>
> (रायकुमारी गुण व० ढ़ा० १ गा० ५,६)

इस उल्लेख से यह फलित होता है कि साध्वी श्री रायकंवरजी (११८) 'माढ़ा' ने सवत् १८८६ मे दीक्षित होने के पश्चात् १८८७ तक साध्वी श्री वरजूजी (३९) की १६ महीने सेवा की। उनके स्वर्ग-गमन के वाद सं १८९७ तक साध्वी श्री नाथांजी (५२) की पिछले १६ महीने मिलाकर १२ वर्ष लगभग सेवा की। उनके स्वर्गवास के पश्चात् स० १९०२ भादवा वदि ३ तक पिछले वर्ष मिलाकर साधिक १५ वर्ष सेवा की।

इससे यह भी जाना जाता है कि साध्वी कमलूजी स १८७४ में दीक्षित होने के वाद स० १८८७ तक साध्वी श्री वरजूजी (३९) के सिंघाड़े में रही। फिर उनका स्वर्गवास होने पर वे स० १८९७ तक साध्वी श्री नाथांजी (५२) के सिंघाड़े मे रही। फिर उनके दिवगत होने पर उनका सिंघाड़ा हुआ और साध्वी रायकंवरजी अन्त तक उनकी सेवा मे रही :—

सुखदाई सुविनीत मिली वर, समणी रायकुमारी।
दोषन से डरती व्यावच करती, धरती हरख अपारी॥
(कमलू सती गुण व० ढा० १ गा० ४)

४. साध्वी श्री स० १९०२ का चातुर्मास करने के लिए पुर (मेवाड) पधारी। वहां शरीर मे कुछ अस्वस्थता होने पर भादवा वदि ७ को दो मुहूर्त लगभग दिन अवशेप रहा तब उन्होने अपने मुख से सथारा ग्रहण किया जो साढे चार पहर से सपन्न हुआ।

(ख्यात, शासन विलास ढा० ४ गा० २९ की वार्त्तिका तथा शासन प्रभाकर ढा० ५ गा० १२५)

चरण हीर त्रिय कमलू चिमंतर, संथारो बीये सारीजी।
(शासन विलास ढ़ा० ४ गा०२९)

कमलूजी पुर में परभव गया जो, अधिक चिहु पोहर संथार।
विद पख भाद्रवे अष्टमी जो, या हीर तपस्वीनी थी नार॥
(रायकुमारी गुण० व० ढा० १ गा० ७)

जयाचार्य विरचित कमलू सती गुण वर्णन ढाल मे उनकी स्वर्गवास तिथि भादवा सुदि १५ लिखी है :—

पूनम परभव पौंहती कमलू, वर कर उत्तम संथारी।
आसरै नव मास पछै परभव, पौंहती भल रायकुमारी॥
(कमलू सती गुण० व० ढा० १ गा० ५)

इस तरह साध्वी कमलूजी की स्वर्गवास तिथि के तीन उल्लेख मिलते है— भादव वदि ७, भादव वदि ८ तथा भादव सुदी १५। इनमे २२, २३ दिन का अन्तर पडता है पर उपर्युक्त कमलूजी की तथा निम्नोक्त रायकुमारीजी गुण वर्णन ढ़ाल मे यह तो स्पष्ट उल्लेख है ही कि कमलूजी के लगभग ९ महीने पश्चात् साध्वी श्री रायकुवरजी का स्वर्गवास हुआ। रायकवरजी का स्वर्गवास सं० १९०२ जेठ वदि १० है :—

तठा पछै नव मास रै आसरै जी, रायकवर रूडी रीत।
चारित्र पालियो चूंप सूं जी, साहसीक पणा सहीत॥
संवत् उगणीसै बीए समैजी, जेठ विद दसमी वुधवार।
रायकुंवरी परलोक पधारिया जी, पडित-मरण श्रीकार॥
(रायकुमारी गुण व० ढ़ा० गा० ८, १७)

भादवा वदि ७ या ८ से जेठ वदि १० तक नौ महीने लगभग होते है। इससे उनकी स्वर्गवास-तिथि भादवा वदि ७ या ८ ही ठीक लगती है।

९५।२।३९ साध्वी श्री नवलांजी

(दीक्षा स० १८७४ या ७५, स्वर्ग सं० १८८७)

दोहा

पीथल मुनि की नंदना, 'नवलां' जिनका नाम।
दीक्षित उनके बाद में, हो पाई निष्काम[1] ॥१॥

संयम में रमती रही, तेरह हयन समोद।
लेकर अनशन अन्त में, पहुंची ऊंचे सौध[2] ॥२॥

---

१. साध्वी श्री नवलाजी मुनि श्री पीथलजा 'छोटा' (७२) की संसार पक्षीय पुत्री थी। (ख्यात)

पीथलजी का ग्राम 'केलवा' और गोत्र चडालिया (ओसवाल) था। उन्होने नवलांजी से पहले स० १८७१ मे दीक्षा स्वीकार कर ली थी।

(मुनि पीथलजी के प्रकरण से)

मुनि पीथलजी की पुत्री होने से नवलांजी जाति से ओसवाल थी यह तो स्पष्ट ही है परन्तु उनकी ससुराल कहा और किस गोत्र मे थी यह उपलब्ध नही है।

उन्होने पति वियोग के पश्चात् दीक्षा ग्रहण की। (ख्यात)

ख्यात आदि मे उनका दीक्षा-सवत् नही मिलता। उनके पूर्व की साध्वी कमलूजी (९४) की दीक्षा सं० १८७४ में और वाद की साध्वी दोलांजी (९६) की दीक्षा स० १८७५ मे हुई अतः उनकी दीक्षा सं० १८७४ या ७५ में हुई।

२. साध्वी श्री ने अन्त मे अनशन कर सं० १८८७ मे पडित-मरण प्राप्त किया।[1] (ख्यात)

---

१. लघु पीथल री वेटी नवलां, सत्यासीये अणसण धारी।

(शासन विलास ढ़ा० ४ गा० ३०)

शासन प्रभाकर ढा० ५ गा० १२७ में भी ऐसा ही उल्लेख है।

६।२।४० साध्वी श्री दोलांजी (खोड)

(संयम पर्याय सं० १८७५-१९११)

दोहा

दोलां 'खोड' निवासिनी, परिजन मुंहता वैद।
साध्वी बनकर वस्तुतः, पहना वेष सफेद[1] ॥१॥

'हस्तू' 'कस्तू' का मिला, उन्हें सुखद सहवास।
फिर रह पाई हर्ष से, नगां सती के पास[2] ॥२॥

बहुत वर्ष चारित्र का, पालन कर सोत्साह।
अनशन करके शेष में, की सब पूरी चाह[3] ॥३॥

१. साध्वी श्री दोलाजी मारवाड़ मे 'खोड' (पाली के पास) की वासिनी थी। उन्होंने पति वियोग के पश्चात् सं० १८७५ मे चारित्र ग्रहण किया[1]।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढ़ा० ५ गा० १२८)

उनकी ससुराल मुहता वैद (ओसवाल) परिवार मे थी[2]।

२. साध्वी श्री दोलांजी साध्वी श्री हस्तूजी (४५) तथा कस्तूजी (४७) के संयुक्त सिंघाडे मे रही, इसका प्रमाण हस्तू-कस्तू पचढालिया में मिलता है।

वहा लिखा है कि सं० १८७६ में दिवगत साध्वी कस्तूजी (४७) के सवध की विशेप जानकारी साध्वीश्री नगाजी (७६) एवं दोलाजी से पूछकर करें :—

नगांजी दोलांजी नैं देख नै, पूछी निरणो कीज्यो।
विवध वैराग नी वारता, सुणसुण नैं धार लीज्यो॥

(हस्तू कस्तू पंच० ढा० ५ गा० १०)

स० १८९७ भाद्रव शुक्ला १३ को 'लावा' में साध्वी श्री हस्तू जी (४५) ने अनशन किया तव साध्वी दोलांजी उनकी सेवा मे थी। अन्य साध्वियां— नगाजी (७६), मयाजी (८६) और नंदूजी (११७) थी :—

दोलांजी दिल ऊजलै रे, सेवा सखरी कीध।
चित्त समाध उपजाय नै रे, महिमा मोटी लीध॥

(हस्तू कस्तू पच० ढा० ४ गा० ८)

उक्त दोनो संदर्भो से मालूम देता है कि साध्वी दोलाजी प्रारभ से ही हस्तूजी, कस्तूजी के साथ रही। उनके स्वर्गवास के वाद साध्वी श्री नगांजी (७६) ने सं० १९०१ सावन सुदि १५ को सवलपुर मे स्वर्ग-गमन किया तव तक उनके साथ रही और साध्वी श्री मूलांजी (१३७) सहित उन्होंने उनकी अग्लान भाव से सेवा की :—

दोलांजी मूलांजी सती रे, चित सुध सेवा कीध हो।
दिल नी दुगंछा मेट नै, जग मांहे जश लीध हो॥

(नगां सती गुण वर्णन ढ़ा० १ गा० ७)

---

१. दोला वर्प पिचंतरे दिख्या, खोड तणां ए सुविचारी जी।

(शासन विलास ढ़ा० ४ गा०३०)

२. दोलांजी दिलसार रे, वैद मुंहता रा घर तणी।
पिछतरे वर्ष अठार रे, सजम भद्र सुहामणी।

(आर्यादर्शन ढ़ा० ३ सो० १३)

समीक्षा :—

दोलांजी नाम की एक साध्वी (क्रमाक१०८) साध्वी श्री मूलाजी (१३७) की माता थी। वे स० १८९८ मे ही स्वर्गस्थ हो गई थी अत: उक्त गाथा में दोलाजी, मूलांजी का नाम एक साथ देखकर उन्हे मां वेटी न समझें क्योकि यहां उपर्युक्त दोलांजी (क्रमाक ९६) है।

३. साध्वी श्री ने वहुत वर्प सयम-पालन कर स० १९११ में समाधि-मरण प्राप्त किया।

(ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० ५ गा० १२८)

'आर्या दर्शन' ढ़ाल ३ सो० १३ मे सं० १९११ मे दिवगत साधु-साध्वियो के क्रम मे भी साध्वी दोलांजी का नाम है।

९७।२।४१ साध्वी श्री उमेदांजी (वोरावड़)

(संयम पर्याय सं० १८७६-१८९९)

दोहा

वोरावड़ में वास था, नाम उमेदां खास।
की पूरी उम्मेद सव, साध्वी वन सोल्लास[1] ॥१॥

रही चरण-पर्याय में, वर्ष वीस पर तीन।
अनशन करके पा गई, आराधक पद पीन[2] ॥१॥

---

२. साध्वी श्री उम्मेदांजी का ग्राम वोरावड़ (मारवाड़) था। पति वियोग के वाद उन्होने स० १८७६ में दीक्षा ग्रहण की[1]।

(ख्यात)

२. उन्होने सं० १८९९ मे अनशन सहित पंडित मरण प्राप्त कर अपना कल्याण किया[2]।

---

१. वोरावड़ ना चरण छिहंतरे, सती उमेदा सुखकारी जी।
(शासन-विलास ढ़ा० ४ गा० ३१)

२. संवत् अठार निनांणूवे आयु, निज आतम प्रति निस्तारी।
(शासन-विलास ढा० ४ गा० ३१)

शासन प्रभाकर ढ़ा० ५ गा० १२९ में ऐसा ही उल्लेख है।

९८।२।४२ साध्वी श्री नोजांजी (बोरावड)

(संयम पर्याय सं० १८७७-१९१०)

गीतक-छन्द

गोत्र सिंधी श्वसुर कुल का ग्राम बोरावड कहा।
उठाया 'नोजां' सती ने भार संयम का महा[१]।
प्रकृति उनकी सरल कोमल स्वच्छ दिल की भावना।
शीत परिषह सहा को है सबल तप आराधना[२] ॥१॥

दोहा

बींजां की अन्तिम समय, सेवा की सोल्लास।
फिर जोतां नंदू सती, सन्निधि में सुखवास[३] ॥२॥

प्रहर पंच चालीस का, अनशन करके भव्य।
'पुर' में दस की साल में, कलश चढ़ाया नव्य[४] ॥३॥

१. साध्वी नोजांजी की ससुराल बोरावट (मारवाट) के सिंघी (ओसवाल) परिवार मे थी। उन्होंने पति वियोग के बाद सं० १८७७ मे दीक्षा स्वीकार की[1]।

(ख्यात)

२. साध्वी श्री स्वभाव से सरल और कोमल थीं। उन्होंने शीत काल में शीत सहन किया और रफुटकर तपस्या बहुत की।

(ख्यात)

३. सं० १८८७ मे साध्वी श्री बीजाजी (४०) के सलेखन एवं संथारे के समय वे उनकी सेवा मे थी। अन्य साध्वियां—जोतांजी (४८), वनांजी (८८) और नदूजी (६२) थीं। सभी ने उनकी अच्छी सेवा की[2]।

इससे ऐसा भी सभव है कि साध्वी नोजांजी साध्वी श्री बीजाजी के स्वर्गवास के बाद साध्वी श्री जोतांजी (४८) के तथा उनके स्वर्गवास के पश्चात् साध्वी श्री नन्दूजी (६२) के सिंघाड़े मे रही।

४. उन्होने ४३ वर्ष लगभग सयम-पर्याय का पालन किया। अन्त मे संथारा सहित सं० १६१० 'पुर' मे स्वर्ग प्रस्थान किया।

(ख्यात)

उगणीसें दसे संथारो, नोजां पुर पोंहती पारी जी।

(शासन-विलास ढा० ४ गा० ३२)

उन्हे ४५ प्रहर का अनशन आया:—

नोजां सतंतरे वास रे, बोरावड सिंघी सासरया।
अणसण पुर में तास रे, पोहर पैंताली आसरे॥

(आर्या दर्शन ढ़ा० २ सो० १७)

उपर्युक्त टिप्पण संख्या ३ के उल्लेखानुसार साध्वी नोजांजी साध्वी नन्दूजी के सिंघाड़े मे थी। इससे यह अनुमान किया जाता है कि वे उनके सिंघाड़े में दिवगत हुई। स० १६१० मे साध्वी नन्दूजी का चातुर्मास भीलवाड़ा मे था जो पुर के समीप ही है।

शासन प्रभाकर ढ़ा० ५ गा० १३०, १३१ मे ख्यात की तरह ही उल्लेख है।

---

१. बोरावड़ ना चरण सितंतरे, सासरिया सिंघी धारी जी।

(शासन-विलास ढ़ा० ४ गा० ३)

२. जोताजी वनाजी नंदूजी नोजांजी, सेवा कोधी कर जोड़ी।

(हेम मुनि रचित—बीजा सती गुण व० ढ़ा० १ गा० १४)

६६।२।४३ साध्वी श्री मगदूजी (नानसमा)

(संयम पर्याय सं० १८७७-१९१७)

गीतक-छन्द

भूमि पर मेवाड़ की लघु ग्राम 'नानसमा' वसा।
धर्म की लौ जली घर में दीप मंगलमय चसा।
वनी ममता-मुक्त हो 'मगदू' महाव्रत-धारिणी।
साधना में लगी है वैराग्य-वल-विस्तारिणी[१] ॥१॥

दोहा

शुद्ध प्रकृति अति धैर्यता, तप में भी गतिशील।
ज्ञान ध्यान गुण-वृद्धि की, देती गई दलील[२] ॥२॥

सेवा वीजां की सजी, धर तन मन में हर्ष[३]।
वनी अग्रगण्या सती, विचरी है बहु वर्ष ॥३॥

आर्या दर्शन में कई, मिलते पावस काल[४]।
दीक्षित 'पन्नां' को किया, द्व्यधिक नवति की साल ॥४॥

सात दिनों का शेष में, कर अनशन सोत्साह।
ली है सतरह साल में, स्वर्ग-सदन की राह[५] ॥५॥

१. साध्वी श्री मगदूजी मेवाड़ में 'नानसमा' (नांदेसमा) की निवासिनी थी। उन्होने पति वियोग के बाद स० १८७७ में दीक्षा स्वीकार की[1]।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढा० ५ गाथा १३२)

२. साध्वी श्री प्रकृति से वहुत सरल, धैर्यवती थी। उन्होने ज्ञान-ध्यान आदि का अच्छा उद्यम किया एवं तपस्या भी वहुत की। (ख्यात)

३. साध्वी श्री वीजांजी (५२) के सं० १८८६ के जयपुर चातुर्मास मे तथा वाद मे लोटोती ग्राम मे उनके सलेखना संथारे तक वे उनकी सेवा में रही। अन्य साध्विया—हस्तूजी (५९), चनणाजी (६४), जसूजी (६६) तथा दोलांजी (१०८) थी[2]।

४. साध्वी श्री अग्रगण्या होकर विचरी। उनके संवत् १९०९ से १९१६ तक के चातुर्मास तथा तप आदि का विवरण 'आर्या दर्शन' कृति मे इस प्रकार मिलता है.—

(१ से ३) सं० १९०९, १९१०, १९११ मे वे ४ ठाणो से थी। चातुर्मास स्थान प्राप्त नही है। चातुर्मास के वाद वृद्ध एव अस्वस्थ होते हुए भी उन्होने आचार्य श्री के दर्शन कर क्रमश: ९ दिन, एक महीना तथा आठ दिन सेवा की।

(४) स० १९१२ मे उन्होने ४ ठाणो से 'आगरिया' (मेवाड़) मे चातुर्मास किया। चातुर्मास के पश्चात् गुरु-दर्शन कर १० दिन सेवा की। चातुर्मास में साथ की साध्वी श्री पन्नाजी (१४८) ने १३, गगाजी (२६२) ने १३ और रोड़ांजी (२०७) ने १४ दिन का तप किया।

(५) स० १९१३ मे उन्होने ४ ठाणों से राजनगर चातुर्मास किया। वहां साध्वी पन्नांजी (१४८) ने १५ और गगाजी (२६२) ने ११ दिन का तप किया। वृद्धावस्था से गुरु-दर्शन के लिए नहीं जा सकी। राजनगर चातुर्मास का उल्लेख मुनि जीवोजी (८६) कृत ढाल में है।

(६) स० १९१४ मे उन्होने ४ ठाणो से भीलवाड़ा चातुर्मास किया। वृद्धा-वस्था से गुरु-दर्शन के लिए नही जा सकी।

(७) स० १९१५ मे उन्होने ४ ठाणों से दौलतगढ़ चातुर्मास किया। वृद्धा-वस्था से गुरु-दर्शन के लिए नही जा सकी। चातुर्मास मे साध्वी पन्नांजी ने १५

---

१. नांनसमा रा चरण सितंतरे, सती मगदूजी सुविचारी जी।

(शासन विलास ढा० ४ गा० ३३)

२. हस्तूजी, चनणाजी, जसूजी सती, वले मगदूजी लारो।
दोलांजी दिल ऊजलै, कीधी सेवा तिवारो॥

(वीजा सती गुण व० ढा०१ गा० १५)

और गंगाजी ने ११ दिन का तप किया।

(८) स० १९१६ मे उन्होने ४ ठाणों से लाछूडा चातुर्मास किया। वृद्धावस्था से गुरु-दर्शन के लिए नही जा सकी। चातुर्मास मे पन्नांजी ने ३०, गंगाजी ने १४ तथा रोड़ाजी ने ५ दिन का तप किया।

५. साध्वी श्री ने सं० १८९२ जेठ सुदि ५ को साध्वी पन्नाजी 'सिसोदा' (१४८) को सिसोदा मे दीक्षा दी।

(पन्नांजी की ख्यात)

साध्वी पन्नाजी का उनके साथ मे रहने का और तप करने का उल्लेख 'आर्या दर्शन' कृति मे मिलता है। (देखें उपर्युक्त टिप्पण संख्या ४)

६. साध्वी श्री ने लगभग चालीस वर्ष चारित्र का पालन किया। अंत में सात दिन के संथारे से स० १९१७ में पडित-मरण प्राप्त किया[1]।

(ख्यात)

---

१. सखर सात दिन नो सथारो, उगणीसै सतरे धारी जी।

(शासन विलास ढ़ा० ४ गा० ३३)

शासन प्रभाकर ढ़ा० ५ गा० १३२ में ऐसा ही उल्लेख है।

१००।२।४४ साध्वी श्री चत्रूजी (गंगापुर)

(संयम-पर्याय १८७७-२८६०)

गीतक-छन्द

चरम शिष्या बनी 'चत्रू' पूज्य भारीमाल की।
चमेली ज्यों खिली वनिका मिली पुण्य-प्रवाल की।
दीप की दयिता सुशीला और भाभी 'जीव' की।
भूमिका तैयार करली प्रगति-गामी नींव की ॥१॥

लय—कोरो काजलियो……

'चत्रू' पतिव्रता, कर पाई पति का साथ। चत्रू……।
संयम ले बनी सनाथ। चत्रू…………।
लाई है नव्य प्रभात ॥चत्रू…………॥ध्रुव॥

मुनि श्रमणी संपर्क से लग गया मजीठी रंग।
स्थायी दृढ वैराग्य की, आत्मा में खुदी सुरंग ॥२॥

किया साधनाभ्यास से, अपने मन को मजबूत।
लुंचन भी कर हाथ से, दी पहले बड़ी सबूत ॥३॥

धोवन-जल कुछ दिन पिया, बढ़ती भावों की दूब।
सामायिक स्वाध्याय भी, करती देवर सह खूब ॥४॥

दीक्षा देवर 'जीव' ने, ली जंगल में एकान्त।
कुपित 'दीप' बांधव हुआ, गुरु-दर्शन से फिर शांत ॥५॥

मुनिजन के उपदेश से, आया वैराग्य विशाल॥
पत्नी सह धारण किया, व्रत ब्रह्मचर्य तत्काल ॥६॥

मुनि स्वरूप ने दे दिया, गुरु आज्ञा से चारित्र।
चकित विपक्षी हो गये, फूले है सज्जन मित्र[1] ।।७।।

शांत प्रकृति सुखदायिनी, चन्नू श्रमणी रस रग।
शोभा पाई है वड़ी, रह पाई जिनके संग[2] ।।८।।

तेरह वर्षो तक तपी, संयम में खपी हमेश।
सार निकाला देह से, कर तप जप आदि विशेप ।।९।।

उपवासादिक थोकड़े, वहु वार पाई धर मोद।
बासठ दिन तक चढ़ गई, वढ़ गई भावना पौध[3] ।।१०।।

की अन्तिम सलेखना, अनशन व्रत उत्कृष्ट।
नवति साल में लिख दिये, सुनहरे यशस्वी पृष्ठ[4] ।।११।।

१. साध्वी श्री चनूजी गंगापुर (मेवाड़) की वासिनी और गोत्र से चह्यवत (ओसवाल) थी। वे मुनि श्री दीपोजी (८५) की पत्नी और मुनि श्री जीवोजी (८६) की भाभी थी।

आचार्य श्री भारीमालजी सं० १८७६ का पुर मे चातुर्मास करके गगापुर पधारे। उस समय दीपोजी, जीवोजी और चनूजी—ये तीनो आचार्य श्री का व्याख्यान सुनकर प्रतिबोध को प्राप्त हुए एवं धर्म-ध्यान मे विशेप रुचि रखने लगे। कुछ ही दिनो के सपर्क से जीवोजी की इच्छा सयम लेने की हुई और उन्होने भारीमालजी मे निवेदन किया कि मैं साधुव्रत ग्रहण करूगा। आचार्य श्री ने फरमाया—'जो समय जाता है वह वापस नही आता अतः शुभ कार्य मे विलम्ब नही करना चाहिए।' जीवोजी गुरुदेव को वदना कर घर आये और अपनी भाभी चनूजी से कहा—'भाभी! उठो अपने स्वरूप को पहचानो। हम दोनो संयम लेकर परम आत्मिक-सुख को प्राप्त करें।' भोजाई ने कहा—'देवरजी! मेरी भी दीक्षा लेने की भावना है, इसके लिए हमे शीघ्रता करनी चाहिए। आप अपने बड़े भाई (दीपोजी) से आज्ञा प्राप्त कर लें। फिर हम दोनों दीक्षित होकर अपना कल्याण करेगे।' उन्होंने यह भी कहा—'पहले हमे अपनी आत्मा को भी तोल लेना चाहिए। फिर वैराग्य पूर्वक साधुत्व स्वीकार करेंगे।' 'दोनो ने साधना का अभ्यास चालू करते हुए परस्पर अपना केश-लुंचन किया तथा प्रासुक धोवन-पानी छान कर पीने लगे :—

पछै मांहो मां लोच कियो दोनूं जणां जी, धोवण पीधो बहु दिन छाण।

(मुनि जीवोजी कृत-दीप मुनि गुण व० ढ़ा० १ गा०८)

जीवोजी ने अपने बड़े भाई दीपोजी से दीक्षा लेने की अनुमति मांगी तब दोनो के आपस में लम्बी बहस चली तथा खीचातान हो गई। अत मे लोगों के समझाने से दीपोजी ने जीवोजी को छह महीने की अवधि के बाद दीक्षा लेने का आज्ञा-पत्र लिख दिया। स्थानीय श्रावक फतैचन्दजी ने उसे सबके सामने पढ़कर सुना दिया। साधुओ ने उस पत्र को लेकर आचार्य श्री भारीमालजी को सौंप दिया। उसके बारह महीने बाद दीपोजी को सूचित किये बिना सं० १८७७ पोष वदि ६ को जीवोजी ने मुनि श्री सरूपचंदजी (६२) द्वारा गगापुर से डेढ़ कोश दूर कांगणी के माल (ताल) मे गृहस्थ के कपडो सहित दीक्षा ग्रहण कर ली।

दीपोजी को जब इस बात का पता चला तब वे सतो से बहुत नाराज हुए और विरोध करने लगे। अनेक लोग उनके पक्ष में होकर विरुद्ध प्रचार करने लगे। फिर कुछ महीनों के बाद दीपोजी ने अपनी पत्नी सहित भारीमालजी स्वामी के कांकरोली मे दर्शन किये। वहां मुनि श्री खेतसीजी, रायचंदजी आदि ने उन्हे समझाया और उनके हाथ का लिखा हुआ कागद दिखाया तब वे शांत हुए। फिर

मुनि-वृन्द ने उन्हे वैराग्यप्रद धर्मोपदेश दिया। वे बडे प्रभावित हुए और तत्काल पति-पत्नी दोनो ने आचार्य प्रवर के पास आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत स्वीकार कर दीक्षा के लिए अपने विचार व्यक्त किये। फिर वे दोनो अपने गांव गगापुर लौट आये। आचार्यश्री ने मुनि सरूपचंदजी आदि को तथा साध्वयो को गंगापुर भेजा। मुनि श्री सरूपचदजी ने सं० १८७७ जेठ सुदि १३ को गंगापुर मे पति-पत्नी दोनो को सयम प्रदान किया :—

तांम सरूप नैं म्हेलियो रे, चारित्र देवा सार।
वलि म्हेली समणी भणी रे, भारीमाल तिणवार।
तांम सरूप आवी करी रे, विहुं नैं दिख्या दीध।
दर्शण कीधा पूज ना रे, जग मांहै जश लीध॥

(सरूप-नवरसो ढा० ६ गा० ४, ५)

पत्नी सहित दीपोजी के दीक्षित होने के समाचार सुनकर विरोधी लोग आश्चर्य-चकित हो गये। अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करते हुए गुरु-चरणो मे प्रस्तुत हुए और अपनी भूल के लिए क्षमा याचना की।

उक्त घटना मुनि श्री जीवोजी कृत दीप मुनि गुण वर्णन ढ़ाल १ से ३, दीपोजी-जीवोजी की ख्यात तथा शासन-विलास ढा ३ गा० ४२ की वार्त्तिका मे है जिसका विस्तारपूर्वक विवरण मुनि श्री दीपोजी (८५) और जीवोजी (८६) के प्रकरण मे दिया गया है।

साध्वी चत्रूजी की ननद साध्वी श्री मयाजी (८६) ने सवत् १८७२ मे दीक्षा ली थी।

२. साध्वी श्री चत्रूजी का स्वभाव शात और व्यवहार मधुर था। वे वड़ी विनयवती थी। जिन साध्वियो के साथ में रही वहा वडे मेल-मिलाप से रही जिससे उनकी सघ मे अच्छी शोभा वढी :—

.... विविध विनय चित्त वास।
शासण में शोभा लही, सरल भद्र सुखकार॥

(दीप मुनि गु० व० ढ़ा० ४ गा० २,३)

३. साध्वी श्री ने तेरह वर्प सयम की आराधना की। उसमे तप, स्वाध्याय के द्वारा अपने शरीर से वहुत सार निकाला। उन्होने उपवास, वेले, तेले तथा चोले आदि थोकडे वहुत वार किये। ऊपर मे ६२ दिन का तप किया :—

चत्रुजी नो तप सांभलो, तेरैं वर्ष के मांय।
छोटा थोकड़ा वहु किया, वासट किया सुखदाय॥

(दीप गु० व० ढ़ा० ५ गा० ३)

दीप गुण वर्णन ढ़ा० ४ गा०२ मे अठाई आदि अनेक थोकड़े करने का उल्लेख है।

४. साध्वी श्री ने अंत मे सलेखना तप चालू किया। क्रमश: पाच तेले और चार चोले किये। तत्पश्चात् पंचोला करने का सकल्प किया। उसके चौथे दिन रात्रि के समय आजीवन चौविहार अनशन ग्रहण किया जो साढे चार प्रहर से सम्पन्न हो गया।

उक्त वर्णन दीप मुनि गुण वर्णन ढा० ४ गा० ५, ६ मे है। दीप मुनि गुण वर्णन ढ़ा० ५ गा० ४, ५ मे प्राय: ऐसा ही उल्लेख है परन्तु वहां चार चोलों के स्थान पर पांच चोले हैं और संथारा चार प्रहर व साधिक दो मुहूर्त का लिखा है।

ख्यात शासन-विलास ढा० ४ गा० ३४ तथा शासन प्रभाकर ढ़ा० ५ गा० १३४ में सात प्रहर के अनशन का उल्लेख है।

साध्वी श्री ने सं० १८९० मे समाधि पूर्वक पडित-मरण प्राप्त किया।

आप भारीमालजी स्वामी की अन्तिम शिष्या हुई[1]।

(ख्यात शासन प्रभाकर ढ़ा० ५ गा० १३४)

---

१. चरण सतंतरे दीप मुनि त्रिय, सुगणी चन्नूजी श्रमणी जी।
सप्त पौहर संथारो नेउवे, चरम चेली भारीमाल तणी जी।।

(शासन-विलास ढ़ा० ४ गा० ३४)